संचालक एवं प्रकाशक
कनकमल मुनोत
पं. मुनि श्रीमल प्रकाशन
२५९ नाना पेठ, पूना २.



मूल्य ५ रुपये





दिसंबर १९६९



मुद्रक
दि. दा. गांगल,
लोकसंग्रह मुद्रणालय,
१७८६ सदाशिव पेठ, पूना ३०.

प्रस्तुत पुस्तक के अग्रिम ग्राहक, जिनसे प्राप्त आर्थिक सहयोग

१ मे. वी. धनराजजी हीराचंदजी कटारिया
केवलरी रोड, कँटोन्मेंट, बेंगलोर.

२ मे. पोपटलालजी फूटरमलजी वलदोटा
३८९ रविवार पेठ, सराफ बजार, पूना २

३ मे. शान्तिलालजी हस्तीमलजी वलदोटा
३९१ रविवार पेठ, सोन्या मारुती चौक, पूना २

(हर एक ने ५०१ रुपये प्रदान किये हैं)

समर्पण

आचार और विचार की
ज्ञान और दर्शन की
साहित्य और संस्कृति की
कला और विज्ञान की
जिन्होंने मुझे सर्व प्रथम
भगवान पार्श्व पर
लिखने की प्रेरणा प्रदान की
उन्हीं परम श्रद्धेया सद्गुरुणीजी
श्री मोहन कुँवरजी म. को

देवेन्द्र मुनि

कहाँ क्या है



धर्मे तत्परता, मुखे मधुरता, दाने समुत्साहिता,
मित्रेऽवञ्चकता, गुरौ विनयता, चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता, गुणे रसिकता, शास्त्रेऽतिविज्ञानता,
रूपे सुन्दरता, प्रभौ भजनिता, सत्स्वेव संदृश्यते ॥

पूर्वकथन

प्रभु पार्श्व के सम्वन्ध में किसी भी समय कुछ भी संकीर्तन, श्रवण या कथन करने को मिले, यह परम सौभाग्य का संकेत है। फिर श्रमण-कुमार देवेंद्र मुनिजी के संकीर्तन का प्राक्कथनप्रसंग प्राप्त हो इससे अधिक हर्ष का विषय और क्या हो सकता है? सिद्धों के सैन्य में दिवाकर के समान आचार्य कुमुदचन्द्र स्वामी फरमाते हैं कि—

नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगन्ति।

पार्श्व प्रभु का नाम भी हमें पवित्र करने में समर्थ है, उनके स्तवन का तो क्या कथन करूं? मैं तो संसार के ताप से जला हुआ हूँ। इस सरोवर में स्नान करना तो किसी भाग्यवान का ही काम है। मुझे तो ठंडी ठंडी हवा ने ही परम आनंद प्रदान कर दिया।

परम योगीश्वर आनंद घन जी महाराज के शब्दों में

राम कहो, रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री।
'पारसनाथ' कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव ही॥

२४ तीर्थंकर देवों में योगिराज को प्रभु पार्श्व का ही नाम-स्मरण प्यारा लगा। अर्थ भी उन्होंने वता दिया। मोक्ष मार्ग के वे ब्रह्मा हैं-विधाता।

निज पद रमे राम सो कहिये, रहम करे रहमान जी।
परसे रूप पार्श्व सो कहिये, महादेव निर्वाण री॥

दयालु सम्यग्दृष्टि होने के वाद जो आत्मरूप यानी अमूर्त सौन्दर्य का संस्पर्श करता है, वही 'पार्श्व' नाम से विख्यात है। श्रद्धा प्ररूपण और स्पर्शना ही सिद्धि (अन्तिम लक्ष्य) स्थान के पार्श्व ले जाने में समर्थ हैं।

भगवान पार्श्व के चिह्नरूप में सर्प का संकेत है। पार्श्व प्रभु विषय वासना का हरण करने में सर्वाधिक समर्थ हैं। जव साँप काटता है, तो नीम कडवा नहीं लगता। उसी तरह जव जव संसार का मोह चढता है, तव विषय कडवे नहीं लगते। ज्यों ज्यों पार्श्व प्रभु के नाम की नागदमनी विष का हरण करती है, त्यों त्यों विषयों का रस कडवा लगने लगता है। नीम कडवा लगने लगा कि समझो, विष उतरा। आचार्य-प्रवर भद्रवाहु स्वामी फर्माते हैं—

विषहर–विष–निन्नासं मंगल–कल्याण–आवासं ।

विषय के सर्प का विप दूर कर के मंगल और कल्याण के धाम में पहुँचा देने वाले पार्श्व प्रभु का यह विवेचन हमारे लिये सर्वतो भद्र सिद्ध होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

सभी पुष्प उद्यान को सुरभित करते हैं, पर सभी सुमनों की सुरभि भिन्न भिन्न है । इसी प्रकार चौवीसों तीर्थंकर हमारे जीवनाराम को सुगन्धित करते हैं, पर पार्श्व प्रभु के सुमन का परिमल कुछ खास विशेपता रखता है ।

उनका तीर्थ शासनकाल सब से कम परन्तु उनकी प्रतिष्ठा सब से ज्यादा। उनकी प्रतिष्ठा की क्या कहें। जिस प्रकार भगवान महावीर के जीव को आदिनाथ ऋषभदेव के समय ही पता लग गया था कि वे तीर्थंकर होने वाले हैं, यह पता उनके एक गणधर को पूर्व चौवीसी में ही खबर हो गई थी, तभी से उनकी प्रतिष्ठा प्रारम्भ है । इतना ही नहीं भारत की सब से बडी नगरी के सब से बडे उत्सव में शोभायात्रा धर्मनाथ की होती है, पर कहा जाता है, पार्श्वनाथ की पालकी । इससे भी बडी प्रतिष्ठा यह है कि सम्मेद शिखर में बीस तीर्थंकरों का निर्वाण कल्याण हुआ, पर प्रतिष्ठा है 'पारसनाथ हिल' की। इतना ही नहीं, स्टेशन का नाम भी 'पारसनाथ' है।

इसका कारण यही है कि पार्श्वनाथ प्रभु हमें संसार के विषयों का विप उतारने में सर्वथा समर्थ हैं। उन्होंने सर्प का चौदह पूर्व का सार सुना कर उद्धार कर दिया तो हम मनुष्यों को नमस्कार प्रदान कर के कल्याण कर दें, उसमें क्या आश्चर्य है ? इंजिन से अलग नहीं हो तो डिब्बा पहुँच जाता है, उसी प्रकार हम पार्श्व प्रभु के परिचय से विभक्त न रहेंगे, तो भी कल्पतरु हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

नमस्कार अरिहन्त प्रभु, नमस्कार जिन सिद्ध ।
नमस्कार आचार्य गुरु, उपाध्याय समृद्ध ।।
उपाध्याय शुद्ध समृद्ध वाचक रहे ।
सर्व साधु को नमन सिद्धि साधन गहे ।।
नमो सकल श्रीसंघ सदा संकट हरण ।
'सूर्यचन्द्र' सर्वत्र मधुर मंगल करण ।।

सुन्दर मृदु मंगल करण, वीतराग दृढ भक्ति ।
दृष्टिवाद का पूर्वगत, निर्विवाद निज शक्ति ।।
निर्विवाद निजशक्ति चतुर्दश युक्तियाँ ।
नन्दि घोषण चूल मूल अभिव्यक्तियाँ ।।
ब्रह्मरन्ध्र उच्छिन्न प्रवाद सुनाद है ।
'सूर्यचन्द्र' चैतन्य प्रथम उत्पाद है ।।

अधःपात अब है कहाँ ? चित्त हुआ निर्वैर।
शत्रुभाव निर्मूल है— नमस्कार में खैर ॥
नमस्कार में खैर विश्वमैत्री वरी।
प्रथम पूर्व की सम्यक् वृत्ति यही सरी ॥
'सूर्यचन्द्र' अग्रायन सिद्धि-स्थान है।
द्वितीय पद में पूर्व द्वितीय प्रदान है ॥
प्रगति कार्य में अस्ति या नास्ति शुद्ध आचार।
आचार्यों से धार ले निर्मल व्रत व्यवहार ॥
निर्मल व्रत व्यवहार पूर्व दोनों कहे।
ज्ञान प्रवाद उपाध्यायों के गुण गहे ॥
'सूर्यचन्द्र' साधन विनु सत्य कहाँ मिले।
यों पाँचों पद में पट् पूर्व सुरभि खिले ॥
आत्मकर्म दर्शन हुआ, 'एस पंच नवकार'।
विद्या प्रत्याख्यान से सर्व पाप संहार ॥
सर्व पाप संहार 'ज्ञान' सच्चा यही।
'सव मंगल' चारित्र्य कृति निर्मल रही ॥
'सूर्यचन्द्र' कल्याण प्राण आधार हैं।
'मंगल प्रथम' विशाल क्रिया 'तप' 'सार' हैं ॥

यह पंच नमस्कार ही आत्मप्रवाद और कर्मप्रवाद का सम्यक दर्शन है। विद्याप्रवाद प्रत्याख्यान सहित हो तो सर्वपाप प्रणाशन रूप सम्यग्ज्ञान है। चारित्र्य वृत्ति सर्व मंगलमयी है, यही कल्याण और प्राण प्रवाह है। तप सर्व श्रेष्ठ मंगल होने से यहीं क्रिया विशाल और लोक विंदुसार है। इस प्रकार चौदह पूर्वों का रहस्य नमस्कार मंत्र में समाविष्ट है। यह नमस्कार मंत्र सुना कर जिस पार्श्व प्रभु ने विषधर सर्व को निर्विष बना दिया, उनका चरित्र पठन हमारे विषयों का विष उतारने में अवश्य समर्थ होगा। पुष्कर राज के इस उत्तम तीर्थ देवेन्द्र घाट पर स्नान कर के अपने भव्य हृदय को दिव्य बनाते हुए सब को आह्वान करता हूँ कि प्रभु के मंगल चरित्र को अवगाहन कर अपने आपको पवित्र बनावें।

ज्ञानपंचमी
२४९६
वीरनिर्वाण

सूरज चन्द डाँगी का सप्रेम
वडे मंदिर के पास वडा घर
वडी सादडी (राजस्थान)

लेखक की कलम से

भगवान पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन प्रबुद्ध पाठकों के कर कमलों में अर्पित करते हुए अतीव प्रसन्नता है। भगवान पार्श्व को पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी इतिहास विज्ञों ने एक ऐतिहासिक पुरुष माना है, जिसके सम्बन्ध में सप्रमाण वर्णन मूल ग्रन्थ में किया गया है।

मेरी दृष्टि से भगवान पार्श्व की हजारों हजार विशेषताएँ हैं, उसमें एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनका शासन काल अन्य तेईस तीर्थंकरों की अपेक्षा बहुत ही कम रहा है, केवल २५० वर्ष किन्तु उनकी कीर्ति कौमुदी का प्रकाश सबसे अधिक रहा है। वे सब से अधिक जन-प्रिय रहे हैं। वर्तमान युग में श्रमण भगवान महावीर का शासन चल रहा है। किन्तु भगवान महावीर से भी अधिक लोकप्रिय भगवान पार्श्व रहे हैं। यही कारण हैं कि श्रुतकेवली भद्रबाहु, प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर, कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचंद्र, देवभद्र सूरि, आचार्य शीलांक, आचार्य गुणभद्र प्रभृति अनेक मूर्धन्य मनीषियों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं में श्रद्धा पूरित संस्तवन ही नहीं किया है, अपितु, उनके जीवन-दर्शन पर विस्तार से विवेचन भी किया है। आधुनिक युग में पाश्चात्य विचारक डॉ. हर्मन जैकोबी, बौद्ध साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान धर्मानंद कोसाम्बी, पण्डित सुखलालजी, प्रा. दलसुखभाई मालवणिया, डॉ. कामताप्रसाद जैन, पण्डित कैलाशचंद्र जी आदि अनेक विद्वानों ने भगवान पार्श्व के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का समुद्घाटन किया है, जो भगवान पार्श्व की लोकप्रियता का ही ज्वलंत प्रमाण है।

भगवान पार्श्व भारतीय संकृति के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र रहे हैं। वे श्रमण संकृति के उन्नायक तो थे ही। उनके दिव्य प्रभाव से श्रमण संस्कृति की जैन और बौद्ध धाराएँ प्रभावित रही हैं, पर वैदिक परम्परा भी कम प्रभावित हुई। वैदिक परम्परा जो प्रारम्भ में यज्ञ-याग प्रधान थी, जिस में ...ता का स्वर ही मुखरित हो रहा था, उसमें आध्यात्मिक चिन्तन का ...पुरने का श्रेय भगवान पार्श्व को ही है। भगवान पार्श्व ने ही वैदिक पर... ...रा को भौतिकता से आध्यत्मिका की ओर मोडा है। विद्वानों का मन्तव्य है

कि उपनिषद साहित्य भगवान पार्श्व के पश्चात् निर्मित हुआ है। उसमें आध्यात्मिक चर्चा विशद रूप से आयी है। वह आध्यात्मिक चर्चा वेदों में कहीं भी नहीं मिलती। इसलिए स्पष्ट हैं कि वह भगवान पार्श्व की ही वैदिक परम्परा को देन है। आधुनिक विद्वानों को साम्प्रदायिक और पूर्वाग्रह के रंगीन चश्मे उतार कर तटस्थ दृष्टि से इस सत्य-तथ्य की अन्वेषणा करनी चाहिए। उन्होंने यदि इस प्रकार किया तो प्रस्तुत तथ्य स्वीकार करने में किसी भी प्रकार का ऐतराज नहीं होगा।

प्रसंगवश एक बात मैं इतिहासकारों सें नम्र निवेदन करना चाहूँगा कि आज जो इतिहास के नाम पर कल्पना के घोडे दौडाये जा रहे हैं, मनघडन्त ऊटपटांग लिखा जा रहा है, वह उचित नहीं है। इस प्रकार का लेखन इतिहास को और भी अधिक धूमिल बनाता है। आवश्यकता है साम्प्रदायिक विष को न उगल कर जो सत्य-तथ्य है, उसे प्रकट किया जाय।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भगवान पार्श्व के सम्बन्ध में कुछ लिखा गया है। यह इस महापुरुष का सम्पूर्ण जीवन चरित्र नहीं है। क्या उस महापुरुष का जीवन एक लघुकाय पुस्तक में समा सकता है? क्या विराट् महासागर में से एक दो जल कणों को निकाल कर दिखाना उस महासागर का परिचय हो सकता है? क्या सहस्ररश्मि सूर्य के विश्व व्यापी आलोक को एक पक्षी अपने लघुकाय घोंसले में बन्द कर सकता है? क्या गंगा और जमुना के अनन्त जलकणों को एक घट में भरा जा सकता है? नहीं, फिर महापुरुष के असीम जीवन को ससीम शब्दों में कैसे अभिव्यक्त किया जा सकता है? तथापि श्रद्धा और भक्तिभावना से विभोर हो कर प्रस्तुत प्रयास किया गया है। प्रसंगवश मिथ्या धारणाओं का निरसन करने के लिए कहीं-कहीं पर मुझे आलोचना भी करनी पडी है। किन्तु किसी का खण्डन-मण्डन करना मेरा लक्ष्य नहीं रहा है। अपितु सत्य-स्थिति को प्रकाश में लाया जाय यह एक मात्र उद्देश्य रहा है।

शोध साहित्य में आजकल दो प्रकार की शैली मुख्य रूप से चल रही है। कितने ही विचारक अत्यन्त संक्षिप्त शैली को पसन्द करते हैं तो कितने ही विचारक व्यास शैली को। मैंने मध्यम मार्ग अपनाया है। क्यों कि अत्यन्त संक्षिप्त शैली उस विषय के ज्ञाता, विशिष्ट विद्वानों के लिए ही उपयुक्त होती है और व्यास शैली सर्व साधारण के लिए। पर मध्यम शैली सभी के लिए उपयोगी हो सकती है—यह मेरी धारणा है।

ग्रन्थ की भाषा को मैंने साहित्यिक व दार्शनिक 'लहजे' से उन्मुक्त रखी है। इतिहास एवं शोध का सम्बन्ध भाषा से नहीं अपितु तथ्यों से है। उसकी अपनी एक स्वतंत्र शैली है, जिसमें अलंकारिता एवं गूढता का प्रायः अभाव होता

है। शब्दों की सरलता-सरसता और भावों की स्पष्टता ही उसका मानदण्ड है।

महामहिम परमश्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के प्रति कृतज्ञ हूँ। इन शब्दों में जितना व्यवहार है, उतनी सच्चाई नहीं है। सच्चाई यह है कि मेरी प्रत्येक कृति उनकी प्रेरणा-रेखाओं का ही आकलन है। कृतज्ञ शब्द मे उतना सामर्थ्य कहां है, जो मन की सारी सचाई को प्रकट कर सके।

परमादरणीय परमश्रद्धेया सतिशिरोमणि सद्गुरुणीजी श्री सोहनकुंवरजी म-की यह प्रवल इच्छा थी कि मैं भगवान पार्श्वनाथ पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखूं। उनकी अन्तःप्रेरणा ने मुझे प्रेरित किया, उनके पथ-प्रदर्शन में मेरा मार्ग प्रशस्त किया, पर खेद है कि मैं उनकी आन्तरिक इच्छा उनके जीवन काल में पूर्ण न कर सका। अव मातेश्वरी साध्वीरत्न प्रतिभामूर्ति प्रभावतीजी म. एवं प्रिय वहिन परम विदुषी पुष्पवतीजी साहित्य रत्न की प्रेरणा से मैं सद्गुरुणी महाराज की भावना को साकार रूप दे सका हूँ। वे स्थूल रूप में भले ही हमारे सामने नहीं रहीं हैं, किन्तु उनके हृदय की भव्य-भावना सदा मेरे साथ रही है और रहेगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ में शताधिक ग्रन्थों के उद्धरण प्रयुक्त हुए हैं। जितने ग्रन्थ प्रयुक्त हुए हैं उनसे भी अधिक ग्रन्थों का अवलोकन करना पडा है। मैं उन सभी लेखकों का हृदय से आभार मानता हूँ, जिनके लेखन से मुझे दृष्टि प्राप्त हुई और मेरा मार्ग सरल वना। श्री अभय जैन ग्रन्थालय के अधिपति महान साहित्यकार श्री अगरचन्दजी नाहटा को तथा जैन साहित्य विकास मण्डल, वम्बई, के अधिपति साहित्य सेवी सेठ अमृतलाल कालीदास एवं मण्डल के संचालक पं. सुवोध भाई को विस्मृत नहीं हो सकता, जिन्होंने मुझे भगवान पार्श्वनाथ सम्वन्धी अनुपलव्ध ग्रन्थों को उपलव्ध किये और लम्वे समय तक उसको उपयोग करने की छूट दी।

स्नेह–सौजन्य–मूर्ति श्री हीरामुनिजी म., श्री गणेशमुनिजी शास्त्री, श्री जिनेन्द्रमुनि, रमेशमुनि, राजेन्द्रमुनि, पुनीतमुनि का स्नेहास्पद व्यवहार भी भुलाया नहीं जा सकता। साथ ही श्री कनकमलजी मुनोत एम. ए., वी. टी. ने पुस्तक को मुद्रण कला की दृष्टि से सर्वाधिक सुन्दर वनाने का प्रयास किया है, उसकी स्मृति भी सदा वनी रहेगी।

प्रकाशकीय

साधुओं के बारे में हम लोगों में अनन्त गलतफहमियाँ हैं। उनका वर्ताव भी कुछ अंश में इसका साक्षी होता है। हमारे बुजुर्गो ने तो लिख दिया कि,

वाल मुंडाएँ तीन गुण,
सिर की मिट गई खाज।
खाने को लड्डू मिले,
अर लोग कहे महाराज॥

फिर भी सभी साधु इस प्रकार के नहीं हुआ करते। साधु का प्रमुख गुण होना चाहिए अध्ययनशीलता। आप पढे और औरों को पढाए। ज्ञान प्राप्ति में ही साधु-जीवन की सफलता देखी गई है। ज्ञान-साधना ही सच्ची साधना है। ज्ञान-साधना में लीन साधु आत्म-कल्याण तो करते ही हैं, साथ ही समाज का भी उपकार करते रहते हैं। जैन साधुओं में ज्ञान की उपासना की परम्परा एवं परिपाटी अतीत काल से चली आई है।

पं. देवेन्द्रमुनि, शास्त्री इसी परम्परा वृक्ष की एक शाखा हैं। किसी भी समय जाइए, आप उन्हें पढाई में मग्न पाएँगे। पुस्तकों की राशि के बीच बैठे हुए वे अपने आप में एकात्म दिखाई देते हैं। पूर्वाचार्यों, आधुनिक शास्त्री-पण्डितों एवं समकालीन विचारवन्तों की कृतियों में खोज-बीन करना उनका स्वभाव सा बन गया है।

इन कृतियों में से प्राप्त अमृत का पान वे ज्ञान पिपासुओं को कराने के लिए सदा समुत्सुक रहते हैं। छोटी-बडी करीब चालीस कृतियाँ उन्होंने समाज के आगे प्रस्तुत की हैं।

उन्हीं की शोधक विचार-दृष्टि का परिपाक हम 'भगवान पार्श्व: एक समीक्षात्मक अध्ययन' मे पाते हैं। पं. मुनि श्रीमल प्रकाशन को तेईसवें तीर्थकर भगवान पार्श्वनाथ का यह शोधपूर्ण जीवन प्रकाशित करने में अभिमान का अनुभव हो रहा है।

हमारे प्रकाशन का दृष्टि-बिन्दु सदा यही रहा है, कि समाज को मार्गदर्शक, ज्ञानदायी, आन्तरिक ज्ञानलालसा की परिपूर्ति कर सके ऐसा ही साहित्य सदा प्रस्तुत किया जाए। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन से हमारे उद्देश की पुष्टि होती है।

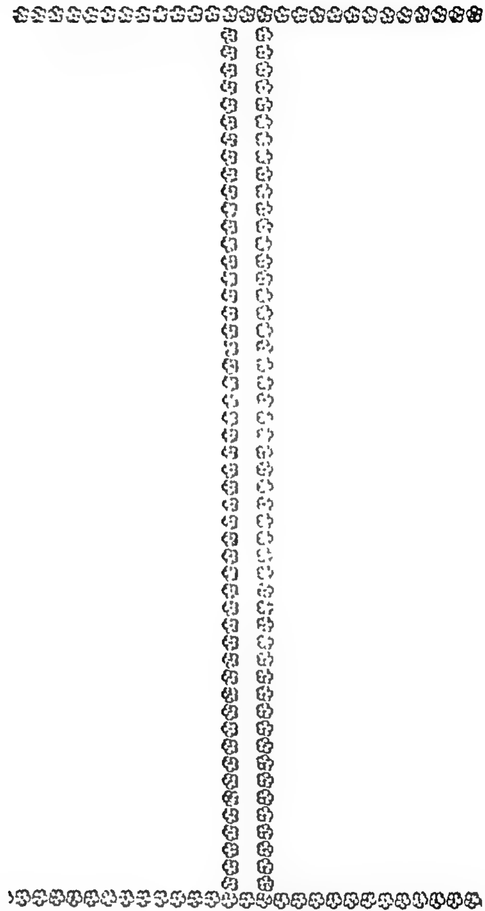
पं. देवेन्द्रमुनिजी का प्रचुर पठन, चातक-चयन और चिरकालीन चिन्तन हम प्रस्तुत प्रबन्ध में पाते हैं। आगमों से ले कर आधुनिकतम विद्वानों का अवगाहन कर यह प्रबन्ध तैयार किया गया है। भगवान महावीर, तथागत बुद्ध एवं उनके समकालीन सभी दार्शनिकों ने भगवान पार्श्व के जीवन से प्रेरणा, विचारों से तत्त्व-दर्शन एवं उपदेशों से कार्य-दिशा प्राप्त की थी। उन्हीं जगद्वंद्य भगवान पार्श्व के जीवन पर शोध पूर्ण प्रकाश डालने का महत्कार्य देवेन्द्रमुनिजी ने किया है। उनका यह परिश्रम समाज के लिए उपकारक सिद्ध होगा, यह हमारी निश्चयात्मक मान्यता होने से ही हम अपने प्रकाशन के छठे पुष्प के रूप में समाज के चिन्तनशील मनीषियों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं।

अल्पावकाश में आकर्षक ढंग से पुस्तक का मुद्रण करने में लोकसंग्रह मुद्रणालय के श्री. सोनार, श्री. गिजरे एवं उनके कर्मचारियों ने काफी कष्ट उठाये, अनावरण का चित्र श्री. सालगर ने अपने ढंग से तयार किया, एवं श्री. फूटरमलजी एवं श्री. हस्तीमलजी बलदोटा बन्धु तथा बंगलोर वाले मे. बी. धनराजजी हीराचंदजी ने आर्थिक सहयोग दिया। इन सभी को धन्यवाद देते हुए हम आशा रखते हैं कि यह अभ्यास पूर्ण शोध कृति समाज की कसौटी पर खरी उतरेगी।

वीरनिर्वाण तिथि
२४९६

कनकमल मनोत

भगवान पार्श्व



उपक्रम

उवसग्गहरं पासं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं ।
विसहर–विसनिन्नासं मंगल–कल्लाण–आवासं ।।

— आचार्य भद्रबाहु

भगवान पार्श्व : एक अनुशीलन | १

जैन शासन में मानव सत्ता को अनादि स्वीकार करके दर्शन, चिन्तन, धर्म एवं संस्कृति के अनादि अनन्त प्रवाह को चिर अतीत से चिर अनागत के साथ जोड दिया है। जिन दर्शनों ने सृष्टि एवं मानव सत्ता के उद्भव तथा आविर्भाव की कल्पना की उनके समक्ष चिन्मय आत्मतत्त्व एवं उसके सुविकसित स्वरूप मानव सत्ता के अनादि अनन्त का वह महत्त्व नहीं रहा जिनके आधार पर उन दर्शनों की पृष्ठ भूमि टिकी हुई है। वस्तुतः जैन तत्त्व चिन्तन की यह प्रौढता ही है कि उसने जगत् आत्मतत्त्व, एवं मानव सत्ता के अस्तित्व को अनादि स्वीकार करके, धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के एक अखण्ड अविच्छिन्न प्रवाह को मान्यता दी है। हाँ, काल प्रभाव के अनुसार उस प्रवाह में कभी तीव्रता एवं मन्दता भी आती रहती है, विकास एवं ह्रास भी होते रहते हैं किन्तु अस्तित्व रूप से कभी भी उसका विनाश नहीं होता। विकास-ह्रास की इस प्रक्रिया को जैन परम्परा ने काल चक्र के दो खण्डों में विभक्त किया है। अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी। काल चक्र की व्याख्या के विस्तार में नहीं जाकर यहाँ हम इतना ही कहेंगे कि अवसर्पिणी काल-हीनता एवं मन्दता का काल है, इस काल में धर्म, संस्कृति, चिन्तन, मानवीय गुण, पृथ्वी एवं वस्तु जगत् के रस आदि समस्त तत्त्व क्रमशः क्षीण क्षीणतर होते जाते हैं और उत्सर्पिणी काल में वे क्रमशः विकास की ओर गतिशील होते हैं।

जिस वर्तमान कालचक्र में हम जीवन यापन कर रहे हैं, वह अवसर्पिणी काल कहा जाता है। जिस धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति का

संबल लिए हमारा जीवन ऊर्ध्वमुखी बन रहा है, उसके प्रथम सूत्रधार इस युग के आदि पुरुष भगवान् ऋषभदेव हुए हैं, वैदिक एवं बौद्ध परम्परा के इतिहास ने भी ऋषभदेव को एक धर्म प्रवर्तक के रूप में विशिष्ट व्यक्ति माना है।[1] जैन परम्परा उन्हें युग प्रवर्तक के रूप में मानती है। उन्होंने ही सर्व प्रथम पारिवारिक प्रथा, समाज व्यवस्था, शासन पद्धति, समाज नीति, राजनीति की स्थापना की। उसके पश्चात् श्रमण बने, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बनकर तीर्थ की संस्थापन कर तीर्थंकर बने।[2]

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् प्रस्तुत युग में अनेक धर्मप्रवर्तक, तीर्थंकर हुए, जिनके जीवन, उपदेश एवं परम्परा के सम्बन्ध में अभी तक बहुत कम अन्वेषण हुआ है और जो हुआ है उतना लिखा भी नहीं गया है। लेखक इस दिशा में प्रयत्न शील है कि भगवान् ऋषभदेव से लेकर तीर्थंकर महावीर तक का विस्तृत प्रामाणिक एवं तुलनात्मक अनुशीलन प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाये। और इस ऐतिहासिक अभाव की पूर्ति में अपना यत् किंचित् सहयोग प्रदान किया जाये। सम्प्रति सामग्री का संकलन-आकलन किया जा रहा है और शीघ्र ही उसे सक्रिय रूप देने का विचार चल रहा है। यहाँ हम इस युग के निकटतम धर्म प्रवर्तक, तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन, उपदेश, एवं परम्परा पर ही अनुशीलन करेंगे।

पार्श्व के पूर्व, भारत में धार्मिक स्थिति

भगवान् पार्श्व के उपदेश की विशिष्टता एवं उपयोगिता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उस समय की धार्मिक स्थिति को समझा जाए।

ई. पूर्व नौवीं दसवीं शताब्दी की धार्मिक परिस्थिति पर विचार करने के लिए हमें उपलब्ध वैदिक साहित्य से सहायता लेनी होगी। ई. पूर्व नौवीं शताब्दी के पूर्व ही ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल की रचना

१ विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए पढे, लेखक की पुस्तक—ऋषभदेव : एक परिशीलन, प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ लोहामण्डी आगरा २.

२ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति.

हो चुकी थी। इस मण्डल के नासदीय सूक्त[1], हिरण्यगर्भ सूक्त[2], तथा पुरुषसूक्त प्रभृति[3] से यह स्पष्ट है कि उस समय बुद्धि जीवी भारतीयों के अन्तर्मानस में विश्व की उत्पत्ति, उसके पूर्व की स्थिति, मानव और अन्य प्राणियों की उत्पत्ति वर्णाश्रम प्रभृति प्रश्नों के सम्बन्ध में जिज्ञासाएं उद्‌बुद्ध होने लगी थीं तथा उसके समाधान का प्रयास भी किया जाने लगा था। और इन प्रश्नों पर विचार चर्चाएं भी होती थीं, जिस की सूचनाएं हमें इन ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। वैसे इन ग्रन्थों में यज्ञ-यागों को ही प्राधान्य दिया गया है, उन यज्ञों के समय अनेक विद्वान् यज्ञ-सम्बन्धी विचार करने के लिए एकत्र होते थे, उस समय जगत् के मूलतत्त्व जीव, ब्रह्म आदि की अन्वेषणा का भी प्रयास किया जाता था, वही चिन्तन प्रधान जिज्ञासाएँ उपनिषद् काल में तीव्रतर हुईं। उपनिषदों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रश्न की जिज्ञासाओं पर चिन्तन-मनन-निदिध्यासन करने के लिए विद्वानों की विशेष सभाओं का आयोजन होता था, जिन में राजा और ऋषि, ब्राह्मण और क्षत्रिय, समान रूप से भाग लेते थे। इन सभाओं में जगत् के मूल तत्त्व के सम्वन्ध में जो विशिष्ट सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये उन्हें 'परा विद्या' कहा गया।[4] गार्ग्यायण, जनक, भृगु, वारुणि, उद्दालक, आरुणि, और याज्ञवल्क्य आदि इस विद्या के प्रमुख आचार्य थे। इन सभी विचारकों के विचारों में एकरूपता नहीं, किन्तु विविधता थी। किसी का चिन्तन जगत् के मूल कारण की ओर प्रवाहित था तो किसी का आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में, किसी का सुख-दुःख और पुण्य-पाप, की पहली को सुलझाना चाहता था, तो किसी का ईश्वर की ओर।

जब ब्रह्म एवं आत्मा विषयक चिन्तन में गति आगे बढी तो सहज ही था कि वेद वर्णित यज्ञ याग एवं क्रियाकांड के प्रति श्रद्धा की

---

१ ऋग्वेद १०।१२९
२ ,, १०।१२१
३ ,, १०। ९०
४ मुण्डकोपनिषद् १।१।४–५

मंदता हो।[1] चिंतकों ने उसे 'अपरा विद्या' या 'अविद्या' तक भी कह दिया और परा विद्या को ज्ञान-विद्या, आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या, योग विद्या कह कर उसे वेद–विद्या (यज्ञ आदि) से श्रेष्ठ प्रतिपादित किया जाने लगा। इस का मूल कारण यह था कि उक्त प्रकार की तत्त्व जिज्ञासाओं का जो साध्य परागति, अर्थात् शाश्वत मोक्ष गति है उसकी प्राप्ति के साधन के रूप में उन यज्ञ आदि क्रियाओं का किसी भी प्रकार का उपयोग नहीं था। कठोपनिषद् में यही बात इस रूप में कही गई है— "**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन**"[2] जब इस प्रकार की विचार धाराएं आगे बढी तो वेदों के अपौरुषेयत्व, अनादित्व, आदि मान्यताओं पर आक्षेप और विरोध किया जाने लगा। ये स्वतंत्र विचारक अतीन्द्रिय विषयों पर एकान्त-शान्त कान्त कानन में विचार करते थे, अधिकांशतः वे मौन रहते थे, अतः वे मुनि कहलाते थे। वेदों में भी ऐसे वातरशना तत्त्वचिंतकों को ही 'मुनि' कहा है।[3] इन वनवासियों का जीवन सिद्धान्त तपश्चर्या, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य था। छान्दोग्योपनिषद्[4] में श्रीकृष्ण को घोर अंगिरस ऋषि ने यज्ञ की यही सरल विधि बताई थी, उनकी दक्षिणा भी यही थी। गीता में भी इन भावनाओं की उत्पत्ति ईश्वरसे बताई है।[5]

इस प्रकार ईश्वी पूर्व नौवीं दसवीं शताब्दी में आत्मचिन्तक साधक वनों में रहकर मौनभाव की साधना करते थे। दूसरी ओर यज्ञ-यागों पर निष्ठा रखने वाले पशुओं की बलि चढा कर देवताओं को प्रसन्न कर अपनी भौतिक समृद्धि चाहते थे।

---

१ मुण्डकोपनिषद् १।२।७–११
(ख) भगवद्गीता अ. २

२ कठोपनिषद् १।२।२–३

३ भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृ. १४ से १६

४ छान्दोग्योपनिषद् ३।१७।४–६

५ अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः
भवन्ति भावा भूतानां मत एव पृथग्विधाः ॥
गीता—१०।५

वाजसनेयी संहिता[1] के अभिमतानुसार पुरुष मेध. यज्ञ में १८४ पुरुषों का वध किया जाता था। ऋग्वेद,[2] विष्णुस्मृति[3], मनुस्मृति[4] प्रभृति ग्रन्थों में यज्ञ-याग के लिए की गई हिंसा को हिंसा नहीं समझा जाता था। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' जैसे गर्हित एवं थोथे सूत्र गढ लिये गये थे। स्वर्ग का रंगीन प्रलोभन जन-जन के समक्ष खडा करके यज्ञों में खुले आम पशु-वध का दुश्चक्र तेजी से चल रहा था। हजारों लाखों पशुओं की लाशें यज्ञों की वलिवेदी पर छटपटा रही थीं।

भारत की इसी धार्मिक पृष्ठभूमि में पार्श्व का आविर्भाव हुआ। उनके हृदय से करुणा का स्रोत फूट रहा था। वे जन-जन को सुख का राजमार्ग दिखाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने यज्ञ-यागमें होनेवाली हिंसा का विरोध कर इंद्रिय दमन पर बल दिया। आधुनिक इतिहास कारोंकी कल्पना है कि भगवान पार्श्व के द्वारा यज्ञ-याग का विरोध करने के कारण यज्ञ यागी उनके कट्टर विरोधी हो गये। उन्होंने उनका घोर विरोध किया जिसके फल स्वरूप उन्हें अपना जन्मस्थान छोड कर अनार्य कहे जानेवाले देश को अपने उपदेश का क्षेत्र बनाना पडा।[5]

---

१ वाजसनेयी संहिता–३०

२ ऋग्वेद, १०।९०; १।२४।३०; ९।३

३ सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, जिल्द ७, ५१, ६१–६३

४ (क) यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः।

–ब्राह्मण को प्रशस्त पशु और पक्षियों का यज्ञ के लिये वध करना चाहिये।

(ख) यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य, तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः॥

–सब यज्ञों के ऐश्वर्य के लिए स्वयं ब्रह्मा ने पशुओं को यज्ञ के लिये बनाया है, अतः यज्ञ में होनेवाली हिंसा भी अहिंसा ही है।

(ग) या वेदविहिता हिंसा, नियताऽस्मिश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्वभौ॥

— मनुस्मृति ५।२२।२९।४४

इस चराचर विश्व में वेदविहित हिंसा को अहिंसा ही समझना चाहिए क्योंकि वेद से ही धर्म का निर्णय होता है।

५ हिस्टॉरिकल विगिनिंग ऑफ जैनिज्म, पृष्ठ ७८

इसका संकेत हमे पार्श्व जीवन की दो घटनाओं से भी प्राप्त होता है। भगवान पार्श्व को ध्यान से विचलित करने का कार्य मेघमाली (भूतानन्द और शंबर) नामक देव ने किया था जो अपने पूर्वभव में एक ब्राह्मण तापस था। उस समय पार्श्व की सहायता धरणेंद्र नामक नाग ने की थी, यदि इस कथा पर रूपक की दृष्टि से सोचा जाय तो मेघमाली यज्ञ समर्थकों का प्रतिनिधित्व करनेवाला है और नाग से तात्पर्य अनार्य जाति से है। रक्षा करने का अर्थ आश्रयदाता सहज रूप में किया जा सकता है। पार्श्व के समय में यह अनार्य जाति दक्षिण बिहार और उडीसा या छोटा नागपुर के आसपास और उसके पूर्व दक्षिण में निवास करती थी। महाभारत से यह भी ज्ञात होता है कि मगध एक अनार्य जनपद था जहाँ पर कंस और जरासन्ध जैसे अनार्य राजा राज्य करते थे। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि उत्तर से पूर्व में जाकर बसने वाले आर्य याज्ञिक हिंसा के विरोधी होने से वे व्रात्य आर्य कहलाने लगे।[1]

हम यह पहले ही बता चुके हैं, कि पार्श्व अनार्य देशों में प्रचार के लिए गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि नाग जनजाति आर्यों के पूर्व की ओर बढने के कारण आसाम की पहाडियों में जा बसी थी, जहाँ पर वह आज भी वर्तमान है। यह नाग जाति पार्श्व के उपदेश से अत्यन्त प्रभावित हुई। आर्य एवं अनार्य दोनों जातियों पर पार्श्व का प्रभाव होने के कारण भगवान पार्श्व को **'पुरिसादरणीय'** कहा जाने लगा। भगवान महावीर इस विशेषण का प्रयोग अनेक स्थानों पर करते हैं। महावीर के समय में भी पार्श्व के अनुयायी इसी देश में सबसे अधिक संख्या में थे। तुंगिया नगरी जो राजगृह से कुछ ही दूर पर स्थित थी, वहाँपर ५०० पार्श्वापत्यीय श्रमण एक साथ आते हैं, और भगवान् महावीर से प्रश्न करते हैं।[2] इसपर से लगता है मगध पार्श्व के अनुयायियों का केंद्र था।

चातुर्याम

भगवान पार्श्व ने जिस धर्म का प्रचार किया था वह चातुर्याम

---

१ संस्कृति के चार अध्याय.

२ भगवती सूत्र २, पृ. १०६.

धर्म है। उत्तराध्ययन[1] व्याख्या प्रज्ञप्ति[2] और स्थानाङ्ग[3] में 'चाउज्जाम' धर्म का उल्लेख आता है। वह चातुर्याम धर्म यह है—सर्व प्राणातिपात विरति, २ सर्व मृषावाद विरति, ३ सर्व अदत्तादान विरति ४ सर्व बहिर्धादान विरति।[4] इन्हीं चार विरतियों को चार याम कहा गया है। 'याम' शब्द संस्कृत भाषा के यम् धातुसे बना है जिसका अर्थ नियंत्रण है। उक्त चार प्रकार से प्रवृत्तियों को रोकना ही चातुर्याम धर्म है।

स्थानाङ्ग के अनुसार भरत और ऐरावत क्षेत्रों में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर को छोडकर मध्य के बावीस तीर्थंकर चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं।[5] आचारांग के अनुसार भगवान महावीर ने केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् पंच—महाव्रतों का उपदेश दिया।[6] समवायांग में वर्णन है कि पुरिम और पच्छिम तीर्थंकरों के पाँच यामों की पच्चीस भावनाएँ हैं।[7] दिगम्बराचार्य पूज्यपाद का तो यह मन्तव्य है कि महावीर के पूर्व पाँच महाव्रतों का उपदेश किसी भी तीर्थंकर ने नहीं दिया।[8] उत्तराध्ययन के केशी गौतम सम्वाद से भी यह स्पष्ट है कि

---

१ उत्तराध्ययन २३। १३

२ भगवती ३। ५। १०८

३ स्थानाङ्ग ३२८

४ सव्वातो पाणातिवायाओ वेरमणं, एवं मुसावायाओ अदिन्नादाणाओ सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं स्थानाङ्ग

५ भरहेरावएसु णं वासेसु पुरिमपच्छिमवज्जा मज्झिमगा बावीसं अरहंता भयवंता चाउज्जामं पन्नविंति स्थानाङ्ग

६ तओ णं समणे भयवं महावीरे उपण्णणाणदंसणधरे गोयमाइणं समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वयाइं सभावणाइं छज्जीवणिकायाइं आइक्खइ भासइ परूवेइ तं जहा....

आचारांग २। १५-१०-२४

७ समवायांग ३२। ४

८ चारित्र्यभक्ति ७

मैथुनं परिग्रहेऽन्तर्भवति, न ह्यपरिगृहीताः योषिद् भुज्येत

स्थानांग ४।२६६ वृत्ति

प्रथम तीर्थंकर के समय पुरुष ऋजु जड और अन्तिम तीर्थंकर के समय वे वक्रजड होते हैं। अन्तःधर्म दो प्रकार का है। सारांश यह है कि जो उपदेश मध्य में बावीस तीर्थंकरों के द्वारा दिया जाता है, वही उसी रूप में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के द्वारा नहीं दिया जा सकता। क्यों कि इन दोनों तीर्थंकरों के समय मानव जड (सरलवक्र) होते हैं। श्रमण केशी का प्रश्न था–'पार्श्व ने चातुर्याम धर्म और वर्धमान ने पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया। जब दोनों ही तीर्थंकरों का ध्येय एक था, तो फिर यह दुविधा क्यों? उत्तर में इन्द्रभूति ने कहा–'प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर ने पाँच महाव्रतों का और मध्य के बावीस तीर्थंकरों ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया।' टीकाकारों ने चार यामों में पाँच महाव्रतों को समाविष्ट किया है। आचार्य अभय देव ने 'वहिद्धादाण' शब्द की व्याख्या करते हुए परिग्रह में ब्रह्मचर्य का समावेश किया है, चूंकि स्त्री भी एक प्रकार से परिग्रह माना गया है। अतः ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का स्रोत एक ही था।

उत्तराध्ययन के टीकाकार शान्त्याचार्य ने लिखा है–'चातुर्याम वही है जो ब्रह्मचर्यात्मक पाँचवें महाव्रत सहित है।'[1]

आगम-साहित्य में अनेक स्थलों पर यह वर्णन आया है–भगवान् पार्श्व के अनुयायियों ने भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट पंच महाव्रत स्वीकार किये। और कुछ ऐसे भी पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ रहे हैं, जिन्होंने चार महाव्रत ही कायम रखे थे।

भगवान् महावीर ने चार महाव्रत के स्थानपर पाँच महाव्रत की स्थापना कब की? और क्यों की? यह एक ऐतिहासिक प्रश्न है। क्योंकि इस का उत्तर जैन ग्रन्थ देते हैं पर कब की, इसका उत्तर नहीं। चार यामों की प्रतिष्ठा भगवान पार्श्व के द्वारा हुई थी किन्तु लगता है निर्ग्रन्थ परम्परा में कुछ ऐसा शैथिल्य आ गया हो कि कुछ निर्ग्रन्थ अपरिग्रह का अर्थ संग्रह न करना इतना ही करके स्त्रियों का संग्रह या परिग्रह किये

---

१ चातुर्याम...स एव मैथुनविरमणात्मकः पञ्चमव्रतसहितः

उत्तराध्ययन २३

विना ही उनके सम्पर्क से परिग्रह का भंग नहीं समझते थे*। अथवा भविष्य में इस प्रकार का अपवाद समझा जा सकता है। इस कारण भगवान महावीर ने प्रभु पार्श्व के चातुर्याम को नया रूप दिया और पंच महाव्रतात्मक धर्म की देशना दी। इतिहास से यह भी पता चलता है कि भगवान महावीर ने अपनी पावापुरी की प्रथम देशना में ही इन्द्रभूति आदि को धर्म का जो उपदेश दिया वह पंच महाव्रत रूप ही था। अतः महावीर ने प्रारंभ से ही चातुर्याम की जगह पंच महाव्रत का उपदेश किया।

सामायिक और छेदोपस्थापनीय

भगवान् पार्श्व के समय सामायिक चारित्र था और भगवान् महावीर ने छेदोपस्थापनीय चारित्र का प्रवर्तन किया। मूलाचार के अनुसार भी सामायिक की शिक्षा मध्य के बावीस तीर्थंकरों ने दी।[1] इसका कारण भी मूलाचार कर्ता ने वही बताये हैं, जो कारण केशी को इन्द्रभूति गौतम ने बताये थे। मूलाचार के अनुसार "समस्त मानव कर्मों से विरति का पालन सामायिक है तथा उस विरति का वर्गों में विभाजन कर पालन करना छेदोपस्थापन है।" इस प्रकार विभाजित वर्गों को ही पाँच महाव्रत का नाम दिया गया है।[2] मूलाचार के टीकाकार वसुनन्दी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि छेदोपस्थापना का अर्थ ही पंच महाव्रत है। सर्वार्थसिद्धिकार ने भी सामायिक और छेदोपस्थापना का वही अर्थ और सम्बन्ध बताया है। देवनन्दि पूज्यपाद ने तत्वार्थ सूत्र पर टीका करते हुए लिखा है— 'जिसका लक्षण सर्व सावद्य कर्मों से निवृत्ति है उस सामायिक की अपेक्षा से यहां पाँच प्रकार का कहा गया है।[3] यह कथन पूज्यपाद ने पाँच महाव्रतों के प्रसंग में किया है, अतः उनका आशय पाँच महाव्रतों से है। सर्वार्थसिद्धि के

---

* सूत्रकृताङ्ग १।३।४।१०, ११, १२.

१ मूलाचार अ. ७।३९, श्री जिनदास पार्श्वनाथ फंड द्वारा सम्पादित प्रकाशित

२ मूलाचार ७।३७

३ सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एकं व्रतं तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पंचविधमिहोच्यते

—तत्त्वार्थ सूत्र ७–१ टीका

अनुसार ही राजवार्तिक ने भी सामायिक और छेदोपस्थापन का वही अर्थ किया है।[1]

भगवती सूत्र से ज्ञात होता है कि जो चातुर्याम धर्म का पालन करते थे उन मुनियों के चारित्र को सामायिक चारित्र कहा जाता था और जो मुनि सामायिक–चारित्र की प्राचीन परम्परा को छोड कर पंचयाम–धर्म में प्रव्रजित हुए उनके चारित्र को छेदोपस्थापनीय कहा गया है।[2]

सामायिक और छेदोपस्थापना के अर्थ निश्चित हो जाने पर जब हम मूलाचार और उत्तराध्ययन में निर्दिष्ट बावीस तीर्थंकरों की शिक्षा पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है हि उत्तराध्ययन में जिसे '**पंच सिक्खिओ**' कहा गया है वही मूलाचार में छेदोपस्थापना कहा गया है और जिस शिक्षा को उत्तराध्ययन में 'चातुज्जाम' कहा है उसे ही मूलाचार में सामायिक कहा है। पार्श्वनाथ सामायिक संयम के उपदेष्टा थे उसे महावीर ने पाँच वर्गों में विभाजित किया। दिगम्बर परम्परा में चातुर्याम धर्म का कहीं उल्लेख नहीं है। वहां पर पार्श्वनाथ को सामायिक संघ के उपदेष्टा बताया है।

विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार चारित्र एक सामायिक ही है।[3] चारित्र का अर्थ है समता की आराधना। जब विपमता पूर्ण प्रवृत्तियाँ छोडी जाती हैं तब सामायिक चारित्र प्राप्त होता है। उसका कोई विशेपण और विभाग नहीं होता। भगवान् पार्श्व ने चारित्र के विभाग कर विस्तार से नहीं समझाया, क्यों कि उन्हें विस्तार की आवश्यकता नहीं थी, जब कि भगवान् महावीर ने विस्तार से निरूपण किया। छेद

---

१ तत्वार्थसूत्र ७–१– राजवार्तिक

२ सामाइयंमि उ कए, चाउज्जामं अणुत्तरं धम्मं।
तिविहेणं फासयंतो, सामाइय संजमो खलु॥
छेत्तूण उ परियागं, पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं।
धम्मंमि पंच जामे, छेदोवट्ठावणो स खलु॥
—भगवती २५।७।७८६ गाथा ११२

३ विशेपावश्यक भाष्य गाथा १२६७

का अर्थ विभाग है। भगवान् पार्श्व ने निर्विभाग सामायिक चारित्र को महत्त्व दिया तो भगवान् महावीर ने विभागात्मक सामायिक चारित्र को। अर्थात् वही छेदोपस्थापनीय चारित्र के रूप में विश्रुत हुआ।

भगवान् महावीर ने भगवान् पार्श्व की परम्परा का सम्मान करने अथवा अन्य दृष्टि से प्रथम अल्प समय के लिए सामायिक चारित्र को मान्यता दी[1] और दीर्घकाल के लिए छेदोपस्थापनीय चारित्र को।[2]

बौद्धग्रन्थोंमें चातुर्याम धर्म

चाउज्जाम के यथार्थ स्वरूप की अन्वेषणा करते हुए हमारी दृष्टि बौद्ध साहित्य पर जाती है। बौद्ध ग्रन्थों में चाउज्जाम शब्द पार्श्वनाथ और महावीर के अनुयायियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। उसका अर्थ विज्ञोंने चार याम (हिंसा, असत्य, चोरी, और परिग्रहका त्याग) ही किया है। प्रोफेसर धर्मानन्द कौसाम्बी ने अपनी पुस्तक 'पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म' में यह बताने का प्रयास किया है कि महात्मा बुद्ध ने पार्श्वनाथ द्वारा उपदेशित चार यामों को किस प्रकार से अपने धर्म में समाविष्ट किया। चातुर्याम का अर्थ अहिंसादि चार याम है। दीघनिकाय के पासादिक सुत्त में निवद्ध महात्मा बुद्ध के इन शब्दों से भी यही सिद्ध है–ऐ चुन्द अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक कहेंगे कि श्रमण मौज उडाते हैं। उनसे कहो, मोज या विलास चार प्रकार का है १ कोई अज्ञ पुरुष प्राणियों को मार कर मोज उडाता है। यह पहली मोज हुई। २ कोई व्यक्ति चोरी करके मोज उडाता है यह दूसरी मोज हुई। ३ कोई व्यक्ति झूठ बोलकर मोज उडाता है यह तीसरी मोज ४ कोई व्यक्ति उपभोग्य वस्तुओं का यथेष्ट उपयोग कर मोज उडाता है यह चौथी मोज हुई। ये चार मोजें हीन, गंवार, पृथक् जनसेवित अनार्य एवं अनर्थ कारी हैं।"

प्रस्तुत उद्धरण देने के पश्चात् धर्मानन्द कौशाम्बीने लिखा है कि बुद्ध के मत में चार यामों का पालन करना ही सच्ची तपस्या है।

---

१ विशेषावश्यक भाष्य गाथा १२६८

२ वही गाथा १२७४

स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध इन चार निरोधों को मानते थे और उन्होंने यह पार्श्व से लिया होगा। पर पाली साहित्य में इन्हें चाउज्जाम की संज्ञा नहीं दी गई है। इस कारण से यह मानना कि बुद्ध द्वारा स्वीकार किये गये चार याम चाउज्जाम है, युक्ति-युक्त नहीं है। चातुर्याम का यही अर्थ दीघनिकाय के सामञ्ञफल सुत्त में दिये गये उस शब्द के स्पष्टीकरण से भी मेल नहीं खाता। वह इस प्रकार है :-

'महाराज, निर्ग्रन्थ किस प्रकार से चार याम रूपी संवर से संवृत्त होता है? महाराज, वह निर्ग्रन्थ सर्ववार्य (वारण योग्य कर्म) से विरत रहता है तथा सर्व वारणों से (निषेधों से) युक्त रहता है? उसके सभी वारणयोग्य कर्म धो कर अलग किये गये तथा उसके सभी वारणयोग्य कर्मों का परिमार्जन किया गया है। इस प्रकार, महाराज, वह निर्ग्रन्थ चारयाम रूपी संवर से संवृत्त होता है''[1]।

यहाँ पर चातुर्याम को बार बार संवर कहा गया है? संवर का अर्थ आस्रव का निरोध होता है,[2] वह गुप्ति, समिति, धर्म अनुप्रेक्षा, परीषह जय और चारित्र से होता है।[3] और चारित्र में प्रथम स्थान सामायिक का है।[4] चातुर्याम और पंच महाव्रतों में पापों की विरति पर बल दिया गया है, अतः उसे संवर के रूप में कहा गया है।

---

१ इध महाराज निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुत्तो होति कथं च महाराज निगण्ठो चातुयाम संवर संवुत्तो होति? इध महाराज निगण्ठो सव्ववारिवारितो च होति, सव्ववारियुतो च सव्ववारिधुतो च, सव्ववारिपुठ्ठो च। एवं खो महाराज निगण्ठो चातुयाम संवर संवुत्तो होति।''

दीघनिकाय सामञ्ञफलसुत्त

२ आश्रवनिरोधः संवरः

तत्त्वार्थ सूत्र ९।१

३ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः

तत्त्वार्थ ९।२

४ सामायिकच्छेदोपस्थाप्यपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपराययथाख्यातानि चारित्रम्

—तत्त्वार्थ सूत्र ९।१८

व्रत परम्परा

डाक्टर हर्मन जैकोबी का यह अभिमत है कि जैनों ने अपने व्रत ब्राह्मणों से उधार लिये हैं[1]। ब्राह्मण सन्यासी मुख्य रूप से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, सन्तोष, और मुक्तता इन पाँच व्रतों का पालन करते थे। वे ही आगे चलकर जैन महाव्रतों की व्यवस्था का आधार बने।

परन्तु डाक्टर जैकोबी का प्रस्तुत कथन केवल कल्पना पर ही आधृत है। उसका कोई भी मूल आधार नहीं है। जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से व्रत परम्परा का अध्ययन करते हैं तो सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट ज्ञात होता है कि व्रत परम्परा का मूल आधार ब्राह्मण परम्परा में नहीं अपितु जैन परम्परा में रहा हुआ है। बौधायन में उल्लिखित व्रतों के आधार पर डाक्टर जैकोबी ने जो कल्पना की है वह वस्तुतः सत्य-तथ्य से परे है।

व्रत का सम्बन्ध मुख्य रूप से सन्यास आश्रम से रहा है। वेदों में आश्रम के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं है। वैदिक काल में ब्रह्मचर्य और गृहस्थ ये दो ही व्यवस्था क्रम थे। वैदिक परम्परा में सन्यास की व्यवस्था उपनिषद् काल से प्रारंभ हुई। बृहदारण्यक में सन्यास का उल्लेख आया है।[2] जाबालोपनिषद् में चार आश्रमों की स्पष्ट व्यवस्था प्राप्त होती है।[3] हाँ, तो उपनिषद् साहित्य के पूर्व वैदिक परम्परा में पुत्रैषणा, वित्तैषणा, और लोकैषणा की प्रधानता रही है। तैत्तिरीय संहिता में लिखा है—जन्म लेने वाला ब्राह्मण तीन ऋणों के साथ ही जन्म लेता है, ऋषियों का ऋण ब्रह्मचर्य से, देवों का ऋण यज्ञ से, तथा पितरों का ऋण प्रजा के उत्पादन से चुकाया जा सकता है। पुत्रवान् यजनशील और ब्रह्मचर्य को पूर्ण करने वाला ही मानव उऋण होता

---

१ The Sacred Books of the East, Vol. XXII, Introduclion P. 24 "It is therefore probable that the Jainas have borrowed their own vows from the Brahmans, not from the Buddhists."

२ बृहदारण्यकोपनिषद् ४।४।२२

३ जाबालोपनिषद्, ४

(ख) वाशिष्ठ धर्म-शास्त्र ७।१।२

है।[1] ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णन है कि इक्ष्वाकु-वंश के वेधस राजा के कोई सन्तान नहीं थी। उसके सौ पत्नियाँ थीं, किन्तु पुत्र का अभाव था। उसके घर में नारद और पर्वत नामके दो ऋषि रहते थे। उसने एक बार नारद ऋषि से कहा—ऋषिवर। सभी पुत्र की इच्छा करते हैं, चाहे भले ही वह ज्ञानी हो या अज्ञानी, कृपया यह वतलाइये पुत्र से क्या लाभ है?

नारद ने उसके प्रश्न का उत्तर दस श्लोकों में दिया। उसने कहा—अगर पिता जीते जी अपने पुत्र का मुख देख ले तो उसका ऋण छूट जाता है और वह अमर हो जाता है।[2] तात्पर्य यह है कि वैदिक परम्परा में सन्यास की नहीं अपितु पुत्र की प्रधानता रही है, किन्तु श्रमण परम्परा ने पुत्र से त्राण नहीं माना है।[3] लोकैषणा को भी महत्त्व नहीं दिया है।[4] वहाँ तो श्रमण धर्म की ही प्रधानता रही है। उपनिषद् साहित्य में भी सन्यास को आत्म-जिज्ञासा के पश्चात् होने वाली स्थिति कहा है।[5] आत्म-जिज्ञासा के अभाव में सन्यास का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। आत्म-जिज्ञासा का मूल आधार ही सन्यास है, श्रमण जीवन है। श्रमण संस्कृति तो प्रागैतिहासिक काल से ही श्रमण प्रधान रही है। गृहस्थाश्रम से अधिक महत्त्व श्रमण जीवन को दिया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के नौवें अध्याय में ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र और नमि राजर्षि का एक मधुर संवाद है। उसमें इन्द्र ने कहा—राजर्षे! गृहवास घोर आश्रम है। तुम इसे छोड कर दूसरे आश्रम में

---

१ तैत्तिरीय संहिता ६।३।१०।५

२ ऋणमस्मिन् सनयत्यमृतत्त्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्
ऐतरेय ब्राह्मण, ७ वीं पंचिका, अध्याय ३

३ जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं
— उत्तराध्ययन अ. १४, श्लो. १२

४ नो लोगस्सेसणं चरे
— आचारांग १।४।१।१२८

५ बृहदारण्यक ४।४।२२

जाना चाहते हो, यह उचित नहीं। तुम यहीं रहो और यहीं धर्मपोषक कार्य करो"।[1]

उत्तर में श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि राजर्षि कहते हैं—ब्राह्मण! मास-मास का उपवास करने वाला और पारणे में कुश की नोक पर टिके उतना स्वल्प आहार खाने वाला गृहस्थ मुनि-धर्म की सोलहवीं कला की तुलना में भी नहीं जाता।[2]

वैदिक परम्परा में गृहस्थाश्रम को ही अत्यधिक महत्त्व दिया है और उसे ही सब आश्रमों में प्रमुख माना है। जैसे सभी नदी और नद समुद्र में आ कर स्थिर होते हैं, वैसे ही सभी आश्रमी गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हैं।[3] किन्तु श्रमण-परम्परा में गृहस्थ जीवन से श्रमण जीवन को अधिक महत्त्व दिया गया है और उससे ही मोक्ष की प्राप्ति मानी है।

आधुनिक इतिहास से भी यह सिद्ध है कि भगवान् पार्श्व के समय श्रमण संघ अत्यधिक व्यवस्थित व संगठित था। भगवान् पार्श्व

---

१ घोरासमं चइत्ताणं,
अन्नं पत्थेसि आसमं।
इहेव पोसहरओ,
भवाहि मणुयाहिवा॥

उत्तराध्ययन ९।४२

२ मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए।
न सो सुयक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं॥

उत्तराध्ययन ९।४४

३ गृहस्थ एव यजते, गृहस्थस्तप्यते तपः।
चतुर्णामाश्रमाणां तु, गृहस्थश्च विशिष्यते॥
यथा नदी नदाः सर्वे, समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।
एवमाश्रमिणः सर्वे, गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

वाशिष्ठ-धर्म-शास्त्र ८।१४-१५

का अस्तित्व काल ईस्वी पूर्व दसवीं शताब्दी है।[1] उपनिषद् का रचना काल भी इससे पूर्व का नहीं है अर्थात् ईस्वी पूर्व ८०० से ३०० के मध्य का है।[2]

इस सत्य-तथ्य को स्वीकार करने में किसी को भी बाधा उपस्थित नहीं हो सकती कि सन्यास और व्रत की परम्परा श्रमण धर्म ने वैदिक धर्म से नहीं ली है और वह उसका ऋणी नहीं है।

वेद, ब्राह्मण और आरण्यक-साहित्य में कहीं पर भी महाव्रतों का वर्णन नहीं है। जिन उपनिषदों, पुराणों और स्मृति ग्रंथों में महाव्रतों का वर्णन आया है वे सभी ग्रन्थ भगवान् पार्श्व के पश्चात् के हैं। अतः प्रश्न यह है कि पूर्वकालीन व्रत व्यवस्था उत्तरवर्ती व्रत व्यवस्था से किस प्रकार प्रभावित हो सकती है? भगवान् महावीर भगवान् पार्श्व के पश्चात् हुए। उनको सहज रूप से ही पार्श्व की व्रत परम्परा मिली थी। उन्होंने उसीका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देख कर विकास किया, न कि किसी अन्य परम्परा का अनुसरण किया। भगवान् महावीर के पश्चात् महाव्रतों ने इतना व्यापक रूप धारण कर लिया है कि उसका मूल-स्रोत ढूंढना ही कठिन नहीं, कठिनतर हो गया है। महाकवि दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय ग्रन्थ में लिखा है 'हिन्दुत्व और जैन धर्म आपस में घुलमिल कर अब इतने एकाकार हो गये हैं कि आज का साधारण हिन्दू यह जानता भी नहीं है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय,

---

१ श्रमण भगवान् महावीर का परिनिर्वाण ई. पू. ५२८ में हुआ था। उनका जीवन काल ७२ वर्ष का था-देखिए जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश-पृ. २९

भगवान् पार्श्व भगवान् महावीर से २५० वर्ष पूर्व हुए थे। उनका १०० वर्ष का जीवन काल था। इस प्रकार पार्श्व का अस्तित्व काल ई. पू. दसवीं शताब्दी होता है।

२ History of the Sanskrit Literature p. 226.

आर्थर ए. मैक्डॉनल के अभिमतानुसार प्राचीनतम वर्ग बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, और कौशीतकी उपनिषद् का रचना काल ईसा पूर्व ६०० है।

ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह जैन धर्म के उपदेश थे, हिन्दुत्व के नहीं।[1]

बौद्ध परम्परा के विशिष्ट विद्वान धर्मानन्द कोसाम्बी ने 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा' तथा 'पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म,' पुस्तकों में चातुर्याम धर्म का विस्तार से निरूपण किया है. और यह प्रमाणित किया है कि भारतीय संस्कृति का मूल भगवान पार्श्व के चातुर्याम धर्म में रहा हुआ है। भगवान महावीर ने भगवान पार्श्व के चातुर्याम धर्म का विस्तार किया। यही धर्म बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग और पतञ्जलि के

(ख) A. B. Kieth. The religion and philosophy of the Veda and Upanisads, p. 20.

इनके विचारानुसार—वैदिक साहित्य का काल-मान इस प्रकार है :—

१	उपनिषद्	ई. पूर्व ५ वीं शताब्दी
२	ब्राह्मण	ई. पूर्व ६ वीं शताब्दी
३	बाद की संहिताएं	ई. पूर्व ७–८ वीं शताब्दी

इन्होंने भ. पार्श्व का काल ईसा पूर्व ७४० माना है और प्राचीन तम उपनिषदों का काल भगवान् पार्श्व के पश्चात् माना है।

(ग) एफ्. मेक्समूलर—दी वेदाज पृ. १४६–१४८

इनका मन्तव्य है कि उपनिषदों में प्रतिपादित वेदान्त-दर्शन का काल-मान ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी है।

(घ) एच. सी. रायचोधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सियन्ट इण्डिया, पृ. ५२

इनका अभिमत है कि विदेह का महाराज जनक याज्ञवल्क्य के समकालीन थे। याज्ञवल्क्य, बृहदारण्यक, और छान्दोग्य उपनिषद् के मुख्य पात्र पाँच हैं। उनका काल-मान ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी है। प्रस्तुत ग्रन्थ—पृष्ट ९७ में लिखा है—जैन तीर्थंकर पार्श्व का जन्म ईसा पूर्व ८७७ और निर्वाण काल ईसा पूर्व ७७७ है। इससे भी यही सिद्ध है कि प्राचीनतम उपनिषद् पार्श्वके पश्चात् के हैं।

(ङ) डॉ. राधाकृष्णन—इण्डियन फिलोसफी भा. १ पृ. १४२

इनकी धारणा है कि ऐतरेय, कौशीतकी, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, और बृहदारण्यक ये सभी उपनिषद् प्राचीनतम हैं। ये बुद्ध के पूर्व के हैं। इनका काल-मान ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक माना जा सकता है।

(च) राधाकृष्णन—दी प्रिंसिपल उपनिषदाज् पृ. २२

बुद्ध—पूर्व के प्राचीनतम उपनिषदों का काल-मान ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी से ईसा की तीसरी शताब्दी तक का है।

१ संस्कृति के चार अध्याय पृ. १२५

अष्टांग योग में प्रकट हुआ। गांधीजी के आश्रम धर्म में भी प्रधानतया चातुर्याम धर्म ही दृष्टिगोचर होता है। आज के सर्वोदय में भी चातुर्याम धर्म ने स्थान प्राप्त किया है।[1]

गांधी साहित्य के प्रसिद्ध व्याख्याकार काका कालेलकर ने लिखा है–वेदान्त के मूल में भी चातुर्याम-धर्म है। देखा जाए तो, चातुर्याम धर्म का अर्थ है–मनुष्य द्वारा अपनी असामाजिक वृत्तिको दूर कर के, विश्व समाज-स्थापना की पूर्व तैयारी करनेवाला धर्म। समाजवाद को लीजिए या साम्यवाद को, प्रजातंत्रको लीजिये या अराजकतावादको, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, और अपरिग्रह के इन चार सामाजिक सद्गुणों के विना कोई भी रचना स्थाई रूप से सिद्ध नहीं हो सकेगी। इन चार यामों के साथ ही कम से कम संयम के रूपमें तो ब्रह्मचर्य के पाँचवें याम की तो वृद्धि करनी होगी और इन सबके मूल में आत्मौपम्य बुद्धि रख कर उस वृत्ति का विकास व्यक्ति से विश्वात्मा तक करना ही होगा।[2]

प्रतिक्रमण

भगवान पार्श्व के शिष्यों के लिए प्रातः और संध्या को प्रतिक्रमण करना अनिवार्य नहीं था। जब कभी दोष लग जाता तब वे उसका प्रतिक्रमण कर लेते थे। भगवान महावीर ने अपने शिष्यों के लिए दोनों समय प्रतिक्रमण करने का अनिवार्य नियम बनाया, भले ही दोषाचरण हो या न हो[3]।

---

१ पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म–

२ वही–भूमिका–

३ एएसु णं भंते पंचसु महाविदेहेसु अरिहंता भगवंतो पंचमहावइयं सपडिकम्मं धम्मं पन्नवयंति.... एएसु णं पंचसु महाविदेहेसु अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पन्नवयंति

भगवती सू. २०।८।६७५

सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
अवराहे पडिकमणं मज्जिमयाणं जिणवराणं॥

मूलाचार ७।१८५

सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स जिणस्स।
मज्जिमयाण जिणाणं कारणजाए पडिक्कमणं॥

आवश्यक निर्युक्ति १२४४

रात्रि-भोजन-विरमण

भगवान पार्श्व ने रात्रि-भोजन-विरमण को व्रत की कोटि में परिगणित नहीं किया किन्तु महावीर ने उसे व्रत के रूप में मान्यता प्रदान की। एतदर्थ ही स्तुतिकार ने कहा है–

"से वारिया इत्थि सराइभत्तं"[1]

अर्थात् भगवान महावीर ने स्त्री और रात्रि भोजन का निवारण किया। यह स्तुति-वाक्य इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि भगवान ने ब्रह्मचर्य और रात्रि भोजन की विशेष व्याख्या, व्यवस्था और योजना की। आचार्य हरिभद्र ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है कि भगवान ऋषभदेव और भगवान महावीर ने अपने ऋजुजड, और वक्र-जड़ शिष्यों की अपेक्षा से रात्रि भोजन न करने को व्रत का रूप दिया और उसे मूल गुणों की सूची में रखा। मध्यवर्ती बावीस तीर्थंकरों ने उसे मूल गुण नहीं माना, एतदर्थ उन्होंने उसे व्रत का रूप नहीं दिया।[2]

सोमतिलक सूरि का भी यही मन्तव्य है।[3] विशेषावश्यक भाष्य में जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने लिखा है-रात्रि को भोजन न करना अहिंसा महाव्रत का संरक्षक होने से समिति की भाँति उत्तर गुण है किन्तु श्रमण के लिए वह अहिंसा महाव्रत की तरह पालनीय है। इस दृष्टि से वह मूल गुण की कोटि में रखने योग्य हैं।[4] श्रावक के लिए वह मूल गुण नहीं है।[5] जिनभद्र ने मूल गुण की संख्या पाँच और छह दोनों मानी है—

---

१ सूत्रकृताङ्ग १।६।२८

२ एतच्च रात्रिभोजनं प्रथमचरमतीर्थंकरतीर्थयोः ऋजुजडवक्रजडपुरुषापेक्षया मूलगुणत्वख्यापनार्थं महाव्रतोपरि पठितं, मध्यमतीर्थंकरतीर्थेषु पुनः ऋजुप्रज्ञ-पुरुषापेक्षयोत्तरगुणवर्ग इति।
(ख) दशवैकालिक हरिभद्रीय वृत्तिपत्र १५०

३ मूलगुणेसु उ दुण्हं सेसाणुत्तरगुणेसु निसिभुत्तं
सप्ततिशतस्थान गाथा २८७

४ उत्तरगुणत्वे सत्यपि तत् साधोर्मुलगुणो भण्यते। मूलगुणपालनात् प्राणाति-पातादिविरमणवत् अन्तरङ्गत्वाच्च।
विशेषावश्यक भाष्य, गा. १२४७ वृत्ति

५ वही–गाथा १२४५–१२५०

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अचौर्य, ४ ब्रह्मचर्य, ५ अपरिग्रह[1] ६ रात्रि-भोजन विरमण।[2]

मूलाचार में आचार्य बट्टकेर ने मूलगुण अट्ठाइस माने हैं—

पांच महाव्रत, पांच समितियां, पांच इन्द्रिय विजय, षडावश्यक, केशलोच, अचेलकता, अस्नान, भूमिशयन, दन्तघर्षण का वर्जन, स्थिति भोजन और एक भक्त।[3]

आगम व आगमेतर साहित्य का अनुशीलन परिशीलन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि मूल गुणों की संख्या सभी तीर्थंकरों के शासन में समान नहीं रही है।

सचेल और अचेल

भगवान पार्श्व के शिष्य बहुमूल्य और रंग-बिरंगे वस्त्र रखते थे, किन्तु भगवान महावीर ने अपने शिष्यों को अल्पमूल्य वाले और श्वेत-वस्त्र रखने की अनुज्ञा प्रदान की।[4]

डाक्टर हर्मन जेकोबी का यह अभिमत है कि श्रमण भगवान महावीर ने अचेलकता या नग्नत्व का आचार आजीवक सम्प्रदाय के आचार्य गोशालक से ग्रहण किया।[5] धर्मानन्द कोसाम्बी का भी यही अभिमत रहा है।[6] किन्तु यह कथन युक्ति युक्त नहीं है, क्यों कि भगवान महावीर के काल में और उनसे पूर्व भी नग्न साधुओं के अनेक सम्प्रदाय थे। भगवान महावीर ने अचेलकता को किसी अन्य से प्रभा-

---

१ सम्मत्त समेयाइं, महव्वयाणुव्वयाइं मूलगुणा
विशेषावश्यक भाष्य गा. १२४४

२ मूलगुणा छव्वयाइं तु
विशेषावश्यक भाष्य गा. १८२९

३ मूलाचार [illegible]

४ देखिए, उत्तराध्ययन अ-२३

५ It is probable that he borrowed them from the Acelakas of Ajivikas, the followers of Gosala.
The Sacred Book of the East, part 45 p. 32.

६ पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म

वित होकर नहीं किन्तु अपनी प्रज्ञा से ही अपनाया था। कल्पसूत्र आदि में स्पष्ट उल्लेख है कि भगवान महावीर जब दीक्षित हुए थे तब सचेल थे।[1] बाद में वे अचेल हो गये।[2] भगवान ने अपने शिष्य वर्ग के लिए भी अचेल-आचार की व्यवस्था की किन्तु यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि भगवान महावीर की अचेल व्यवस्था अन्यान्य नग्न साधुओं की तरह आग्रह पूर्ण और एकान्तिक नहीं थी। गौतम और केशी का सम्वाद इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है।

श्रमण संस्कृति में श्रमणों के दो प्रकार रहे हैं— एक जिनकल्पी दूसरे स्थविरकल्पी। उत्कृष्ट जिनकल्पी उपाधि की दृष्टि से कम से कम मुख-वस्त्रिका और रजोहरण ये दो उपाधि रखते थे। किन्तु स्थविरकल्पी अल्पमूल्य वाले और श्वेतवस्त्रधारी होते थे।[3] भगवान महावीर ने इस प्रकार सचेल और अचेल दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं को मान्य किया। यही कारण है कि भगवान पार्श्व की शिष्य परम्परा महावीर के शासन में मिल सकी।

बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय के अनुसार पूरणकश्यप ने समस्त जीवों का वर्गीकरण कर छह अभिजातियां निश्चित की थी।[4] उसमें तृतीय लोहित्याजाति-में एक शाटक रखनेवाले निर्ग्रन्थों का उल्लेख है।[5]

आचारांग में भी एक शाटक रखने का वर्णन है।[6] अंगुत्तर-

---

१ कल्पसूत्र सूत्र ११५
(ख) सव्वे वि एग दूसेण णिग्गया जिणवरा चउवीसं
समगयाङ्ग

२ आचारांग १।९।१

३ देखिए लेखक का जैनागमों में कल्प निरूपण लेख
मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ २८०

४ अंगुत्तरनिकाय, ६।६३, छलभिजाति सुत्त भा. ३, पृ. ८६

५ तत्रिदं भन्ते, पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिज्जाति पञ्ञत्ता, निगण्ठा एक साटका।
अंगुत्तरनिकाय ६।६।३

६ अदुवा एग साडे
आचारांग १।८।४।५२

निकाय में निर्ग्रन्थों के नग्न रूप को लक्षित करके ही उन्हे 'अह्निक' कहा गया है।[1] आचारांग में श्रमणों के लिए अचेल रहने का भी विधान किया गया है।[2] विष्णुपुराण में जैन श्रमणों के सवस्त्र और निर्वस्त्र-दोनों रूपों का वर्णन मिलता है।[3]

इन सभी प्रमाणों के प्रकाश में स्पष्ट है कि भगवान महावीर के शिष्य सचेल और अचेल दोनों अवस्थाओं में रहते थे। तथापि अचेल अवस्था पर अधिक भार देने से केशी श्रमण के शिष्यों के अन्तर्मानस में वितर्क उत्पन्न हुआ था।

इतिहासकारों का अभिमत है कि आजीवक सम्प्रदाय नग्नत्व का प्रबल समर्थन करती थी। भगवान महावीर के काल में आजीवक एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था। अशोक और दशरथ के 'बराबर' तथा नागार्जुनी गुहालेखों से उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। उनके श्रमणों को गुहाएँ भी दान में दी गई।[4]

उसके पश्चात् आजीवक मत का उल्लेख प्रशस्तियों में प्राप्त नहीं है। डाक्टर वासुदेव उपाध्याय का मन्तव्य है कि बाद में आजीवक ब्राह्मण मत में विलीन हो गये[5] और तामिल काव्य मणिमेखले का अभिमत है कि आजीवक-श्रमण दिगम्बर जैन श्रमणों में विलीन हो गए।[6] संभवतः इसी कारण दिगम्बर परम्परा से अचेलकता का एकान्त आग्रह आ गया हो, किन्तु महावीर के समय उस आग्रह का अभाव था। भगवान महावीर ने तो सचेल और अचेल अवस्थाओं का

---

१ अहिरिका भिक्खवे निग्गण्ठा

अंगुत्तरनिकाय १०।८।८, भा. ४१।२१८

२ अदुवा अचेले

आचारांग १।८।४।५३

३ दिग्वासतामयं धर्मो, धर्मोऽयं बहुवासमाम्

विष्णुपुराण अंश ३, अध्याय १८, श्लो. १०

४ प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन खण्ड २ पृ. २२

५ प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन खण्ड १ पृ. १२६

६ बुद्धिस्ट स्टडीज पृ. १५

सुन्दर समन्वय किया था। सचेलक साधना को भी अचेलक साधना के समान महत्त्व दिया था।

इसी प्रकार कुछ अन्य परम्पराएँ एवं क्रिया विधियाँ भी थीं, जो पार्श्व युग में चली आ रही थीं, किन्तु पार्श्व के उत्तरवर्ती काल में तीर्थंकर महावीर ने उनमें परिवर्तन कर दिया। जैसे पार्श्व परम्परा में अचेलता, औद्देशिक, प्रतिक्रमण, राजपिण्ड, मासकल्प और पर्युषणा-कल्प यह छहों कल्प अनवस्थित थे, ऐच्छिक थे। किन्तु महावीर के शिष्यों के लिए सभी कल्प अनिवार्य थे।[1]

पार्श्वयुग की इन परम्पराओं से दो निष्कर्ष हमारे सामने आते हैं :—

(१) वैदिक परम्परा में उस समय शुष्क क्रिया-काण्ड, यज्ञ-याग आदि के विरोध में स्वर उठने लग गये थे और अनेक क्षत्रिय कुमार जैसे जनक श्वेतकेतु[2], उद्दालक[3], जाबालक, आरुणि[4], पार्श्व प्रभृति आत्मतत्त्व एवं आत्मविद्या के अन्वेषण में न केवल ब्राह्मणों से आगे बढ रहे थे, किन्तु ऋषियों तक को आत्म-विद्या का उपदेश देते थे।

(२) आत्म साधना करनेवाले श्रमणों की मानसिक भूमिका इतनी सरल, स्पष्ट एवं अप्रतिबद्ध होती है कि साधना के मार्ग पर चलते-चलते कहीं अगल-बगल झांकने का प्रयत्न भी नहीं करते। इसी कारण उनकी साधना के नियम भी बहुत ही सहज, सरल एवं आत्मसाक्ष्य पर आधारित होते। महावीर युग में आते-आते साधकों की मनोवृत्ति में कुछ वक्रता आती हुई प्रतीत होती है, परिणाम-स्वरूप साधना के नियमों में भी महावीर को परिवर्तन कर अधिक कठोर और तर्क-युक्त बनाना पडता है। पार्श्व युग की इन्हीं भूमिकाओं पर हम आगे उनके जीवन एवं उपदेशों का विस्तार करेंगे।

---

१ देखिए—लेखक द्वारा सम्पादित कल्पसूत्र—उपक्रम

२ छान्दोग्योपनिषद्—५।३।१—७. पृ. ४७२—४७६.

३ छान्दोग्योपनिषद्—

४ वृहदारण्यकोपनिपद्— ६।२।८

त्वं नाथ ! दुःखिजन-वत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्य-पुण्य-वसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय,
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ।।

— सिद्धसेन दिवाकर

Jain Tradition ascribes the origin of the system to Rishabhadeva, who lived many centuries back. There is evidence to show that so far back the first century B. C., there were people who were worshipping Rishabhadeva, the first Tirthankara. There is no doubt that Jainism prevailed even before Vardhaman or Parsvanath.

-Dr. Radhakrishnan

पुनर्जन्म सिद्धान्त की सर्व व्यापकता

एवं

पार्श्व के पूर्व भव







भ. पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन

जिणे पासे त्ति नामेण
अरहा लोगपूइओ ।
संबुद्धप्पा य सव्वन्नू
धम्मतित्थयरे जिणे ॥

— भगवान् महावीर

पुनर्जन्म सिद्धान्त की सर्व व्यापकता एवं पार्श्व के पूर्व भव | २

भारतीय कथा साहित्य में पुनर्जन्म की (जातक) कथाओं का एक विशिष्ट स्थान रहा है। पूर्व जन्म की कथा आत्मा के पूर्व कालिक अस्तित्वका स्पष्ट प्रमाण है। पुर्नजन्म की कथाएं तभी संभव हैं जब आत्मा और उस की देह प्राप्ति की विभिन्न अवस्थाएँ सिद्धान्ततः स्वीकार की जाय। प्रस्तुत सिद्धान्त पूर्व वैदिक चिंतन में विशेष स्थान नहीं रखता, क्यों कि उस के चिंतन का मुख्य केन्द्र ऐहिक जीवन था। ऐहिक जीवन की सुख सुविधा के लिए याग और अनुष्ठान अनिवार्य माना गया। उसी के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया गया। यही कारण है कि उपनिषदों से पूर्व वैदिक साहित्य में आत्मा पुनर्जन्म, परलोक प्रभृति विषयों पर विस्तार से चर्चा नहीं की गई है। आत्मा शब्द ऋग्वेद आदि में भी व्यवहृत हुआ है[1] किन्तु उस के अर्थ का विकास क्रमशः हुआ है। यद्यपि वेदों के कुछ शब्दों को खींच तान कर विद्वान् उनसे पुनर्जन्म, मोक्ष, आत्मा, परमात्मा आदि अर्थ लगाते हैं, जैसे— '**अपाङ प्राङ एति स्वधया**'[2] इस मंत्र से अपाङ को पूर्वजन्म एवं प्राङ का अगला जन्म अर्थ किया जाता हैं। वैसे ही '**द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाः**'।[3] से दो पक्षी एक आत्मा और दूसरा परमात्मा अभिधेय

---

१ ऋग्वेद १।११५।१।१०।१०७, ७

२ ऋग्वेद १।१६४।३८

३ ऋग्वेद १।१६४।२०

समझा जाता है। किन्तु स्पष्ट रूप से पूर्वजन्म व पुनर्जन्म की चर्चा कहीं विशेष नहीं मिलती। उपनिषदों में आ कर आत्म-तत्त्व ब्रह्म के समकक्ष परम सत्त्व के रूप में चर्चित है— जैसे बृहदारण्यक में इसका अर्थ शरीर है।[1] वहीं पर (३।२।१३) वह वैयक्तिक आत्मा को उद्दिष्ट करता है और फिर यत्र-तत्र परम तत्त्व के अर्थ में उसका प्रयोग होता है।[2]

ए. ए. मैक्डोनल वैदिक माइथोलॉजी में लिखते हैं— "ऐसा विश्वास किया जाता है कि अग्नि अथवा 'शवगर्त' (कब्र) केवल मृत शरीर को विनष्ट करते हैं क्यों कि मृत व्यक्ति के वास्तविक व्यक्तित्व को अनश्वर ही माना गया है। प्रस्तुत वैदिक धारणा उस पुरातन विश्वास पर आधृत है। आत्मा में शरीर से अपने को अचेतनावस्था तक में पृथक कर लेने की शक्ति होती है और व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। एतदर्थ एक सम्पूर्ण सूक्त में (१०।५८) प्रत्यक्षतः मृतवत् पड़े हुए सुप्त व्यक्ति की आत्मा (मनस्) से बाहर भ्रमण कर रहे स्थानों से पुनः शरीर में लौट आने की स्तुति की गई है। बाद में विकसित पुनर्जन्म के सिद्धान्त का वेदों में कहीं भी संकेत नहीं मिलता किन्तु शतपथ ब्राह्मण (१०।४।३) में एक उक्ति मिलती है कि 'जो लोग विधिवत् संस्कारादि नहीं करते, वे मृत्यु के पश्चात् जन्म लेते हैं और पुनः पुनः मृत्यु के गुलाम बनते रहते हैं।'[3]

उपनिषदों में आत्मा की अमरता के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से विचार-चर्चा की गई है, किन्तु पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जितनी विस्तार से चर्चा अपेक्षित थी उतनी नहीं की गई। कठोपनिषद् के यम नचिकेता संवाद में कुछ मंत्रों से यह संकेत अवश्य मिलता है। 'आत्मा अपने कर्म

---

१ बृहदारण्योपनिषद् १।१।१

२ वैदिक कोश पृष्ठ २६

३ वैदिक माइथोलॉजी— (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ३१६.

और ज्ञान के अनुसार अन्यान्य योनियों में जन्म ग्रहण करता है'।[1]

उपनिषदों के पश्चात् के जितने भी आस्तिक दर्शन हैं उन सभी ने आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया है और पुनर्जन्म की भी यत्र-तत्र चर्चा की है।[2] किन्तु उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया है कि किन किन कर्मों के कारण जीव विविध योनियों में जन्म ग्रहण करता है। यह पूर्ण सत्य है कि श्रमण संस्कृति में पुनर्जन्म सम्बन्धी विचारधारा अज्ञात काल से चली आ रही है और इसी कारण उसके विशाल साहित्य में पुनर्जन्म की सहस्रों-घटनाएँ कहानियों के रूप में संकलित होती रही हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में अन्यत्र हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि भगवान पार्श्व के प्रबल प्रभाव के कारण ही उपनिषद् साहित्य में अध्यात्मवाद के स्वर झंकृत हुए हैं। महात्मा बुद्ध पर भी भगवान पार्श्व का स्पष्ट प्रभाव पडा है।

तथागत बुद्ध के समय श्रमण संस्कृति में छह वाद थे। उसमें गोशालक का एक आजीवक सम्प्रदाय था। उसका यह स्पष्ट मन्तव्य था कि जो अतीत काल में सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, वर्तमान काल में जो सिद्धि प्राप्त कर रहे हैं, या भविष्य काल में जो सिद्धि प्राप्त करने वाले हैं, उन सभी को चौरासी लक्ष महाकल्पों की अवधि पूर्ण करनी पडती है। प्रस्तुत अवधि में उन्हें अनुक्रम से सात बार कल्पों में देवों के बीच तथा सात बार संज्ञी प्राणियों के रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न होना पडता है।[3]

---

१ हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि, गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम॥
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते, शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्ये ऽनु संयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

—कठोपनिषद्–२।२।६–७

२. (क) बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन

—गीता ४।५

(ख) संस्कार साक्षात्कारणात् पूर्व जाति ज्ञानम्

—योगदर्शन, विभूतिपाद १८

३ भगवती सूत्र– ५।४९

दीघनिकाय[1] के मन्तव्यानुसार गोशालक का यह भी मानना था कि प्राणी के अपवित्र होने में न कुछ हेतु है और न कुछ कारण है। बिना हेतु और बिना कारण के ही प्राणी अपवित्र होते हैं। उसी प्रकार प्राणी की शुद्धि के लिए भी न कोई हेतु है और न कोई कारण ही है; बिना हेतु के ही प्राणी शुद्ध होते हैं। स्वयं अपनी या दूसरों की शक्ति से कुछ नहीं होता। बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम कुछ भी नहीं हैं। सभी प्राणी बलहीन और निर्वीर्य हैं। वह नियति, संगति और स्वभाव द्वारा परिणत होते हैं। कोई चाहे बुद्धिमान हो या अज्ञ, सभी को दुःखों का नाश करने के हेतु चौरासी लक्ष महाकल्प के फेरे पूर्ण करने ही होते हैं। सूत्रकृताङ्ग[2] से भी गोशालक के प्रस्तुत कथन का समर्थन होता है। गोशालक के मत का गहराई से पर्यवेक्षण करने पर दो बातें स्पष्ट ज्ञात होती हैं :—

(१) गोशालक की पुनर्जन्म में निष्ठा थी।

(२) वह पुनर्जन्म को प्राणी द्वारा किये गये कर्मोंका फल नहीं मानता था।

तथागत बुद्ध ने आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में विचार चर्चा करने को अनुपयुक्त माना है। यदि कोई जिज्ञासु उनसे प्रस्तुत सम्बन्ध में चर्चा करना चाहता है तो वह उसे अव्याकृत और अनावश्यक कह कर उसकी उपेक्षा कर देते थे पर पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने से उन्होंने इन्कार नहीं किया। यही कारण है कि बौद्ध साहित्य में पुनर्जन्म की कथाएँ अत्यधिक काव्य सौष्ठव के साथ चित्रित की गई हैं। निदान कथा में बुद्धत्व की प्राप्ति हेतु जीव अपने पूर्व जन्मों के प्रयत्न करते हुए बतलाया गया है। जातक कथाओं में भी बुद्ध के जीव को अपने पूर्व जन्मो में बुद्धत्व की प्राप्ति हेतु श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए उट्टङ्कित किया गया है। बुद्ध पुनर्जन्म और कर्म फल में सर्वथा विश्वास रखते हैं। एक बार पैर में कांटा विंध जाने पर उन्होंने अपने शिष्यों

---

१ दीघनिकाय—सामञ्ञफल सुत्त

२ सूत्रकृताङ्ग—२।६

से कहा–'भिक्षुओ, इस जन्म से एकानवे जन्म पूर्व मेरी शक्ति (शस्त्र विशेष) से एक पुरुष की हत्या हुई थी। उसी कर्म फल के कारण मेरा पैर कांटे से विंध गया है।'[1]

जैन धर्म ने आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया। आत्मा के सम्बन्ध में जितना स्पष्टता से और विस्तार से वर्णन जैन आगमों में हुआ है, उतना अन्य मूल ग्रन्थों में प्राप्त नहीं है। भगवान महावीर के प्रवचनों में आत्मा का सर्वांगीण स्वरूप सदा ही निश्चित और सुस्पष्ट रहा है। आत्मा को शाश्वत मौलिक द्रव्य माना है। तथागत बुद्ध ने जिन प्रश्नों को अव्याकृत कह कर छोड दिया उन्हीं प्रश्नों का समाधान भगवान महावीर ने सरल शब्दों में प्रदान किया। शब्द सीधे-साधे होने पर भी उसमें अर्थ गांभीर्य रहा हुआ है। भगवान महावीर आत्मा और परलोक, पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के प्रबल समर्थक थे। उनका युग ही आत्म-विद्या, और परलोक विद्या की जिज्ञासाओं का युग था। उस समय आत्मा है या नहीं? परलोक है या नहीं? जिन या तथागत होंगे या नहीं ? ऐसे प्रश्न पूछे जाते थे और इन सभी प्रश्नों का उत्तर महावीर देते थे। आगम साहित्य में शताधिक बार ये विषय चर्चित हुए हैं।

आचारांग का प्रारंभ ही आत्म-विवक्षा से होता है। वहाँ पर कहा गया है– अनेक व्यक्ति यह नहीं जानते, मैं कहाँ से आया हूँ ? मेरा भवान्तर होगा या नहीं ? मैं कौन हूँ ? यहाँ से कहाँ जाऊँगा ?[2]

भगवती सूत्र में आत्मा को अनादि, अनिधन, अविनाशी, अक्षय,

---

१ इत एकनवतीकल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः।
तेन कर्मविपाकेन,– पादे विद्धोऽस्मि भिक्षवः॥

—षड्दर्शन समुच्चय टीका

२ इहमेगेसिं नो सन्ना हवइ तं जहा–कम्हाओ दिसाओ वा आगओ अहमंसि ? अत्थि में आया उववाइए वा नत्थि में आया उववाइए ? के वा अहमंसि ? के वा इओ चुइओ पेच्चा भविस्सामि,

—आचारांग–१–१

ध्रुव और नित्य बताया है।[1]   कोई रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं और वह इंद्रियों से भी अग्राह्य है।

जैन दर्शन ने आत्मा को संसारी और मुक्त इन दो भागों में विभक्त किया है। जो संसारी हैं वह कर्म युक्त होते हैं, और जो मुक्त हैं वह कर्म रहित होते हैं। जब आत्मा कर्मों का क्षय कर सर्वथा मल रहित होकर सिद्धि को पा लेता है, तब लोक के अग्रभाग पर स्थित होकर वह शाश्वत सिद्ध हो जाता है।[2] कर्म सहित आत्मा ही नाना जातियों व गतियों में परिभ्रमण करता है। उसका पुनर्जन्म और पूर्वजन्म होता है।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त केवल आर्य जाति या भारतीयों का ही सिद्धान्त मात्र नहीं है किन्तु विश्व-साहित्य का अनुशीलन करने से पता चलता है कि यह विश्व के समस्त धार्मिक विश्वासों का मूल आधार रहा है और प्रत्येक धर्म में इस सिद्धान्त को मान्यता मिली है।

कहा जाता है—ईसाई एवं इस्लाम धर्म में पुनर्जन्म का सिद्धान्त नहीं है किन्तु उनके धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन करने से पुनर्जन्म सिद्धान्त की पुष्टि करनेवाले अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

बाइबिल में राजाओं की दुसरी पुस्तक पर्व २, आयत १५ में वर्णन है कि—"एलियाह नवी की आत्मा एलीशा में आ गई" पुराने ईसाई मत की एक संप्रदाय 'नास्टीसिज्म,' पुनर्जन्म को स्पष्ट रूप से मानते थे। साईमेनिस्ट, वैसीलियन, मैनीचियन आदि कई ईसाई संप्रदायें थीं, जो पुनर्जन्म को स्पष्ट रूपसे स्वीकार करती थीं। ईसा की छठी शताब्दी में चर्च की एक कौन्सिल हुई जिसमें कुछ सिद्धान्तों को मानना पाप घोषित किया गया, उनमें पुनर्जन्म का भी एक सिद्धान्त था।

इस्लाम भी सिद्धान्त रूपसे पुनर्जन्म को नहीं मानता, पर उसकी

---

१ जीवो अणाइ अनिधनो अविणासी अक्खओ धुओ णिच्चं

—भगवती

२ जया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
तथा लोगमत्थयत्थो सिद्धो हवई सासओ॥

—दशवैकालिक अ ४, गा. १९

अनेक आयतें इस वात की स्पष्ट घोषणा करती हैं कि, जिस अल्लाह ने तुमको पैदा किया वही तुम्हें मारेगा और फिर पैदा करेगा।[1] इतिहास कारों का यह भी मत है कि इस्लाम के प्रचार से पूर्व अरव निवासी जनता का पुनर्जन्म सिद्धान्त एक प्रिय सिद्धान्त था। प्राचीन यूनान के थेल्स, एम्पिदाक्लीज, फिरिसाइडिस, प्लेटो, तथा पैथागोरस आदि दार्शनिक पुनर्जन्म के सिद्धान्तको स्वीकार करते थे।[2]

वर्तमान युग में मनोविज्ञान पुनर्जन्म के सिद्धान्त को तर्क एवं विज्ञान की कसौटी पर कस कर नये-नये अनुसंधान एवं अन्वेक्षण कर रहा है और इस दृढ निश्चय पर आ रहा है कि हमारा पुनर्जन्म अर्थात् पिछला जन्म भी है और अगला जन्म भी। प्रो. हक्सले (HUXLEY) न दृढता के साथ यहाँ तक कह दिया कि–केवल बिना ठीक से सोचे समझे निर्णय लेने वाले विचारक ही पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मूर्खता की वात समझकर इसका विरोध करेंगे। विकासवाद के सिद्धान्त की तरह देहान्तरवाद का सिद्धान्त भी वास्तविक एवं वैज्ञानिक है। अमेरिका के वर्जिनिया विश्व विद्यालय के मडिकल विज्ञान के प्रोफेसर स्टीवेन्सन ने अपनी पुस्तक (Twenty cases suggesting Reincarnation) जो अभी कुछ दिन पूर्व प्रकाशित हुई है उस में लिखा है–केवल भारत वर्ष में ही नहीं, बल्कि अन्य पश्चिमी देशों मे भी इस प्रकार जीवन घटनाएँ हो चुकी हैं, जिनसे पूर्वजन्म की सच्ची स्मृतियों का प्रमाण मिलता है।[3] पुनर्जन्म की घटनाओं के अनुसंधान में संलग्न राजस्थान विश्व विद्यालय के मनोविज्ञान के प्रोफेसर श्री. हेमेंद्रनाथ बनर्जी ने भारत, स्विट्जर्लेंड, अमेरिका, फ्रांस, थाइलैंड, ऑस्ट्रेलिया, इटली, कॅनडा, एवं इग्लैंड आदि देशों की सैंकडों घटनाओं का संकलन करके यह सिद्ध किया है कि पुनर्जन्म विल्कुल वास्तविक एवं सत्य है।[4]

---

१ (क) सु. रु. ३ आ. ७
  (ख) सु. मायदा ५, रु. ९ आ. ५
२ कल्याण–वर्ष ४३, अंक १ पृ ठ ४५५.
३ कल्याण वर्ष ४३ अंक १, पृष्ठ ४४४
  वही– वर्ष ४३ अंक १, पृष्ठ ५३९ से ५४०
४ उनराध्ययन—४

पुनर्जन्म व पूर्वजन्म के सम्बन्ध में इतना विस्तारपूर्वक लिखने का उद्देश्य यही है कि कुछ समय पहले तक और आज भी कुछ विचारक जो स्वयं को आस्तिक भी कहते हैं वह प्राचीन ग्रंथों में पूर्वजन्म सम्बन्धी घटनाओं को पढ कर या तो मजाक किया करते हैं या उसका उल्लेख करने में संकोच अनुभव करते हैं। वस्तुतः यह उनकी समझ का ही अन्तर कहा जा सकता है।

कर्म सिद्धान्त को सरल रुपसे समझाने के लिए ही भारतीय विचारकों ने पुनर्जन्म व पूर्वजन्म की कथाएँ लिखी हैं। इन कथाओं में किसी कर्म फल विशेष को जन्म जन्मान्तरों में भोगता हुआ चित्रित किया गया है। यदि वह कर्म फल दो प्राणियों से सम्बन्धित रहा है तो आगामी भवों में भी वह दोनों साथ–साथ कर्म भोगते हैं। कितनी कथाएँ ऐसी हैं जिनमें वैरानुबन्ध का परिणाम अगले अनेक जन्मों में फल देता हुआ चित्रित किया गया है। संघदासगणि रचित वसुदेव हिण्डी में वैरानुबन्ध की अनेक कथाएँ दी गई हैं। आचार्य हरिभद्र ने समराइच्च कहा में गुणसेन और अग्निशर्मा का विस्तार से वर्णन किया है जो नौ जन्मों तक परस्पर द्वेष भाव रखते हैं। बुद्ध घोष ने धम्म पद की टीका में वैर की परम्परा ५०० जन्मों तक बतलाई हैं। ईसा की छठी शताब्दी में जन्म जन्मांतरों की कथाओं की रुचि अत्यधिक बढी कि कादम्बरी महाकाव्य में बाणभट्ट ने भी चंद्रापीड और महाश्वेता आदि की तीन जन्मों की कहानी उत्कृष्ट काव्य शैली में चित्रित की।

कर्म सिद्धान्त को मान्य करने के कारण ही वर्तमान जीवन में जो सुख दुःख अनुभव होता है, उसका मूल कारण पूर्व भव में जो सुकृत और दुष्कृत्य किया है, वही है। जैन धर्म जो एक सच्चा आध्यात्मिक विकासवादी धर्म है, आत्मा का एकाएक सम्पूर्ण विकास नहीं मानता। आत्मा नाना योनिओं में एवं जन्मों में भटकते हुए विशुद्धि की ओर अग्रसर होता है। साधना एवं तपस्या के द्वारा पवित्रता प्राप्त करता है **"जीवो सुद्धिमणुप्पत्तो आययंति मणुस्सयं"** " आत्मा क्रमशः शुद्धि प्राप्त करता हुआ मनुष्य गति को प्राप्त करता है और यहाँ अपनी साधना का सम्पूर्ण विकास करके मुक्ति को भी प्राप्त कर सकता है।

तीर्थंकरों के असाधारण प्रतिभा का कारण उनके पूर्वजन्म का सुकृत ही है। ज्ञातृधर्म कथा[1] एवं तत्त्वार्थ सूत्र[2] प्रभृति ग्रंथों में दर्शन-विशुद्धि आदि क्रमशः बीस और सोलह गुणों का वर्णन किया गया है। कर्म सिद्धान्त का निरूपण करने वालों के लिए यह अत्यावश्यक था कि वह तीर्थंकरों के पूर्व भवों में उन गुणों को बतलाए जो तीर्थंकरत्व की प्राप्ति के लिए अपेक्षित हैं। तीर्थंकरों ने उन-उन गुणों को किस प्रकार प्राप्त किया, वही यथार्थ वर्णन करने के लिये ही तीर्थंकरों के पूर्वभव बतलाए गये हैं। मूल प्रथमानुयोग में इस पर विस्तार से विश्लेषण किया गया था पर वह आज अप्राप्य है।

पार्श्व के पूर्व भव

समवायाङ्ग में सर्व प्रथम तीर्थंकरों के पूर्व भवों का वर्णन मिलता है[3]। उस में यह वर्णन है कि भगवान पार्श्व का पूर्व भव में नाम सुदर्शन (सुदंसण) था। 'णायाधम्म कहाओ' में मल्ली तीर्थंकर के पूर्व जीवन का संक्षिप्त में वर्णन मिलता है[4]। कल्पसूत्र में भगवान पार्श्व के तीर्थंकर जीवन का विस्तृत और सुसम्बद्ध वर्णन है किन्तु उसमें पूर्व भव का वर्णन नहीं है, और न किसी प्रकार का कोई संकेत ही है। केवल इतना ही निर्देश है कि भगवान पार्श्व प्राणतकल्प से अवतरित हुए थे[5]। यति वृषभ कृत तिलोय पण्णत्ति में भी प्राणत कल्प से

१ णायाधम्म कहाओ श्रु. १। अ. ८

२ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी संघसाधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य
—तत्त्वार्थ सूत्र अ. ६ सू. २३

३ समवायाङ्ग सूत्र– २४९

४ णायाधम्म कहाओ– अ. ८, श्रु. १

५ .... पाणयाओ कप्पाओ वीसं सागरोवमट्ठितीयाओ
अणंतरं चयं चइत्ता इहेव ....
कल्पसूत्र– सू. १४९ पृ. २१३

अवतरित होने का उल्लेख है[1]। उस के पश्चात् भगवान पार्श्व की जीवन गाथा को अनेक आचार्यों ने अत्यंत विस्तार के साथ लिखी है। आचार्य शीलाङ्क ने चउप्पन्न महापुरिस चरियं, आचार्य हेमचंद्र ने त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र, वादिराज सूरि ने सिरिपास चरियं, देवभद्र सूरि ने सिरिपास चरियम्, पद्मकीर्ति ने पासणाह चरिउ, हेम विजय गणी ने पार्श्व चरितं, कविवर रइधू ने पास चरियम्, लक्ष्मीवल्लभ ने उत्तराध्ययन (अ. २३) की टीका, व कल्पसूत्र की अनेक टीकाओं में तथा उत्तर पुराण, व तिसट्ठी महापुरिस गुणालंकारम् में विस्तार से परिचय दिया गया है। यह सत्य है कि श्वेतांबर परंपरा में चउप्पन्न महापुरिस चरियम् का त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र का और सिरिपासणाह चरियम् का ही परवर्ति लेखकों ने अनुसरण किया है और दिगंबर परम्परा में आदि पुराण और उत्तर पुराण का अनुसरण हुआ है।

भगवान पार्श्व के जीवन एवं उपदेशों का वर्णन करने से पूर्व यह भी आवश्यक है कि पूर्वभवों में उन्होंने किस प्रकार तपस्या, साधना आदि सत्क्रियाएँ की, जिससे तीर्थंकर पद की परम श्रेष्ठ भूमिका पर उनकी आत्मा पहुँच पाई। साथ ही किन किन भूलों, अपराधों एवं दुष्कृत्यों के कारण आत्मा को यातना एवं कष्ट झेलने पडे। इन सबकी विवेचना केवल पौराणिक मनोरंजन की ही सामग्री नहीं किन्तु जैन धर्म व दर्शन के मूल हार्द को समझने की चावी है। इसी दृष्टि से सर्व प्रथम भगवान पार्श्व के पूर्वभवों की चर्चा यहाँ पर की जा रही है।

१. मरुभूति

इतिहास की काल गणना से परे, अपरिमेय लक्षाधिक वर्ष पूर्व की यह घटना है। जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में पोतनपुर नामक नगर

---

१ तिलोयपण्णत्ती गा. ५२४, पृष्ठ २०७

था[1]। वहाँ पर प्रजाप्रिय अरविन्द नामक राजा राज्य करता था[2]। धारिणी उस की धर्मपत्नी थी। वहाँ पर विश्वभूति नामक मुख्य राज-पुरोहित रहता था[3]। वह जैन श्रावक था, उसके जीवन के कण-कण में मन के अणु-अणु में धर्म के प्रति अटल आस्था थी। उसकी पत्नी का नाम अनुधरा था, वह भी पति की भाँति ही धर्म परायण थी। एक वार भगवान पार्श्वनाथ का जीव मरुभूति के रूप में वहाँ पर जन्म ग्रहण करता है।

मरुभूति का एक ज्येष्ठ भ्राता भी था, जिसका नाम कमठ था। मरुभूति और कमठ ये दोनों सहोदर थे पर दोनों के स्वभाव में दिन-रात का अन्तर था। मरुभूति सद्‌गुणों का आगार था, तो कमठ दुर्गुणों का भण्डार था। मरुभूति सदाचारी था, तो कमठ व्यभिचारी[4]। एक अमृत के समान था, तो दूसरा हलाहल विष के समान। मरुभूति की

---

१ (क) पोयणपुरं नाम नगरं

—सिरि—पासनाह चरियम्, देवभद्रसुरि
प्रस्ताव, १ पृष्ठ ४

(ख) तहिं पोयणपुरु पट्टणु रिउ—दल—वट्टणु अत्थि पउर—संपुण्णउ।
जं तिहुयणहँ पसिद्धउ, धणेहिं समिद्धउ चउ—गोउर—संघण्णउ॥

—पासणाह चरिउ १।५।३

(ग) पार्श्वनाथ चरितम्

२ (क) —सिरिपासनाह चरियम् १।४

(ख) तहिँ णिवसइ पहु अरविंदु णाउ
लावण्ण—कंति—कल—गुणहँ थाउ।
तहो उवम हि विज्जउ णाहि कोइ
दप्पण—गउ जइ पर सो जि होइ॥

—पासनाह चरिउ, पउम, १।८।४

३ (क) तहाँ विस्सभूइ णामेण आसि,
सुपसिद्धु पुरोहिउ गुणहँ रासि।
सुकुलीणु विसुद्धु महाणुभाउ
जिण—सासणि अणुदिणु साणुराउ॥

—वही १।१०।५

(ख) चउप्पन्नमहापुरिसचरियं पृष्ठ २४३

४ पासनाह चरिउ—पद्म कीर्ति—१।१०।५

अवतरित होने का उल्लेख है[1]। उस के पश्चात् भगवान पार्श्व की जीवन गाथा को अनेक आचार्यों ने अत्यंत विस्तार के साथ लिखी है। आचार्य शीलाङ्क ने चउप्पन्न महापुरिस चरियं, आचार्य हेमचंद्र ने त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र, वादिराज सूरि ने सिरिपास चरियं, देवभद्र सूरि ने सिरिपास चरियम्, पद्मकीर्ति ने पासणाह चरिउ, हेम विजय गणी ने पार्श्व चरितं, कविवर रइधू ने पास चरियम्, लक्ष्मीवल्लभ ने उत्तराध्ययन (अ. २३) की टीका, व कल्पसूत्र की अनेक टीकाओं में तथा उत्तर पुराण, व तिसट्ठी महापुरिस गुणालंकारम् में विस्तार से परिचय दिया गया है। यह सत्य है कि श्वेतांबर परंपरा में चउप्पन्न महापुरिस चरियम् का त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र का और सिरि-पासणाह चरियम् का ही परवर्ति लेखकों ने अनुसरण किया है और दिगंबर परम्परा में आदि पुराण और उत्तर पुराण का अनुसरण हुआ है।

भगवान पार्श्व के जीवन एवं उपदेशों का वर्णन करने से पूर्व यह भी आवश्यक है कि पूर्वभवों में उन्होंने किस प्रकार तपस्या, साधना आदि सत्क्रियाएँ की, जिससे तीर्थंकर पद की परम श्रेष्ठ भूमिका पर उनकी आत्मा पहुँच पाई। साथ ही किन किन भूलों, अपराधों एवं दुष्कृत्यों के कारण आत्मा को यातना एवं कष्ट झेलने पडे। इन सबकी विवेचना केवल पौराणिक मनोरंजन की ही सामग्री नहीं किन्तु जैन धर्म व दर्शन के मूल हार्द को समझने की चाबी है। इसी दृष्टि से सर्व प्रथम भगवान पार्श्व के पूर्वभवों की चर्चा यहाँ पर की जा रही है।

१. मरुभूति

इतिहास की काल गणना से परे, अपरिमेय लक्षाधिक वर्ष पूर्व की यह घटना है। जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में पोतनपुर नामक नगर

---

१ तिलोयपण्णत्ती गा. ५२४, पृष्ठ २०७

था[1]। वहाँ पर प्रजाप्रिय अरविन्द नामक राजा राज्य करता था[2]। धारिणी उस की धर्मपत्नी थी। वहाँ पर विश्वभूति नामक मुख्य राज-पुरोहित रहता था[3]। वह जैन श्रावक था, उसके जीवन के कण-कण में मन के अणु-अणु में धर्म के प्रति अटल आस्था थी। उसकी पत्नी का नाम अनुधरा था, वह भी पति की भाँति ही धर्म परायण थी। एक बार भगवान पार्श्वनाथ का जीव मरुभूति के रूप में वहाँ पर जन्म ग्रहण करता है।

मरुभूति का एक ज्येष्ठ भ्राता भी था, जिसका नाम कमठ था। मरुभूति और कमठ ये दोनों सहोदर थे पर दोनों के स्वभाव में दिन-रात का अन्तर था। मरुभूति सद्गुणों का आगार था, तो कमठ दुर्गुणों का भण्डार था। मरुभूति सदाचारी था, तो कमठ व्यभिचारी[4]। एक अमृत के समान था, तो दूसरा हलाहल विष के समान। मरुभूति की

---

१ (क) पोयणपुरं नाम नगरं

—सिरि-पासनाह चरियम्, देवभद्रसुरि
प्रस्ताव, १ पृष्ठ ४

(ख) तहिं पोयणपुरु पट्टणु रिउ-दल-वट्टणु अत्थि पउर-संपुण्णउ।
जं तिहुयणहँ पसिद्धउ, धणेहिं समिद्धउ चउ-गोउर-संघण्णउ॥

—पासणाह चरिउ १।५।३

(ग) पार्श्वनाथ चरितम्

२ (क) —सिरिपासनाह चरियम् १।४

(ख) तहिँ णिवसइ पहु अरविंदु णाउ
लावण्ण-कंति-कल-गुणहँ थाउ।
तहो उवम हि विज्जउ णाहि कोइ
दप्पण-गउ जइ पर सो जि होइ॥

—पासनाह चरिउ, पउम, १।८।४

३ (क) तहाँ विस्सभूइ णामेण आसि,
सुपसिद्धु पुरोहिउ गुणहँ रासि।
सुकुलीणु विसुद्धु महाणुभाउ
जिण-सासणि अणुदिणु साणुराउ॥

—वही १।१०।५

(ख) चउप्पन्नमहापुरिसचरियं पृष्ठ २४३

४ पासनाह चरिउ-पद्म कीर्ति-१।१०।५

प्रकृति मधुर होने के कारण सभी जन उससे प्रेम करते थे, पर कमठ की प्रकृति क्रूर होने के कारण कोई भी व्यक्ति उससे बोलना भी पसन्द न करता था। जब दोनों भाई युवा हुए तो उनका पाणिग्रहण क्रमशः वरुणा और वसुंधरा नाम की कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ[1]।

जीवन की सांध्य बेला में राजपुरोहित विश्वभूति ने अपना उत्तरदायित्व पुत्रों को सम्भलाया और स्वयं धर्म साधना करने लगा। अन्त समय में संथारा संलेखना पूर्वक आयु पूर्ण किया और प्रथम देव लोग में देव बना[2]। उसकी अनुद्धरा पत्नी भी पति की भाँति ही धर्म साधना कर प्रथम देव लोग में देवी बनी।

श्री देवभद्रसुरि और उदयवीर गणी विरचित पार्श्वनाथ चरित्र के अनुसार विश्वभूति के स्वर्ग गमन के पश्चात् हरिश्चन्द्राचार्य पोतनपुर में आये। कमठ और मरुभूति ये दोनों धर्मश्रवणार्थ पहुँचे। मुनि के पावन प्रवचन को श्रवण कर मरुभूति के अंतर्मानस में धर्म–सम्यग्-दर्शन का बीज अंकुरित हो उठा[3]। धर्म और सद्‌बोधि का वह बीज

---

१ (क) जेट्ठस्स वरुणाए सह, कणिट्ठस्स य वसुंधराए

—चउप्पन्न. पृष्ठ २४५

(ख) सिरिपासनाह चरियं— १।५

(ग) त्रिषष्टि. ९।२

२ (क) अण्णया य सावयधम्मुज्जयमई कालं काऊण विस्सभूई गओ सुरलोयं

—चउप्पन्नमहापुरिस चरियं— पृष्ठ २४५

(ख) विस्सभूई पुरोहियो कालं काऊण उववण्णो सोहम्मे देवलोए देवत्तणेणं

—पासनाह चरियं १।६

(ग) पद्मकीर्ति रचित पार्श्वचरित्र में दीक्षा का वर्णन है :—

तहिँ अवसरि सो दियवरु मिल्लिवि
णिय–घरु वहु–वइराएँ लइयउ।
णिय–पउ पुत्तहो देविणु विसय
चएप्पिणु जिण–दिक्खहे पव्वइयउ ॥

—पासनाह चरिउ—१।१०।५

३ (क) नवरं मरुभूई संसारनिस्सारयानिरूवणुप्पण्णसंवेगो ववगयविसयसंगाणुरागो…… माइन्दजालंपिव गंधव्व–नगरंपिव वा घरवासमवगच्छन्तो, वालकालदुव्विल–सियसंभरणसंजायातुच्छपच्छायावो अणवरयपारद्ध-विसुद्धधम्मकम्मो सुरूवरामायणम्मिवि चक्खुमक्खि वन्तो खणे–खणे परिभावेइ —सिरि–पासनाह चरियं १।७

(ख) श्री पार्श्वनाथ चरितम्–प्र. सर्ग

अनेक सद्गुणों के रूप में पल्लवित होने लगा। वह अपने आप में एक अद्भुत आत्मिक प्रसन्नता और शान्ति का अनुभव करने लगा।

कहना न होगा कि मरुभूति के अन्तर्हृदय में अंकुरित यही धर्म बीज, आगे चलकर अनेक घात–प्रत्याघात, उत्थान–पतन के बीच विकसित होता हुआ दसवें भव में तीर्थंकर पार्श्व के रूप में महावृक्ष का रूप धारण करके सम्पूर्ण विश्व को कृतार्थ करनेवाला सिद्ध हुआ। किन्तु उसका ज्येष्ठ भ्राता कमठ मुनि के सम्पर्क में आकर के भी अपने जीवन को निर्मल न बना सका, किन्तु अपने जीवन को कषाय से अधिकाधिक कलुषित करने लगा। मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा अत्यन्त रूपवती थी, उसके मनोहर रूप को देखकर कमठ उस पर आसक्त हो गया, अनेक बार अभ्यर्थना करने पर वसुन्धरा भी अपने धर्म से च्युत हो गई[1]।

कमठ और वसुंधरा का यह दुर्व्यवहार कमठ की पत्नी वरुणा ने देखा। पति को नाना प्रकार के उपदेश दे कर समझाने का प्रयास किया परन्तु वह न माना। एक दिन कमठ की पत्नी वरुणा ने समय देख कर मरुभूति को कमठ तथा वसुन्धरा के पारस्परिक व्यवहार की जानकारी दी[2]। मरुभूति को भ्रातृ पत्नी के प्रस्तुत कथन पर विश्वास नहीं हुआ, वह तो अपने भाई को पूर्ण सदाचारी मानता था, और अपनी पत्नी को पतिव्रता। वरुणा ने कहा–'यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो

---

१ (क) सा वि हु वसुंधरा अविण्णायविसयसुहसंभोया 'पियवन' [illegible]
दुद्धरत्तणओ वम्महपसरस्स संपलग्गा कमठस्स। [illegible]
पवड्ढिओ पेम्मपसरो।

—[illegible]

(ख) पासनाह चरिउ, पद्मकीर्ति— १।१२।६

२ (क) तं च तारिसं दट्ठुमपारयंतीए [illegible]
सिट्ठं जहावट्ठियं मरुभूइणो

—[illegible]

(ख) पासनाह चरिउ. १।१४

(ग) पासनाह चरियं–देवभद्रसूरि [illegible]

परीक्षा करके देख सकते हो। मरुभूति को यह बात जच गई और वह जंगल में गया। कुछ समय के पश्चात् योगी का अद्भुत रूप वना कर आया। कमठ मरुभूति के वहाँ पर न रहने से और अधिक स्वच्छंद हो गया था, तथा वसुन्धरा आजाद हो गई थी। कमठ योगी रूपधारी मरुभूति को न पहचान सका और उसे अपने मकान में ठहरा दिया। मरुभूति ने अपने नेत्रों से जब वसुन्धरा और कमठ की काली करतूतें देखी तो भावज के कथन पर विश्वास हुआ तथा संसार से विरक्ति हुई। मरुभूति ने प्रयास किया कि भाई की प्रकृति में परिवर्तन आये पर जब सफलता न मिली तो उसने भाई को सुधारने की दृष्टि से राजा अरविन्द को सारी स्थिति का परिज्ञान कराया[1]। राजा ने क्रुद्ध होकर कमठ को देश से निर्वासित कर दिया[2]।

कमठ इस घोर अपमान से आग वबूला हो गया, वह अपने दुष्कृत्य पर विचार न कर मरुभूति पर ही दाँत पीसने लगा। मन में यह

---

१ तेणावि असद्दहमाणेण अवहीरियं तीए वयणं

—चउप्पन्न— पृष्ठ २

१ (क) तओ तं दट्ठुमसहमाणो अन्तोसंवड्ढियकोवजलणजाला-
करालियहिययावेओ लोयाववायभीरुत्तणओ कह-कह वि संवरिऊण
चित्तवियारं णिग्गओ तप्पएसाओ। गओ राइणो समीवं।
साहियं जहावट्ठियं।

—चउप्पन्नमहा. २४६

१ (ख) विण्णत्तु णवेप्पिणु तेण राउ,
अत्थाणि मज्झि परियण-सणाहु।
परिहविउ देव हउँ भायरेण
उद्दालिय पिय महु घरिणि तेण।
धाह् वाविउ अग्गइ देव तुज्झु
पइँ मुइवि सरणु को अवरु मज्झु।

—पासनाह चरिउ— १।१७।९

(ग) त्रिपष्टि— ९।२

२ (क) पासणाह चरिउ— १।१८।९
(ख) सिरिपासणाह चरियं— १।१५

दु:संकल्प किया कि इस दुष्ट ने मेरी यह दुर्दशा की है अतः समय आने पर मैं इसका प्रतिशोध लूंगा।

कमठ कुछ समय तक तो इधर-उधर घूमता रहा पर कहीं पर भी आश्रय नहीं मिला तो अन्त में शिव नामक तापस के पास तापसी प्रव्रज्जा ग्रहण की। अपने चारों ओर आग लगा कर कठोर तप की साधना करने लगा। उसके उग्र तप की प्रशंसा जन-जन की जिह्वा पर चढ गई[2]।

मरुभूति को कुछ समय के पश्चात् भाई की स्मृति आई, और अपने कृत्य पर उसे पश्चाताप हुआ। मेरे कारण भाई को कष्ट हुआ अत: जाकर भाई से अपने अपराध की क्षमा याचना करूं। यह सोचकर क्षमा याचना करने के लिए वह आश्रम में गया[3]। भाई को नमस्कार करने के लिए ज्यों ही वह चरणों में झुका त्यों ही क्रोध से बेभान बने हुए कमठ ने आव देखा न ताव, सीधा ही अपने पास पडे हुए बडे से

---

२ (क) गओ गरुयवेरग्गुप्पण्णपरलोयहियायरणचित्तो वणं।
गहियतरिव्वायगलिंगो य समाढत्तो कट्ठयरमण्णाणतवमायरिउं।
—चउप्पन्न. २४६

(ख) ......तओ कुलवइणा दिन्ना तस्स तावसदिक्खा। सिक्खविओ किरियाकलावं। ...... दुक्करतवविसेससोसिय–सरीरत्तणेण अभिमओ लोयस्स। उवादेओ कुलवइणो। पसंसणिज्जो सेसतावसाणं एवं वच्चन्ति वासरा
—सिरिपासनाह. १।१६

३ (क) मरुभूई खामणाणिमित्तं कमठ समीवं गओ
चउप्पन्न– २४६

(ख) उट्ठि महाबल भायर सयल–गुणायर
खम करि उप्परि अम्हहं।
—पासणाह चरिउ– १।२१।११

(ग) सिरिपासणाह चरियं— १।१७

पत्थर को लेकर उसके सिर पर दे मारा[1]। पत्थर की चोट से अपार वेदना हुई और मरुभूति ने आर्त-ध्यान में ही छटपटाते हुए वहीं आयु पूर्ण कर दिया।

२. गजराज

मरुभूति वहाँ से आयु पूर्ण कर विंध्याचल की अटवी में हाथिओं के यूथ का स्वामी गजराज हुआ[2]। कमठ की पत्नी वरुणा भी वहाँ से काल प्राप्त कर पूर्व स्नेह वश यूथपति गजराज की प्रिया हस्तिनी हुई[3]।

एक समय पोतनपुर नरेश अरविन्द राजप्रासाद में बैठे हुए प्राकृतिक सौंदर्य-सुषमा को निहार रहे थे। शरद ऋतु का समय था। आकाश में उमड-घुमड कर घटाएँ छा रही थीं। बिजलियाँ कौंध रही थीं, किन्तु दक्षिण की हवा चलते ही वे घटाएँ क्षण में नष्ट हो गई, बिजलियाँ चमकनी बन्द हो गई। आकाश स्वच्छ हो गया। राजा

---

१ (क) तेणावि समुप्पण्णकोवाइसएण विम्हरिऊण परिव्वायगत्तणं, सुमरिऊण तज्जणियविडम्बणाणुसयं पायवडियस्सेव मरुभूइणो मुद्धाणोवरि विमुक्का समासण्णदेसट्ठिया घेत्तूण महासिला

—चउप्पन्न– पृष्ठ २४६

(ख) तत्प्रहाररुजा सार्तध्यानो मृत्वाभवत्करी

–त्रिषष्टि ९।२।५६

प्रहारातिसमुत्पन्नमहार्तध्यानधूसरः

—पार्श्व चरित्र– १।१६६

विन्ध्याद्री भद्रजातीयः सोऽभूद् बन्धुरसिन्धुरः

—पार्श्व चरित्र– १।१६७

२ उप्पण्णु महावणे वर–गइंदु
धवलुज्जलु णं हिमगिरि वरिंदु

—पासनाह चरिउं– १।२२–११

३ वही— १।२२।११
स्वप्रिये च वृत द्वेषा, स्निग्धस्नेहा च देवरे।
विपद्य वरुणा जज्ञे हस्तिनी तस्य हस्तिनः ॥

—पार्श्वनाथ चरित– हेम विजय गणी १।१७९

अरविन्द यह दृश्य देख कर चिन्तन करने लगा कि "संसार के पदार्थ भी इसी प्रकार क्षणभंगुर नहीं हैं ? जो अभी दिखलाई दे रहा है वह क्या कुछ समय में नष्ट नहीं हो जायेगा ?" संसार के पदार्थों की अनित्यता समझ कर मन में वैराग्य का पयोधि उछाले मारने लगा, पुत्र को राज्य देकर स्वयं भद्राचार्य के पास प्रव्रजित हो गया[1]।

अरविंद मुनि की प्रव्रज्या शुद्ध वैराग्य प्रेरित थी। उनके विरक्त हृदय में ध्यान, तपस्या और सेवा की पावन गंगा प्रवाहित हो रही थी। वे उत्कृष्ट तप के साथ ज्ञान की भी साधना करने लगे। उनका आध्यात्मिक जीवन उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होता जा रहा था। एकबार अरविन्द मुनि उसी भयंकर अटवी में ध्यानस्थ खडे थे। मुनि को निहार कर पहले तो हाथी उन्हें मारने के लिए झपटा, पर दूसरे ही क्षण वह विचारने लगा कि यह तो कोई पूर्व परिचित सा लगता है। अतः वह रुक गया। मुनि ध्यान से निवृत्त हो कर बोले, अरे गजराज ! तू जरा अपने स्वरूप को पहचान ! क्यों अपने जीवन को बरबाद कर रहा है। जरा स्मरण कर अपने पूर्वभव को, पूर्वभव में तू मेरा राजपुरोहित मरुभूति था, और मैं राजा था[2]। तेरे भाई कमठ तापस ने तेरे सिर पर पत्थर मारा जिस आर्त ध्यान से तू मर कर हाथी बना। जरासी अविशुद्धि के कारण तुझे तिर्यञ्च बनना पडा, अब भी संभलो, और अपने जीवन को विशुद्ध बनाओ।

---

१ (क) चउप्पन्न— पृष्ठ २४६ से २४८
(ख) त्रिषष्टि— ९।२
(ग) सिरि-पासनाह चरियं— १।१९-२०

२ (क) तप्पडिबोहणत्थं च अच्चन्तमुहसंजणणीए भारईए भणिउं पयत्तो जहा— भो भो मरुभूइ ! किं ण सुमरेसि मं अरविंदणामाणं णरवइं ....
—चउप्पन्न. २४९

(ख) अहो गयवर हउँ अरविंदु राउ
पोयणपुर-सामिय एत्थु आउ।
मरभूइ तुहुँ मि उप्पण्णु हत्थि।
—पासनाहचरिउ ३।१५।२८

मुनिराज के उद्बोधन से हाथी को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई, जिसे जैन परिभाषा में जातिस्मरण ज्ञान कहते हैं। हाथी ने उसी समय प्रतिज्ञा ग्रहण की कि मैं किसी भी जीव की हिंसा न करूंगा और श्रावक व्रतों का पालन करूँगा। मुनि के सम्पर्क में आते ही हाथी में विवेक की ज्योति जागृत हो गई, वह मर्यादा युक्त जीवन व्यतीत करने लगा। वह लम्बी-लम्बी तपस्याएँ करने लगा और भोजन में भी सूखा घास ही उपयोग में लाने लगा जिसके कारण उसका शरीर कृश हो गया। एकबार वह पानी पीने के लिये सरोवर में उतरा, कीचड की अधिकता से और तप से दुर्बल होने के कारण वह कीचड में फँस गया।[1]

उस समय उस के पूर्वभव का सहोदर—कमठ तापस जो उसकी हत्या करने के कारण आश्रम से निष्कासित कर दिया गया, क्रोध की प्रचंडता के कारण वहाँ से आयु पूर्ण कर विंध्याचल अटवी में ही कुर्कुट जाति का भयंकर सर्प हुआ था। हाथी को कीचड से क्लान्त देख कर पूर्वभव का वैर उद्बुद्ध हुआ, उछल कर हाथी के गंडस्थल पर जा कर बैठा और जोर से काटने के कारण शरीर में जहर व्याप्त हो गया। भयंकर वेदना होने लगी, तथापि हाथी के मन में विषम भावना न आयी। अनशन कर वहाँ से आयु पूर्ण किया।[2]

---

१ मुणिणा वि मुणिऊण भावत्थं पणामिओ से सयलो वि सावगधम्मो।
......सो वि हु करिवरो गहियसम्मत्तसारो चक्खूवेक्खिमहियल
विइण्णमंद पयसंचरो छट्ठऽट्ठ माइतव चरणकरणुज्जओ
रसपरिच्चाय परिगयमई परिचत्तसयलगियजूहसंगो......धम्म
ज्झाण- णिहित्तचित्तो गमेइ कालं ति—
—चउप्पन्न महा. पृ. २४९. २५०

२ सलिलाहारणिमित्तमागओ वणकरी।......णिगच्छमाणोय भवियव्वयाए खुत्तो महल्लचिक्खलम्मि। णित्थामत्तणओ णिग्गंतुमपारं तो गयवरो पुव्वभवुप्पण्णकोवाइसएणय समुप्पइऊण कवलिओ कुंभभामम्मि कुक्कुडभुयं-गमेणं तओ मुणिऊण तव्विहविहाणमत्तणो गयवरो सुमरिऊण गुरुदिण्णोवएसं काऊण चउव्विहाहार—पच्चक्खणं भाविउं पयत्तो......
—चउप्पन्न महपुरिस चरियं पृ. २५०

३ सहस्रार स्वर्ग

हाथी समभाव पूर्वक आयु पूर्ण कर सहस्रार स्वर्ग में महान् ऋद्धिवाला देव बना [1]। वहाँ पर उसकी आयु सतरह सागर की थी। कुक्कुट सर्प भी अशुभ अध्यवसायों के साथ आयु पूर्ण कर पाँचवी नरक में उत्पन्न हुआ, जहाँ पर अपार कष्टों को अनुभवकरने लगा [2]।

४ किरण वेग

सहस्रार स्वर्ग से मरुभूति का जीवन आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र के वैताढ्यगिरि के अधिपति विद्युत्गति नृपति की प्रधान महिषी कनक तिलकवती महारानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ [3]। किरणवेग यह नाम दिया [4]। किरणवेग जब बडा हुआ तो विद्युतगति नृपति ने उसे राज्य संभलाया और स्वयं ने श्रुतसागर गुरु के पास प्रव्रज्या ग्रहण की [5]।

---

१ इय विहिणा करिराया कालं काऊण तत्थ सुद्धमती।
उववण्णो सुरलोगुत्तमम्मि सहसारकप्पम्मि ॥
—चउप्पन्न– ६३।२५०

(ग) उप्पण्णु देउ सहसार कप्पि।
अच्छर–गण–बहु–सुर–वर स–दप्पि ॥
—पासणाह चरिउ–३।४।३०

२ (क) सो. वि हु कुक्कुडभुयंगमो अहाउयक्खएणं कालं काऊण समुप्पण्णो विचित्तवियणाउराए पंचमाए णरयपुढवीए सत्तरससागरोवमाऊ चेव णारओ त्ति।
—चउप्पन्न २५०

(ग) सिरिपासणाह चरियं— १।३१

३ विज्जुगतिणामहेयस्स खयराहिवइणो कणयतिलयाहिहाणाए वरग्गमहिसीए उदरम्मि पुत्तत्तणेणं
—चउप्पन्न– २५०

४ पट्टाविय च णामं किरणवेगो त्ति।
—वही २५०

(ख) त्रिषष्टि– ९।२

५ तओ सो विज्जुवेगखयरीसरो पणामिऊण णियय-पुत्तस्स रज्जं पवण्णो सुयसागर गुरुसमीवम्मि पव्वज्जं
—चउप्पन्न– २५०

(ख) त्रिषष्टि– ९।२.

किरणवेग लम्बे समय तक राज्य का संचालन करता रहा उस के पश्चात् अपने पुत्र किरणतेज को राज्य दे कर सुरगुरु मुनि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की [1]। द्वादशांग का गंभीर अभ्यास किया और अत्युत्कृष्ट संयम की आराधना करने लगा, जिससे आकाशगामिनी आदि अनेक लब्धियां प्राप्त हुई। एक बार वे साधना करने के लिए आकाशमार्ग से पुष्कर द्वीप में पहुँचे। नाना प्रकार के तपों का आचरण करते हुए कनक गिरी पर जाकर प्रतिमा धारण कर स्थित हुए [2]।

कमठ का जीव पाँचवीं नरक से निकल कर वहाँ पर विषेला भयंकर सर्प बना था [3]। पद्मकीर्ति ने पासणाह चरिउ में सर्प के स्थान पर अजगर का उल्लेख किया है [4]। वह सर्प किरणवेग मुनि को जब ध्यान मुद्रा में खडे देखता है तो पूर्व भव का वैर उद्बुद्ध होता है और मुनि के शरीर को काटता है [5]।

---

१ (क) दाऊण किरणतेयणामस्स णिययपुत्तस्स रज्जं पवण्णो सुरगुरुमुणिणो समीवम्मि पव्वज्जं

—चउप्पन्न– २५०

(ख) पासणाह चरिउ– ४।१०।३३

२ (क) अण्णया य आगासगमणेणं गओ पुक्खरवरदीवद्धं। तत्थ विणाणाविहतवचरणणिरओ कणयगिरिसण्णियासम्मि ठिओ पडिमाए।

—चउप्पन्न– २५१

(ख) पासणाह चरिउ– ४।१०।३३

३ (क) ...... तस्स चेय कणयगिरिणो णियडणिउंजम्मि समुप्पण्णो ...... महोरगो त्ति

—चउप्पन्न– २५१

(ख) पासणाह चरियं प्रस्ताव २ पृष्ठ ६८

४ तं कमढ–जीउ कलि–मल समुद्द, उप्पण्णु तित्थु अजयरु रउद्दु

—पास– ४।११

५ अण्णया य तेण महाहिणा इओ तओ आहारत्थं परिब्भममाणेण दिट्ठो सो किरणवेगो महरिसी......पुव्वभवब्भत्थवेरकारणेण य वियडदढदाढाविडिंचियवयणकुहरेण तक्खणं परिवेढिऊण सयलंगावयवे खइओ बहुप्पएसेसु त्ति।

—चउप्पन्न– २५१

(ख) त्रिषष्टि– ९।२

शरीर में विष व्याप्त हो जाता है, जिससे शरीर में भयंकर वेदना होती है किन्तु मुनि के अंतर्मानस में समता की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है और वे समभावना में ही वहाँ से आयु पूर्ण कर देते हैं।

५ अच्युत

किरणवेग मुनि का जीव वहाँ से आयु पूर्ण कर अच्युत (बारहवें) देवलोक में बावीस सागर की स्थितिवाला देव बनता है[1]। और वह सर्प भी दावाग्नि में झुलस कर अशुभ भावना से आयु पूर्ण कर छठ्ठी नरक में उत्पन्न होता है।[2]

६ वज्रनाभ

अच्युत देव लोक से बाईस सागर की स्थिति को भोग कर किरण वेग मुनि का जीव जम्बूद्वीप के अपर महाविदेह क्षेत्र में वज्रवीर्य राजा के वहाँ महारानी लक्ष्मीमती की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। उत्तर पुराण के अनुसार माता का नाम विजया है। चउप्पन्न महापुरिस चरियं,[4]

---

१ सो वि महामुणी मेरुणिहायलधीरसंपत्तिसत्तजुत्तो णिप्पयंपसमुद्धन्तधम्म-ज्झाणपरिवड्ढमाणसुहज्झवसाणो चइऊण पूइदेहं समुप्पण्णो अच्चुयणामम्मि पवरसुरलोए जंबुद्दुमावत्ते विमाणम्मि पवरदेवत्तणेणं।

—चउप्पन्न– पृष्ठ २५१

२ सो वि हु महाफणी बहुविहसत्तसंघायणऽज्जियपउरपावपब्भारो परिब्भमन्तो पव्वयकच्छतडम्मि संपलग्गवणदवजालावलीपुलुट्ठदेहो मओ समाणो समुप्पण्णो धूमाए णरयपुढवीए

—चउप्पन्न– पृष्ठ २५१

३ इहेव जम्बूद्दीवे दीवे अवरविदेहे खेत्ते सुगंधिविजए सुहंकराए पुरवरीए वज्जवीरिओ णाम णरवई, तस्स लच्छिमती णाम भारिया, समुप्पण्णो तीए गब्भम्मि।

—चउप्पन्न– २५१

४ कयं च से णामं वज्जणाहो त्ति

—चउप्पन्न– २५१

देवभद्र सूरि रचित सिरि-पासनाह चरियं [1] उदयवीर गणी विरचित श्री पार्श्वनाथ चरितम्[2] और कल्पसूत्र की टीकाओं में उसका नाम वज्रनाभ दिया है।[3] पद्मकीर्ति विरचित पासणाह चरिउ में उसका नाम चक्रायुध दिया है।[4] किन्तु उपरोक्त श्वेतांबर ग्रन्थों में वज्रनाभ के पुत्र का नाम चक्रायुध है। उत्तर पुराण में वज्रनाभि को एक चक्रवर्ती सम्राट् बताया है।[5] पर अन्य ग्रन्थों में नहीं।

वज्रनाभ पिता के दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् दीर्घकाल तक राज्यश्री का उपभोग करता है। उसका पुत्र चक्रायुध जब योग्य वय को प्राप्त कर लेता है तब उसे राज्य का भार दे कर स्वयं क्षेमंकर तीर्थंकर के पास दीक्षित हो जाता है [6]।

उत्कृष्ट तप की साधना करने पर उनको अनेक प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त होती हैं। एक बार वज्रनाभ मुनि ध्यान की साधना

---

१ ...... पइट्ठियं से वज्जणाहोत्ति नाम

—पासनाह चरियं प्रस्ताव २, पृ. ७०

२ स्वजनसमक्षं वज्रनाभ इति स्पष्टं नाम निर्ममे

—श्री पार्श्वनाथ चरितम् सर्ग ३. पृ. ५७

३ कल्पसूत्र—लेखक द्वारा सम्पादित— पृष्ठ २१५ देखें।

४ (क) जो कहिउ अण्ण—भवे किरणवेउ
तउ करिवि सुग्गि उप्पण्णु देउ।
सो अच्चुव—कप्पहो चविवि आउ
लच्छीमइ—कुच्छिहि गब्भि जाउ॥

— — — —

चक्कंकिय—कर—यलु—गुण—पगाउ
चक्काउहु किउ तें तासु णाउ॥

—पासणाह चरिउ— ५।२।३६

(ख) उत्तरपुराण ७३।४७ से ६०

५ (क) समागओ खेमंकरो णाम जिणवरो। विरइयं देवेहिं समोसरणं। णिसण्णो तत्थ भयवं। पत्थुया धम्मदेसणा...पडिवण्णो तित्थयर समीवे समणलिंगं

—चउप्पन्न महापुरि— पृष्ठ २५३

६ (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ९।२
(ख) पासणाह चरिउ ५।७।३८

करने के लिए आकाश मार्ग से सुकच्छ नामक विजय में जाते हैं।[1] एकान्त-शान्त कानन में मुनि ध्यान मुद्रा में खडे हैं। उस समय कमठ का जीव छट्ठी नरक से निकल कर अन्य अनेक जन्मों में परिभ्रमण करता हुआ उस अरण्य में कुरंग नामक भील बना था। मुनि को उसी अरण्य में वृक्ष के नीचे एकाकी ध्यानस्थ खडे देखकर उसका पूर्व वैर उद्बुद्ध हुआ और उसने मुनि को बाण से बींध डाला, पर मुनि ध्यान से विचलित नहीं हुए। उन्होंने समाधि पूर्वक आयु पूर्ण किया, और भील—मैं महान धनुर्धर हूँ,—इस प्रकार अहंकार में प्रसन्न हो कर मुनि-हिंसा का गाढ बंधन किया।[2]

७ ललितांग

वज्रनाभ मुनि वहां से आयु पूर्ण कर मध्यम ग्रैवेयक में ललितांग नामक देव बने[3] और वह भील जो कमठ का जीव था वहाँ से मर कर अनेक पाप कर्मोंको करने के कारण सातवीं नरक के रौरव नामक

---

१ (क) एवं च विविहतवोविहाणणिरओ समुप्पण्णगयणंगणलद्धी संपत्तो अणेयगुणगणकलियजण—धणसमिद्धं सुकच्छं णाम विजयं ति।

—चउप्पन्न– २५३

(ख) पासणाह चरिउ– ५।८।३८

२ (क) जलणगिरिसमीवे......कुरंगय णामो वणयरत्ताए। ......णमो जिणाणं, ति भणमाणो णिसण्णो धरणिमंडले, सुमरिओ अप्पा, कयं जहाविहि पच्चक्खाणं......सो वि हु पाव—कम्मकारी कुरंगओ एक्कप्पहारोमुद्धं विणितरुहिरपब्भारभासुरं महामुणि विवण्णं पलोएऊण 'अहो अहं महाधणुद्धरो' ति मण्णमाणो दढं परिओसमुवगओ।'

—चउप्पन्न– २५४

(ख) पासणाह चरिउ– ५।८।९।३८–३९

३ (क) मज्झिम—गेवेज्जयम्मि ललियंगयाहिहाणो सुरवरो

—चउप्पन्न– २५४

(ख) तिसट्ठि– ९।२
मज्झिम—गेविज्जे मझिम—गेड, उप्पण्णु महापहाण देउ

—पासणाह चरिउ– ५।११।४०

नरकवास में उत्पन्न हुआ[1]।

८ स्वर्णबाहु

वहाँ से वज्रनाभ का जीव आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में, पुराणपुर नगर के अधिपति कुलिशबाहु राजा के वहां सुदर्शना नामक अग्रमहिषी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ[2]। पुत्र के गर्भ में आते ही महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। पद्मकीर्ति के अनुसार चक्रवर्ती की माता आठ स्वप्न देखती है। आदि पुराण में चक्रवर्ती की माता के द्वारा छह स्वप्न देखने का निर्देश किया गया है[3]। भगवती (५७७) और कल्पसूत्र (७५) के अनुसार चक्रवर्ती की माता चौदह स्वप्न देखती है। पर उत्तर पुराण के अनुसार वह चक्रवर्ती नहीं माण्डलिक राजा था, किन्तु अन्य सभी ग्रन्थों में उसे चक्रवर्ती लिखा है।

जन्म लेने पर उनका नाम स्वर्णबाहु रखा गया[4]। देवभद्र, सूरि विरचित पार्श्वनाथ चरियं के अनुसार कनकबाहु[5] और आचार्य

---

१ (क) समुप्पण्णो रोरम्मि णरए

—चउप्पन्न– २५४

(ख) मिच्छो वि कुरंगमु कोढ–गीढु,
गउ–रउरव–णरयहो पाव–मूढु

—पासणाह चरिउ– ५।११।४०

(ग) त्रिषष्टि– ९।२

२ पुव्व विदेहे खेत्ते पोराणपुरवरम्मि कुलिसबाहू णाम णरवई, ...
सुदंसणा णाम अग्गमहिसी।

—चउप्पन्न– २५४

३ अथान्यदा महादेवी सौधे सुप्ता यशस्वती
स्वप्नेऽपश्यन्महीं गुस्तां मेरूं सूर्यं च सोडुपम्।
सरः सहं समब्धि च चलवीचिकमैक्षत

—आदिपुराण– १५।१००।१०१

(ख) त्रिषष्टि शलाका– ९।२

४ सुवर्णबाहुरित्यभिधानं तस्य निर्ममे,

—पार्श्वनाथ चरित्र– ४।८५

५ पइट्ठियं सुयस्स कणयबाहु त्ति नामधेयं

—पासणाह चरियं प्रस्ताव ३१ पृ. १०१

शीलांक रचित चउप्पन्न महापुरिस चरियं के अनुसार कनकरथ दिया है।[1] पद्मकीर्ति रचित पासणाह चरिउ के अनुसार कनकप्रभ।[2] और उत्तरपुराण के अनुसार उसका नाम आनंद है। इस प्रकार सभी ग्रंथ उसके नाम के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। जब सुवर्णबाहु राज्य भार संभालने में योग्य बन गया तो कुलिशबाहुने उसे राज्य देकर जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की।[3] सुवर्णबाहु अच्छी तरह राज्य का संचालन करने लगा। एक बार राजा के पास कुछ घोडे आये। राजा सुवर्ण बाहु उन घोडों की परीक्षा करने के लिए वन-विहार को निकला। एक सुंदर घोडे पर राजा स्वयं बैठा और अन्य दूसरे घोडों पर अन्य सामन्त बैठे। जिस घोडे पर राजा बैठा था वह घोडा वक्र-शिक्षित था। राजा ने उसे रोकने के लिए जब उसकी 'रास' खींची तो घोडा और भी तेजी से दौडा। राजा रोकने के लिए रास को खींचता रहा और घोडा रुकने के बदले अधिकाधिक पवन में उडता रहा। कुछ ही क्षणों में राजा एक भयानक अटवी में पहुँच गया। जलधारा के समान उसके शरीर में पसीना चूने लगा, थकावट के कारण उसके हाथ पांव शिथिल हो गये। राजा ने थक कर घोडे की 'रास' छोड दी। ज्यों ही रास छोडी त्यों ही घोडा रुक गया।

राजा घोडे से नीचे उतरा, पास के सरोवर का पानी पीया, और वृक्षों के पके फल खाये। कुछ आश्वस्त होनेपर राजा आगे बढा। चारों ओर हरा-भरा नीला जंगल लहलहा रहा था। झरनों की कल-कल, छल-छल ध्वनि आ रही थी। कहीं कहीं पर वन्य पशु इधर-उधर दौड रहे थे। राजा आगे बढा तो एक आश्रम दिखाई दिया। राजा आश्रम में प्रवेश करता है कि दो चार बालाओं से घिरी हुई एक सुंदर कन्या दिखलाई दी। कुछ क्षणों तक राजा उसकी अद्भुत सुंदरता को निहारता

---

१ पट्टराणिए य से णाम कणयरहो।

— चउप्पन्न– २५४

२ णामेण कणयप्पहु सिरिह धामु,
रूवें मयणप्पहु णयण-धामु।

— पासणाह चरिउ– ८।२।४१

३ कुलिसबाहुणरवई [illegible] कणयप्पहं कुमारं [illegible]
[illegible] २

— चउप्पन्न– २५४

रहा और मन में विचार लगा कि यह अप्सरा यहाँ पर कौन है? कैसे है? राजा आगे बढा। कन्याओं ने राजा का स्वागत किया। राजा ने उनका परिचय पूछा? उन बालाओं में से एक बाला ने कहा– इस बहन का नाम पद्मा है, और यह रत्नपुर के अधिपति खेचरेन्द्र की पुत्री है। इसकी माता का नाम रत्नावती है। जब इसका जन्म हुआ तो इसके पिता का निधन हो गया। राज्य पर शत्रु राजा ने आक्रमण कर दिया। महारानी रत्नावती इसे ले कर वहाँ से भगी और अपना भाई गालव-ऋषि जो इस आश्रम का अधिपति है, उसके पास आई और आज तक वे यहीं पर रही हैं। एक समय यहाँ पर एक विशिष्ट ज्ञानी आए थे। गालव ऋषि ने कन्या के भविष्य के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने बताया कि कुलिशबाहु राजा के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट सुवर्णबाहु घोडे पर बैठ कर यहाँ पर आयेंगे और वे इस कन्या का पति होंगे। इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि पीछे से राजा की अन्वेषणा करता हुआ सैन्य दल भी वहाँ पर पहुँच गया। महारानी रत्नावती ने पद्मा का पाणिग्रहण राजा के साथ कर दिया। उस समय पद्मा का भाई पद्मोतर भी वहाँ पर पहुँच जाता है और सुवर्णबाहु को आग्रह कर अपने नगर में ले जाता है, दीर्घकाल तक सुवर्णबाहु वहाँ पर रह कर पुनः अपने नगर में आता है।[1]

एक समय राजा के आयुध शाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति होती है और अन्य तेरह रत्न भी प्राप्त होते हैं। उन रत्नों की सहायता से सुवर्णबाहु षट्खण्ड पर विजय वैजयन्ती फहरा कर षट्खंड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट बनते हैं।[2]

---

१ (क) त्रिषष्टि– ९। पृष्ठ. ४६४–४६८ तक गुजराती

(ख) सिरि–पासणाह चरियं, देवभद्र-प्रस्ताव ३, पृष्ठ– ११७ से १२१.

२ (क) रज्जसुहं भुंजमाणस्स संजायं चउद्दसरयणाइसामग्गियं, पवरचक्कवट्टि-लंछणं पुव्विं जहाविहिं कयसुकयकम्माणुहावओ छक्खंडभरहाहिवत्तणं ति।

—चउप्पन्न– २५४

(ख) सिरि–पासणाह चरियं, प्रस्ताव ३, पृष्ठ १२२ से १२७ तक.

एक समय पुराणपुर नगर में जगन्नाथ तीर्थंकर पधारे। सम्राट् उनके पावन-प्रवचन को श्रवण करने के लिए पहुँचे। प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् पुनः महलों में आए, तीर्थंकर के समवसरण में देव गणों को आते-जाते देखा था, अतः उनके सम्बन्ध में चिन्तन करते करते उन्हें जाति स्मरण (पूर्वभव की स्मृति) ज्ञान हुआ[1], और जाना—"मैं भी पूर्वभव में देव था, उसके पूर्व मानव था, पूर्व भवों में मेरे जीव ने प्रयत्न तो किया है किन्तु अभी तक सिद्धि के सन्दर्शन नहीं हुए है।" विरक्त हो कर पुत्र को राज्य दे कर जगन्नाथ तीर्थंकर के सन्निकट आर्हती दीक्षा ग्रहण की[2]। उत्कृष्ट तप की साधना की। किसी भी प्रकार की स्पृहा और आकांक्षा से रहित हो कर उन्होंने दर्शन शुद्धि, विनय संपन्नता, अनतिचार, शीलव्रत, सतत ज्ञानाभ्यास, संघ-सेवा प्रभृति बीस विशिष्ट स्थानों की आराधना की। जिनकी फल श्रुति के रूप में उन्होंने तीर्थंकर नामक महान् पुण्य कर्म की उपार्जना की[3]।

एक समय वे विहार करते हुए क्षीर गिरि के पास क्षीरवर्णा नामक एक भयंकर अटवी में आये। वहाँ सूर्य के सन्मुख दृष्टि केन्द्रित

---

१ (क) अण्णया य णियभवणोवरितलत्थस्स णिसण्णे सीहासणम्मि चक्किणो गुणरजस्स भयवओ वंदणणिमित्तमागयसुरसमूहस्स महारिद्धिवित्थरं समुप्पण्णा पुव्वभवाणुसरणा

—चउप्पन्न— २५५

(ख) त्रिषष्टि— ९।२

२ (क) जिणधम्मसायमूलम्मि समणत्तणं।

—चउप्पन्न— २५६

(ख) त्रिषष्टि— ९।२

३ (क) [illegible] गुणायरो, [illegible]। [illegible]— [illegible] [illegible] [illegible] तित्थयर नामकम्मं।

—चउप्पन्न— २५६

(ख) [illegible], सर्ग ३, पृ. १२९

कर ध्यान-मुद्रा में खडे हो गये।[1] उस समय सातवीं नरक से निकल कर कमठ का जीव उस अटवी में सिंह बना था।[2] वह सिंह वहाँ पर आ गया, मुनि को दूर से देखते ही उसका पूर्व वैर उद्‌बुद्ध हुआ और वह गंभीर गर्जना कर मुनि पर झपटा।[3] मुनि साधना की उच्च स्थिति पर पहुँच चुके थे। समाधिपूर्वक विशुद्ध भावों से उन्होंने आयु पूर्ण किया किन्तु शरीर को चीरते हुए सिंह पर किञ्चित् मात्र भी क्रोध नहीं किया अपितु धर्म ध्यान में ही स्थिर रहे।

९ प्राणत देवलोक

वहाँ से आयु पूर्ण कर सुवर्णबाहु मुनि का जीव दसवें प्राणत

---

१ (क) गामाणुगामं विहरमाणो संपत्तो खीरणगवरोवलक्खियं खीरवणं णाम महाडइं। संठिओ तम्मि खीरमहागिरिम्मि सूराहिमुहो आयावणा-पडिमाए त्ति।

—चउप्पन्न– २५६

(ख) ठिओ य खीरगिरितडम्मि सुराभिमुह निवेसियानिमेसनयणो निरुद्धमणवयकायवावारो काउस्सग्गेणं ति

—सिरिपासणाह चरियं– ३।१२९

(ग) पासणाह चरिउ– ७।९।५६

२ (क) इयो य सो वणयरकुरंगयजीवणारओ तओ रोरवणरयाओ उव्वट्टो समाणो तम्मि खीरपव्वयगुरुगुहोयरसंठियाए सीहीए पोट्टम्मि सीहत्तणेणभुववण्णो।

—चउप्पन्न– २५६

(ख) पासनाह चरिउ— ७।१०।५६

३ (क) अण्णया य अदीयदिणम्मि णासाइयकवलग्गहो छुहावसुल्लसियमारणा-हिलासो संपत्तो किं पि सत्तमण्णेसमाणो जत्थ सो महामुणी। तओ पुव्वभवब्भत्थवेरकारणुप्पण्णुग्गकोवपसरो धुयकंधरुव्वेल्लमाणकेसरसढा-कडप्पो पुणरुत्तं पुंछच्छडच्छोडियधरणिमंडलो गहिरगुंजारवावूरिय-गिरिकुहरकाणणंतरालो सहसा समोवइओ मुणिणो तणुम्मि। मुणिणावि 'मह मारणाहिलासी सीहो' त्ति कलिऊण कयं णिरागारं पच्चक्खाणं ताव य समुव्वहंतधम्मज्झाणो परिचइऊण देहं।

—चउप्पन्न– २५६

(ख) त्रिषष्टि– ९।२

(ग) पासणाह चरिउ– ७।१०।५६

देवलोक में महाप्रभ नामक विमान में बीस सागर की स्थितिवाला देव बना।[1]

कल्पसूत्र में भी पार्श्व के प्राणत कल्प से च्युत हो कर उत्पन्न होने का उल्लेख है।[2] तिलोयपण्णत्ती के अनुसार भी कनकपुत्र के जीव का प्राणत कल्प में जाना सिद्ध होता है, क्यों कि उस ग्रंथ में पार्श्वनाथ का प्राणत कल्प से अवतीर्ण होने का उल्लेख है।[3] किन्तु रविषेणाचार्य ने पद्मचरित में पार्श्व का वैजयन्त स्वर्ग से अवतीर्ण होना बताया है[4]। और इसी का अनुसरण पद्मकीर्ति ने भी किया है।[5] उत्तर पुराण के अनुसार अच्युत कल्प के प्राणत कल्प में इंद्र बने।[6]

इधर वह सिंह वहाँ से आयु समाप्त कर चतुर्थ नरक में गया[7]। दस सागर तक वहाँ रह कर वहाँ से तिर्यंच बना और वहाँ से इसी प्रकार अनेक भवों में दुःख भोगता रहा।[8]

१० भगवान पार्श्व

प्राणत देवलोक से बीस सागर का आयु भोग कर सुवर्णबाहु मुनि का जीव वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा के वहाँ महारानी

---

१ पाणयकप्पे महापहे पवरविमाणे वीससागरोवमट्ठिई सुरवरो त्ति।
—चउप्पन्न– २५६

२ कल्पसूत्र— १४९ पृष्ठ २१३

३ विमलो य सहस्सारो पाणयकप्पो य सुक्कदाणा।
—तिलोयपण्णत्ती– ४।५२८ पृष्ठ २०७

४ पद्मचरित— २०।३५

५ पासणाह चरिउ— ७।११।१

६ उत्तर पुराण— ७३।६८

७ (अ) सो वि सीहो नियआउयक्खयम्मि मओ समाणो पंकप्पहाए (प) रउत्थीए समुप्पण्णो दससागरोवमाऊ नारओ त्ति।
—चउप्पन्न– २५६

तओ पावनसेण तीयम्मि नरयाउए उव्वट्टो समाणो तिरियदस सागरोवमाइ संसारे परिब्भमिऊण
—चउप्पन्न– २५६

(ब) पासणाह चरिउ ७।१२।५७

८ नारयतिरियदुक्खसलिलनिज्झरे संसारो दंसणकुले। तत्थ वि परिब्भमंतेण आलेवियन्न संसारे नओ तिरिक्ख–नाइमाहो सयलो वि सहसम्मि। तओ अवसरसंसारपरिब्भमणमाणेण अणंतरं तित्थाडिओ।
—चउप्पन्न– २५६

वामादेवी की कुक्षि में चैत्र कृष्णा चतुर्थी विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ। पौष कृष्णा दशमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में उनका जन्म हुआ। पार्श्व नाम दिया।

कमठ का जीव भी नाना भवों में परिभ्रमण करता हुआ किसी गाँव में एक गरीब ब्राह्मण के वहाँ उत्पन्न हुआ। जन्म लेते ही उसके माता-पिता, भाई आदि सभी का निधन हो गया। लोगों ने दया से इसका पालन-पोषण किया। कढ यह नाम दिया।[1] दारिद्रय से पीडित होकर कठिनता से अपने जीवन का निर्वाह करने लगा। एक समय श्रेष्ठी लोगों को आनंद विहार करते हुए देख कर विचारने लगा कि मैं क्षुधा से छटपटाता रहता हूँ, न तन ढकने को पूरे वस्त्र हैं और न रहने के लिए आवास ही है और ये लोग आनंद कर रहे हैं। इसका मूल कारण यही होना चाहिए कि इन्होंने पूर्व भव में तप की साधना की है। अतः मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कुत्तों की तरह जीवन न व्यतीत कर तप की साधना करूँ, इस प्रकार विचार कर कमठ तापसी प्रव्रजा ग्रहण करता है। कंद मूलादि भोजन करता हुआ पंचाग्नि तप करने लगता है।[2]

भगवान पार्श्व के तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व की परिचय रेखा अगले अध्याय में प्रस्तुत है। यहाँ तो उनके पूर्व भवों का संक्षिप्त में परिचय दिया गया है।

---

१ (क) माहण–कुले पुणु उप्पण्णु दुट्ठु,
पिउ तेण जियंते णाहि दिट्ठु।
जम्मंतहो जणणि वि मुय तासु
तो वि हुअउ णाहि वालहो विणासु॥
—पासणाह चरिउ– ७।१२।५८ पउम.

(ख) वालभावम्मि कढोत्ति अणायरपइट्ठिय नामेण गओ पसिद्धि।
—पासणाह चरिउं— ३।१३१

एवं च गहियऽण्णाणियऽब्भुवगयदिक्खाविहाणो कंद–मूल–फलादीहिं संकप्पियपाणवित्ती जणियवम्भव्वयाभिग्गहो पंचग्गिपमुहं वहुप्पयारं तवोविसेसं चरिउं पयत्तो।
—चउप्पन्न २५७

२ (ख) पंचग्गि धोरू तउ सेवइ असइ कसायइँ वण–फलइँ।
उवएसें पुज्जइ पउमइ महुणाहिहि अट्ठविवर–दलइँ॥
—पासणाह चरिउ– ७।१३।५८

भ. पार्श्व : व्यक्तित्व, कृतित्व,
जीवन

भ. पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन

सो जयइ जिणो पासो
जस्स सिरे सहइ फणिफणकडप्पो ।
पायडियसत्त जीवाइ
तत्त संखं व दाँवतो ।।

—आचार्य गुणचन्द्र

मूर्ध्नि पार्श्वप्रभो सप्त,
फणाः सन्तु सतां श्रिये ।
जितांन्तः शत्रुषट्कस्य,
स्वस्य यच्छत्र सन्निभाः ।।

—उदयप्रभ सूरि

भगवान् पार्श्व : एक ऐतिहासिक पुरुष

भगवान पार्श्व के जीवन वृत्त की ज्योतिर्मय रेखाएं श्वेताम्बर और दिगम्बरों के ग्रन्थों में बड़ी श्रद्धा और विस्तार के साथ उट्टङ्कित की गई है। वे भगवान महावीर से ३५० वर्ष पूर्व वाराणसी में जन्मे थे, तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे। फिर संयम ले कर उग्र तपश्चरण कर कर्मों को नष्ट किया, केवल ज्ञान प्राप्त कर भारत के विविध अंचलों में परिभ्रमण कर जन-जन के कल्याण हेतु उपदेश दिया। अंत में सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर सम्मेत शिखर पर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान पार्श्व के जीवन प्रसंगों में, जैसे कि सभी महापुरुषों के जीवन प्रसंगों में रहते हैं, अनेक चमत्कारिक अद्भुत प्रसंग हैं, जिनको लेकर कुछ लोगों ने उन्हें पौराणिक महापुरुष माना। किन्तु वर्तमान शताब्दी के अनेक इतिहासज्ञों ने उस पर गंभीर अनुशीलन-अनुचिन्तन किया और सभी इस निर्णय पर पहुँचे कि भगवान पार्श्व एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। सर्व प्रथम डाक्टर हर्मन जेकोबी ने जैनागमों के साथ ही बौद्ध पिटकों के प्रमाणों के प्रकाश में भगवान पार्श्व को एक ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध किया।[1] इनके पश्चात् कोलब्रुक, स्टीवेन्सन, एडवर्ड टामस, डा. बेलवल्कर, दासगुप्ता, डा. राधाकृष्णन्[2],

---

1. The Sacred Books of the East, Vol. XLV, Introduction page 21: "That Parsva was a historical person, is now admitted by all as very probable...".
2. Indian Philosophy: Vol. 1, Page 287.

शार्पेन्टियर, गेरीनोट, मजमुदार, ईलियट और पुसिन प्रभृति अनेक पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों ने भी यह सिद्ध किया कि महावीर के पूर्व एक निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय था, और उस सम्प्रदाय के प्रधान भगवान पार्श्वनाथ थे।

डाक्टर वासम के अभिमतानुसार भगवान महावीर को बौद्ध पिटकों में बुद्ध के प्रतिस्पर्धी के रूप में अंकित किया गया है, एतदर्थ उनकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। भगवान पार्श्व चौवीस तीर्थंकरों में से तेईसवें तीर्थंकर के रूप में प्रख्यात थे।[१]

डाक्टर चार्ल शार्पेन्टियर ने लिखा है "हमें इन दो बातों का भी स्मरण रखना चाहिए कि जैन-धर्म निश्चित रूपेण महावीर से प्राचीन है। उनके प्रख्यात पूर्वगामी पार्श्व प्रायः निश्चित रूपेण एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान रह चुके हैं। एवं परिणाम स्वरूप मूल सिद्धान्तों की मुख्य बातें महावीर से बहुत पहले सूत्र रूप धारण कर चुकी होंगी।[२]

विज्ञों ने जिन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का अस्तित्व महावीर से पूर्व सिद्ध किया है। वे तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

---

१ The Wonder That was India (A. L. Basham, B. A., Ph. D., F. R. A. S.), Reprinted 1956, pp. 287–288.
"As he (Vardhaman Mahavira) is referred to in the Buddhist Scriptures as one of the Buddha's chief opponents, his historicity is beyond doubt......Parswa was remembered as twentythird of the twentyfour **great teachers or Tirthankaras** 'ford-makers' of the Jaina faith".
The Uttaradhyana Sutra, Introduction, page 21 : "We ought also to remember both the Jain religion is certainly older than Mahavira, his reputed predecessor Parsva having almost certainly existed as a real person, and that, consequently, the main points of the original doctrine may have been codified long before Mahavira".

१ जैनागमों[1] में और बौद्ध त्रिपिटकों[2] में अनेक स्थलों पर मंखलीपुत्र गोशालक का वर्णन है। वह एक स्वतंत्र सम्प्रदाय का संस्थापक था। जिसका नाम 'आजीवक' था। बुद्धघोष ने दीघनिकाय पर एक महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है।[3] उसमें वर्णन है कि गोशालक के मन्तव्यानुसार मानव समाज छह अभिजातियों में विभक्त है। उनमें से तृतीय लोहिताभिजाति है। यह निर्ग्रन्थों की एक जाति है जो एक-शाटिक होते थे।[4] एकशाटिक निर्ग्रन्थों से गोशालक का तात्पर्य श्रमण भगवान् महावीर के अनुयायियों से पृथक् किसी अन्य निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से रहा होगा। डा. बाशम[5], डा. हर्नले[6], आचार्य बुद्धघोष[7] ने लोहित अभिजाति का अर्थ एक वस्त्र पहननेवाले निर्ग्रन्थ किया है।[8]

---

१ (क) भगवती-- १५।१
(ख) उपासक दशांग अध्याय ७.
(ग) आवश्यक सूत्र निर्युक्ति, मलयगिरिवृत्ति-पूर्वभाग.
(घ) आवश्यक चूर्णि पूर्वभाग पृष्ठ २८३-२९२.
(ङ) कल्पसूत्र की टीकाएं
(च) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र
(छ) महावीर चरियं, नेमिचन्द्र, गुणचन्द्र आदि
२ (क) मज्झिमनिकाय, १।१९८, । २५०, २।१५,
(ख) संयुत्तनिकाय- १।६८, ४।३९८.
(ग) दीघनिकाय- १।५३
(घ) दिव्यावदान- पृष्ठ १४३.
३ सुमंगल विलासिनी खण्ड १ पृष्ठ १६२.
४ लोहितं, भन्ते, पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, निगण्ठा एकसाटका

२ उत्तराध्ययन के तेवीस वें अध्याय में केशी श्रमण और गौतम का संवाद है। वह संवाद भी इस बात पर प्रकाश डालता है कि महावीर से पूर्व निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में चार याम को माननेवाला एक सम्प्रदाय था, और उस सम्प्रदाय के प्रधान नायक भगवान पार्श्व थे।[1]

३ भगवती, सूत्रकृताङ्ग, और उत्तराध्ययन आदि आगमों में ऐसे अनेक पार्श्वापत्य श्रमणों का वर्णन आया है, जो चार याम को छोड कर महावीर के पंच महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार करते हैं। जिनके सम्बन्ध में विस्तार से हम अन्यत्र निरूपण कर चुके हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि महावीर के पूर्व चार याम को माननेवाला निर्ग्रन्थ संम्प्रदाय था।[2] भगवती (शतक १५) के वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि शान, कलंद, कर्णिकार आदि छह दिशाचर, जो अष्टांग निमित्त के ज्ञाता थे, उन्होंने गोशालक का शिष्यत्व स्वीकार किया। चूर्णिकार के मतानुसार वे दिशाचर पार्श्वनाथ संतानीय थे[3]।

४ बौद्ध साहित्य में महावीर और उनके शिष्यों को चातुर्याम-युक्त लिखा है। दीघनिकाय में एक प्रसंग है। अजातशत्रु ने तथागत बुद्ध के सामने श्रमण भगवान महावीर की भेंट का वर्णन करते हुए कहा है —

'भन्ते ! मैं निगण्ठ नात्तपुत्र के पास भी गया और उनसे भी सांदृष्टिक श्रामण्य-फल के बारे में पूछा। उन्होंने मुझे चातुर्याम संवरवाद बतलाया। उन्होंने कहा – निगण्ठ चार संवरों से संवृत्त रहता है। १ वह जल के व्यवहारका वर्जन करता है, जिससे जल के जीव न मरें। २ वह सभी पापों का वर्जन करता है। ३ सभी पापों के

---

१ उत्तराध्ययन— २३

२ (क) व्याख्याप्रज्ञप्ति— १।९।७६.
(ख) उत्तराध्ययन— २३.
(ग) सूत्रकृताङ्ग २. नालंदीयाध्ययन

३ आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन
प्रथम खण्ड: पृष्ठ २०

वर्जन में धुतपाप होता है और ४ सभी पापों के वर्जन में लगा रहता है। इसलिए वह निर्ग्रन्थ गतात्मा, यतात्मा और स्थितात्मा कहलाता है।[1]

संयुत्त निकाय में इसी तरह निक नामक एक व्यक्ति ज्ञातपुत्र महावीर को चातुर्याम युक्त कहता है। जैन साहित्य से यह पूर्ण सिद्ध है कि भगवान महावीर की परम्परा पञ्चमहाव्रतात्मक रही है।[2] तथापि बौद्ध साहित्य में चार याम युक्त कहा गया है[3]। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि बौद्ध भिक्षु पार्श्वनाथ की परंपरा से परिचित व सम्बद्ध रहे हैं और इसी कारण महावीर के धर्म को भी उन्होंने उसी रूप में देखा है। यह पूर्ण सत्य है कि महावीर के पूर्व निर्ग्रन्थ संप्रदाय में चार यामों का ही माहात्म्य था और इसीसे वह अन्य सम्प्रदाय में विश्रुत रहा होगा। संभव है बुद्ध और उनकी परम्परा के भिक्षुओं को श्रमण भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में जो आन्तरिक परिवर्तन किया, उसका पता न चला हो।

५ जैन आगम साहित्य में पूर्व साहित्य का उल्लेख है। पूर्व संख्या की दृष्टि से चौदह थे। आज वे सभी लुप्त हो चुके हैं। डाक्टर हर्मन जैकोबी का कहना है कि श्रुतांगों के पूर्व अन्य धर्मग्रन्थों का अस्तित्व एक पूर्व संप्रदाय के अस्तित्व का सूचक है।[4]

६ डाक्टर हर्मन जैकोबी ने मज्झिमनिकाय के एक संवाद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि – 'सच्चक का पिता निर्ग्रन्थ था,

---

1 दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त, १-२

2 उत्तराध्ययन– २३।२३.

3 बौद्ध साहित्य में जो चार याम बताये गये हैं वे यथार्थ नहीं हैं, क्योंकि वे शब्दशः जैन परम्परा में नहीं मिलते। यह कहा जा सकता है कि शीत जल आदि का निषेध जैन परम्परा के विरुद्ध नहीं है।

4 The name (पूर्व) itself testifies to the fact that the Purvas were superseded by a new canon, for purva means former, earlier ...

Sacred Books of the East Vol. XXII
Introduction, P. XLIV.

किन्तु सच्चक निर्ग्रन्थ मत को नहीं मानता था। अतः उसने गर्वोक्ति की कि मैंने नातपुत्र महावीर को विवाद में परास्त किया, क्यों कि एक प्रसिद्धवादी जो स्वयं निर्ग्रन्थ नहीं, किन्तु उसका पिता निर्ग्रन्थ है। वह बुद्ध का समकालीन है, यदि निर्ग्रन्थ संप्रदाय का प्रारंभ बुद्ध के समय ही होता तो उसका पिता निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक कैसा होता? इससे स्पष्ट है, कि निर्ग्रन्थ संप्रदाय महावीर और बुद्ध से पूर्व विद्यमान था।

७ एक बार बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे। भिक्षुओं को आमंत्रित कर कहा – "भिक्षुओ! मैं प्रव्रजित हो वैशाली गया। वहाँ अपने तीनसौ शिष्यों के साथ आराड कालाम रहते थे। मैं उनके सन्निकट गया। वे अपने जिन श्रावकों को कहते–त्याग करो, त्याग करो। जिन श्रावक उत्तर में कहते "हम त्याग करते हैं, हम त्याग करते हैं।"

"मैंने आराड कालम से कहा – मैं भी आपका शिष्य बनना चाहता हूँ। उन्होंने कहा –जैसा तुम चाहते हो वैसा करो। मैं शिष्य-रूप में वहाँ पर रहने लगा। जो उन्होंने सिखलाया वह सभी सीखा। वह मेरी प्रखर बुद्धि से प्रभावित हुए। उन्होंने कहा– जो मैं जानता हूँ, वही यह गौतम जानता है। अच्छा हो गौतम हम दोनों मिल कर संघ का संचालन करें। इस प्रकार उन्होंने मेरा सम्मान किया।"

"मुझे अनुभव हुआ, इतना–सा ज्ञान पाप नाश के लिए पर्याप्त नहीं। मुझे और गवेषणा करनी चाहिए।" यह विचार कर मैं राजगृह आया। वहाँ पर अपने सातसौ शिष्यों के परिवार से उद्रक रामपुत्र रहते थे। वे भी अपने जिन श्रावकों को वैसा ही कहते थे। मैं उनका भी शिष्य बना। उनसे भी मैंने बहुत कुछ सीखा। उन्होंने भी मुझे सम्मानित पद दिया। किन्तु मुझे यह अनुभव हुआ कि इतना ज्ञान भी पाप क्षय के लिए पर्याप्त नहीं, मुझे और भी खोज करनी चाहिए, यह सोच कर मैं वहाँ से भी चल पड़ा।"[1]

---

१ Mahavastu: Tr–By. J. J. Jones; Vol. II, pp. 114–117 के आधार से।

प्रस्तुत प्रसंग में जिन-श्रावक शब्द का प्रयोग हुआ है, वह यह सूचित करता है 'आनन्द शाक्य, उसका परिवार और उसके अनुयायी निर्ग्रन्थ धर्मी थे। यह प्रकरण 'महावस्तु' ग्रन्थ का है, जो महायान सम्प्रदाय का प्रामाणिक ग्रन्थ रहा है। महायान के त्रिपिटक संस्कृत भाषा में हैं। पालि त्रिपिटकों में जिस उद्देश्य से निगण्ठ शब्द का प्रयोग हुआ है, उसी अर्थ में यहाँ पर 'जिन-श्रावक' शब्द का प्रयोग किया गया है।[1]

यह स्पष्ट है कि बुद्ध ने जिन-श्रावकों के साथ रह कर बहुत कुछ सीखा। इससे यह सिद्ध होता है कि तथागत से पूर्व निर्ग्रन्थ धर्म था।

४. धम्मपद-अट्ठकथा के अनुसार निर्ग्रन्थ वस्त्रधारी थे, ऐसा भी उल्लेख मिलता है।[2] जो सम्भवतः भगवान पार्श्व की परंपरा के अस्तित्व को बतलाता है।

५. अंगुत्तर निकाय में वर्णन है कि वप्प शाक्य एक निर्ग्रन्थ श्रावक था।[3] उसी सुत्त की अट्ठकथा में यह भी निर्देश है कि वप्प बुद्ध का चाचा (पितृव्य) था। किन्तु जैन परंपरा में इस सम्बन्ध में कहीं उल्लेख नहीं है। ऐतिहासिक तथ्य जो कुछ भी हो, बुद्ध के पितृकुल का निर्ग्रन्थ धर्म से होना भगवान पार्श्व और उनके निर्ग्रन्थ धर्म की व्यापकता का स्पष्ट परिचायक है। बुद्ध के विचारों में परिवर्तन [illegible] आने का यह भी एक निमित्त हो सकता है।

तथागत बुद्ध की साधना पर भगवान पार्श्व का प्रभाव

था। उकड़ू बैठकर तपस्या करता था। मैं नंगा रहता था। लौकिक आचारों का पालन नहीं करता था। हथेली पर भिक्षा ले कर खाता था।

बैठे हुए स्थान पर आ कर दिये हुए अन्न को, अपने लिए तैयार किए हुए अन्न को, और निमंत्रण को भी स्वीकार नहीं करता था[1]। यह समस्त आचार जैन श्रमणों का है। इस आचार में कुछ स्थविर कल्पिक है, और कुछ जिन कल्पिक है। दोनों ही प्रकार के आचारों का उनके जीवन में संमिश्रण है। संभव है प्रारंभ में गौतम बुद्ध पार्श्व की परंपरा में दीक्षित हुए हों।

आठवीं शताब्दी के प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य देवसेन ने लिखा है कि जैन श्रमण पिहिताश्रव ने सरयू के तट पर पलाश नामक ग्राम में श्री पार्श्वनाथ के संघ में उन्हें दीक्षा दी, और उनका नाम बुद्धकीर्ति रखा।[2]

पं. सुखलालजी[3] ने तथा बौद्ध पंडित धर्मानन्द कोसाम्बी[4] ने यह अभिप्राय अभिव्यक्त किया है कि भगवान बुद्ध ने किंचित समय के लिए भी भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा अवश्य ही स्वीकार की थी। वहीं पर उन्होंने केश लुंचन आदि की साधना की, और चातुर्याम धर्म का मर्म पाया।

प्रसिद्ध इतिहासकार डा. राधा कुमुद मुकर्जी लिखते हैं—वास्तविक बात यह ज्ञात होती है—बुद्ध ने पहले आत्मानुभव के लिए उस काल में प्रचलित दोनों साधनाओं का अभ्यास किया। आलार और

---

१ (क) मज्झिम निकाय— महासिंहनाद सुत्त १।१।२
(ख) भगवान बुद्ध, धर्मानन्द कोसाम्बी, पृष्ठ. ६८–६९.

२ सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो वड्ढकित्तिमुणी।।
—दर्शनसार, देवसेनाचार्य पं. नाथुलाल प्रेमी द्वारा सम्पादित, जैन ग्रन्थ, रत्नाकर कार्यालय, बम्बई १९२०, श्लोक ६.

३ चार तीर्थंकर

४ बुद्ध ने पार्श्वनाथ के चारों यामों को पूर्णतया स्वीकार किया था ...... बुद्ध के मत में चार यामों का पालन करना ही सच्ची तपस्या है।....वहाँ के श्रमण सम्प्रदाय में उन्हें शायद निर्ग्रन्थों का चार्तुयाम संवर ही विशेष पसंद आया।
पार्श्वनाथ का चार्तुयाम धर्म, पृष्ठ २८–३१

रूप में, निर्ग्रन्थाचार आचार मार्ग का और नव जैन मार्ग का और बाद में अपने स्वतन्त्र मध्यम मार्ग का विकास किया।"[1]

श्रीमती राइस डेविड्स ने गौतम बुद्ध द्वारा जैन तप-विधि का अभ्यास किये जाने की चर्चा करते हुए लिखा है—"बुद्ध पहले गुरु की खोज में वैशाली पहुँचे, वहाँ आलार और उद्रक से उनकी भेंट हुई, फिर बाद में उन्होंने जैन धर्म की तप-विधि का अभ्यास किया।"[2]

संक्षेप में तात्पर्य यही है कि बुद्ध की साधना पद्धति, भगवान् पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों से प्रभावित थी।

जैन साहित्य से यह भी सिद्ध है कि अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर धर्म के प्रवर्तक नहीं, अपितु सुधारक थे। उनके पूर्व प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में तेईस तीर्थंकर हो चुके हैं किन्तु प्राचीन तीर्थंकरों के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें हैं जो आधुनिक विचारकों के मस्तिष्क में नहीं बैठती, किन्तु भगवान पार्श्व के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं है जो आधुनिक विचारकों की दृष्टि से अतिशयोक्ति पूर्ण हो। जिस प्रकार १००, वर्ष की आयु, तीस वर्ष गृहस्थाश्रम और ७० वर्ष तक संयम, तथा २५० वर्ष तक उनका तीर्थ—इसमें ऐसी कोई भी अनोखी बात नहीं है जो असंभवता एवं ऐतिहासिक दृष्टि से संदेह उत्पन्न करती हो। इसी लिए इतिहासकार उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। जैन साहित्य से ही नहीं, अपितु बौद्ध साहित्य से भी उनकी ऐतिहासिकता सिद्ध होती है। इसी ऐतिहासिकता के आधार पर भी सिद्ध हो जाता है कि भगवान महावीर का परिनिर्वाण ईसा पू. ५२७—५२८ माना गया है। परिनिर्वाण से ३० वर्ष पूर्व ईसा पूर्व ५५७ में महावीर ने सर्वज्ञत्व प्राप्त कर तीर्थ प्रवर्तन किया और महावीर एवं पार्श्वनाथ के तीर्थ में २५० वर्ष का अन्तर है। इसलिए ईसा पू. ८०७ में भगवान पार्श्वनाथ ने केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थ प्रवर्तन किया।

गृहस्थ-जीवन | ४

समवायाङ्ग[1] और कल्पसूत्र[2] से ले कर आज तक के सभी श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थ इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि भगवान् पार्श्व की जन्मस्थली वाराणसी है। प्रागैतिहासिक काल से ही वाराणसी भारत की एक प्रसिद्ध नगरी रही है। उस भूखण्ड का अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है। श्रमण संस्कृति एवं ब्राह्मण संस्कृति के संवर्द्धन, परिपोषण, का श्रेय उसे प्राप्त है। जैन, बौद्ध एवं वैदिक परंपराओं के विकास, अभ्युदय एवं समुत्थान के ऐतिहासिक क्षणों को उसने निहारा है। एक दो नहीं अपितु हजारों–हजार कथाएँ वाराणसी के इतिहास के साथ सम्बद्ध है। आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक चिन्तन के साथ ही भौतिक सुख सुविधाओं का पर्याप्त विकास भी वाराणसी में होता रहा। वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में वाराणसी को पूर्व दिशा का पावन तीर्थ माना गया है[3]। शतपथ ब्राह्मण, उपनिषद और पुराणों में वाराणसी से सम्बन्धित अनेक अनु–श्रुतियाँ सुरक्षित हैं। बौद्ध जातकों में वाराणसी के वस्त्र और चन्दन का उल्लेख मिलता है।[4] उसे कपिलवस्तु और बुद्धगया के समान पवित्र

---

१ समवायाङ्ग २५०।२४

२ इहेव जंबूद्दीवे भारहे वासे वाणारसीए नयरीए

कल्पसूत्र १४९ पृ. २१३

३ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. ४६८

४ देखिए–सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ में–'काशी की प्राचीन शिक्षा पद्धति और पण्डित' लेख

स्पष्ट माना है, भगवान बुद्ध और उनके शिष्यों का वाराणसी से अत्यन्त निकट सम्बन्ध रहा है।[3]

जैन साहित्य में अनेक स्थलों पर वाराणसी की समृद्धि, वैभव और उसके सांस्कृतिक अभ्युदय का वर्णन मिलता है। आगमों में गिनाए गए–साढ़े पच्चीस आर्य देशों एवं सोलह महाजन पदों में काशी का भी उल्लेख प्राप्त होता है[4] और भारत की दस प्रमुख राजधानियों में वाराणसी का भी नाम उल्लिखित है।[5] युआन चुआङ् ने वाराणसी को देश और नगर दोनों माना है। उसने वाराणसी देश का विस्तार 'चार हजार ली' और नगर का विस्तार लम्बाई में 'अठारह ली' और चौड़ाई में 'छह ली' बताया है।[6]

जातक के अनुसार काशी राज्य का विस्तार ३०० योजन था।[7] वाराणसी काशी जनपद की राजधानी थी। यह नगर 'वरुणा' (वरणा)

और असी इन दो नगरियों के बीच स्थित था।[1] इसलिए इसका नाम वाराणसी पडा, यह नैरुक्त नाम है[2]। आधुनिक बनारस गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर गंगा और वरुणा के संगम स्थल पर है।

संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास की इस सुविश्रुत नगरी में भगवान पार्श्व का अवतरण हुआ।

वंश और कुल

समवायांग, और कल्पसूत्र में भगवान पार्श्व के वंश और कुल के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि ये दो तीर्थंकर गौतम गोत्र के थे और शेष बावीस तीर्थंकर काश्यप गोत्र के थे।[3] उत्तरपुराण में भी यही गोत्र बताया गया है।[4] पुष्पदन्तकृत महापुराण में पार्श्व को उग्रवंशाय कहा है।[5] त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[6], देवभद्रसूरि रचित पार्श्वनाथ चरित्र[7] में 'इक्ष्वाकु' वंश लिखा है। अन्य कितने ही ग्रन्थों में उनके वंश का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

---

१ दि एन्शिएन्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया— पृष्ठ ४९९.

२ विविध तीर्थकल्प— पृष्ठ ७२

३ मुणिसुव्वओ य अरिहा, अरिट्ठनेमी य गोयमसगुत्ता।
सेसा तित्थयरा खलु कासवगुत्ता मुणेयव्वा॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा. ३८१. पृष्ठ २३८

४ वाराणस्यामभूद्विश्वसेनः काश्यपगोत्रजः॥

उत्तरपुराण– ७३–७५

५ महापुराणु– ९४।२२।२३

६ त्रिषष्टि— पर्व ९। सर्ग ३। गुज. पृष्ठ ४७०

७ इक्खागुवंससंभूयभूवइभालतिलयभूओ, आससेणो नाम नरवई।

—पासनाहचरियं– प्र. ३, पृष्ठ १३४

माता-पिता

समवायांग,[1] आवश्यकनिर्युक्ति, कल्पसूत्र,[2] त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, चउप्पन्न महापुरिस चरियं, सिरि पासनाह चरियं प्रभृति ग्रन्थों में भगवान पार्श्व के पिता का नाम अश्वसेन (आससेण) और माता का नाम वामादेवी बताया गया है। गुणभद्र कृत उत्तरपुराण में और पुष्पदन्त कृत महापुराण में उनके पिता का नाम विश्वसेन और माता का नाम ब्राह्मी है। वादिराज ने पार्श्वनाथ चरित्र[3] में माता का नाम ब्रह्मदत्ता दिया है। पद्मकीर्ति रचित पासणाह चरिउ[4] में और कविवर रइधू कृत पास चरियं में[5] पार्श्व के पिता का नाम हयसेन दिया है। तिलोय पण्णत्ती[6] में पार्श्व की माता का नाम वर्मिला दिया है।

और असी इन दो नगरियों के बीच स्थित था।[1] इसलिए इसका नाम वाराणसी पड़ा, यह नैरुक्त नाम है[2]। आधुनिक बनारस गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर गंगा और वरुणा के संगम स्थल पर है।

संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास की इस सुविश्रुत नगरी में भगवान पार्श्व का अवतरण हुआ।

वंश और कुल

समवायांग, और कल्पसूत्र में भगवान पार्श्व के वंश और कुल के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि ये दो तीर्थंकर गौतम गोत्र के थे और शेष बावीस तीर्थंकर काश्यप गोत्र के थे।[3] उत्तरपुराण में भी यही गोत्र बताया गया है।[4] पुष्पदन्तकृत महापुराण में पार्श्व को उग्रवंशाय कहा है।[5] त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[6], देवभद्रसूरि रचित पार्श्वनाथ चरित्र[7] में 'इक्ष्वाकु' वंश लिखा है। अन्य कितने ही ग्रन्थों में उनके वंश का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

---

१ दि एन्शिएन्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया— पृष्ठ ४९९.

२ विविध तीर्थकल्प— पृष्ठ ७२

३ मुणिसुव्वओ य अरिहा, अरिट्ठनेमी य गोयमसगुत्ता।
सेसा तित्थयरा खलु कासवगुत्ता मुणेयव्वा॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा. ३८१. पृष्ठ २३८

४ वाराणस्यामभूद्विश्वसेनः काश्यपगोत्रजः॥
उत्तरपुराण– ७३–७५

५ महापुराणु– ९४।२२।२३

६ त्रिषष्टि— पर्व ९। सर्ग ३। गुज. पृष्ठ ४७०

७ इक्खगुवंससंभूयभूवइभालतिलयभूओ, आससेणो नाम नरवई।
—पासनाहचरियं– प्र. ३, पृष्ठ १३४

माता-पिता

समवायाङ्ग,[1] आवश्यकनिर्युक्ति, कल्पसूत्र,[2] त्रिषष्टिशलाका-पुरुष चरित्र, चउप्पन्न महापुरिस चरियं, सिरि पासणाह चरियं प्रभृति ग्रन्थों में भगवान पार्श्व के पिता का नाम अश्वसेन (आससेण) और माता का नाम वामादेवी बताया गया है। गुणचन्द्र कृत उत्तरपुराण में और पुष्पदत्त कृत महापुराण में उनके पिता का नाम विश्वसेन और माता का नाम ब्राह्मी है। वादिराज ने पार्श्वनाथ चरित्र[3] में माता का नाम ब्रह्मदत्ता लिखा है। पद्मकीर्ति रचित पासणाह चरिउ[4] में और कविवर रइधू कृत पास चरियं में 'पार्श्व के पिता का नाम हयसेन दिया है। तिलोय पण्णत्ती[5] में पार्श्व की माता का नाम वर्मिला दिया है।

इस प्रकार ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुशीलन से भगवान पार्श्व के माता-पिता के नाम आदि की अनेक बातें कुछ उलझी हुई-सी प्रतीत

---

१ (क) राया य आससेणे य, सिद्धत्थच्चिय खत्तिए

—समवायाङ्ग १५७, कमल पृ. १४४

(ख) वप्पा सिवा य वामा, तिसलादेवी य जिणमाया

—देखें वही

(ग) आवश्यक निर्युक्ति— गा. ३८८

(घ) आससेणस्स रन्नो वम्माए देवीए

—कल्पसूत्र– १४९। पृष्ठ २१३

(च) त्रिषष्टि. पर्व ९– सर्ग ३

(छ) राया णामण आससेणो त्ति। ...... वम्माहिहाणा सयलंतेउरपहाणा अग्गमहिसी—

चउप्पन्न– पृष्ठ २५७

(ज) आससेणो नाम नरवई .... वम्माए देवीए कुच्छिसि समुप्पन्नो पुत्तत्तणेणं।

देवभद्र रचित पासणाह– प्र. ३ पृष्ठ १३४–१३५.

२ वाराणस्यामभूद्विश्वसेनः काश्यपगोत्रजः ब्राह्मस्य देवी सम्प्राप्तव-सुधारादिपूजना।

—उत्तरपुराण ७३।७५। पृष्ठ ४३४.

३ पासणाह चरिउ— ९।९५।५

४ हयसेणु वसइ तहिँ णरवरिंदु

—पासणाह चरिउ– ८।१।५९.

५ हयसेणवम्मिलाहिं जादो हि वाणारसीए पासजिणो।

—तिलोयपण्णत्ती– ४।५४८.

होती हैं। हो सकता है कुछ परम्परा भेद एवं अनुश्रुति भेद से ऐसा हुआ हो। प्राचीन काल में राजाओं के नाम अनेक होते थे। कुछ नाम उनकी वंश परम्परा से एक ही प्रकार के चले आते थे और कुछ उनके माता-पिता द्वारा रखे गये होते थे। उनके विशिष्ट गुणों के कारण भी विभिन्न नाम विश्रुत हो जाते। जैसे प्राचीन काल में 'अश्वसेन' नाम के कई राजा हो गए हैं। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के मतानुसार पूर्व भारत के क्षत्रिय जो याज्ञिक हिंसा विरोधी एवं आत्म-विद्या के उपदेष्टा थे, उनमें एक वंश था, जिस में 'अश्वसेन' नामक कई राजा हो गए हैं[१]। इसी प्रकार 'जनक' नाम के भी अनेक राजा हो गए हैं। अतः हमें नामों की विविधता की भ्राँति में नहीं जा कर सही तथ्य को पकडना है और वह यह हैं कि भगवान पार्श्व के पिता 'अश्वसेन' आत्मविद्या के ज्ञाता एवं अहिंसा प्रेमी राजा थे। उनके वंश के ये गुण आगे पार्श्वकुमार में पल्लवित होते दिखाई देते हैं।

जन्मतिथि

कल्पसूत्र[२] चउप्पन्न महापुरिस चरियं[३], त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[४], सिरिपासणाह चरियं,[५] प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार

---

१ भारतीय इतिहास की रूपरेखा. भाग २.

२ तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोस बहुले तस्स णं पोसबहुलस्स दसमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावररत्तकाल-समयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अरोगा अरोगं पयाया

कल्पसूत्र १५१ पृ. २१७

३ पोसमासस्स किण्हदसमीए विसाहाणक्खत्तम्मि य पसत्थवेला-मुहुत्तजोए दिणयरं व जलहरावली सयल (लोय) लोयणाणंदजणयं तणयं पसूय त्ति

चउप्पन्न, पृ. २५८

४ त्रिषष्टि. पर्व ९। स. ३, पृ. ४७०

५ पोसकसिणदसमीमज्झरत्तसमए विसाहानक्खत्तं संकन्ते ससहरे

पासनाह चरियं ३।१४०

पूसस्स बहुलएक्कारसिए रिक्खे विसाहाए

—तिलोयपण्णत्ती- ४।५४८, पृ. २१०.

नवये मासि सम्पूर्णे पौषे मास्यसिते सुतः ।
पक्षे योगेऽनिले प्रादुरासीदेकादशीतिथौ ॥

—उत्तरपुराण ७३।९०। पृ. ४३५

भगवान पार्श्व का जन्म पौष कृष्णा दशमी की मध्यरात्रि को हुआ। तिलोय पण्णत्ती, उत्तरपुराण प्रभृति दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार पौष कृष्णा एकादशी को हुआ। इस प्रकार श्वेताम्बर और दिगम्बर में तिथि भेद है, किन्तु दोनों ही परम्परा उनका जन्म नक्षत्र विशाखा मानती है और तिथि का अन्तर भी कोई विशेष दूरी का नहीं है।

तिलोयपण्णत्ती के अनुसार भगवान् नेमिनाथ के उत्पन्न होने के पश्चात् चौरासी हजार छह सौ पचास वर्ष व्यतीत होने पर भगवान पार्श्व का जन्म हुआ।[1] उत्तर पुराण के अनुसार भगवान् नेमिनाथ के पश्चात् तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर भगवान् पार्श्व उत्पन्न हुए।[2]

नामकरण

आवश्यक निर्युक्ति,[3] त्रिषष्टि शलाका पुरिस चरियं,[4] सिरिपासनाह चरिय[5] आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार जब भगवान पार्श्व माता के गर्भ में आये, तब माता ने एक दिन अँधियारी रात में पास में से सर्प जाता हुआ देखा। जब भगवान् पार्श्व का जन्म हुआ तब माता ने उस दिन की घटित घटना को स्मरण कर पार्श्व यह नाम दिया। उत्तरपुराण,[6] पासणाह चरिउं[7] आदि ग्रन्थों में इन्द्र ने बालक का

---

१ पण्णासाधियछस्सयचुलसी दिसहस्स–वस्सपरिवत्ते।
णेमिजिणुप्पत्तीदो उप्पत्ती पासणाहस्स ॥

—तिलोयपण्णत्ती– ४।५७६ पृष्ठ २१४.

२ नेम्यन्तरे खपञ्चस्वराग्यष्टमितवत्सरे।
प्रान्ते हन्ता कृतान्तस्य तदभ्यन्तरजीवितः॥

—उत्तरपुराण. ७३।९३; पृष्ठ ४३५

३ आवश्यक निर्युक्ति– १०९१

४ त्रिषष्टि. ९।३।४७१

५ पासोवसप्पिणं सुमिणयम्मि सप्पं पलोइत्था

—सिरिपासनाह चरियं– गा. ११ प्र. ३, पृष्ठ १४०

६ जन्माभिषेक कल्याण पूजानिर्वृत्यनन्तरम् पार्श्वाभिधानं कृत्वास्य पितृभ्यां तं समर्पयन्

—उत्तरपुराण ७३।९२, पृष्ठ ४३५

७ अट्ठंगु करिवि बालहो पणाउ
सइँ सुरवइ पासु थवेवि णाउ

—पासणाह चरिउ, पद्मकीर्ति– ८।२३।७०

नाम पार्श्व रखा ऐसा उल्लेख है।

बाल्यकाल की विशेषताएँ

भगवान् पार्श्व का लालन-पालन एक राजकीय वैभव पूर्ण वातावरण में संपन्न हुआ। उनका तन सुगठित, वलिष्ठ और कांतिमान था, उनका मुखमण्डल सूर्य की तरह तेजस्वी और चन्द्र की तरह सौम्य था। उनका हृदय नवनीत की तरह कोमल था और भावनाएं अनंत आकाश की तरह विराट एवं उदात्त थीं। वे एक उदार प्रकृति के धनी थे। राजकुमार होने पर भी उनमें राजकीय वैभव का अहंकार नहीं था। सभी के साथ वे बडे ही स्नेह और सद्भावना के साथ मिलते थे। उनकी उदार मनोवृत्ति एवं समत्व की भावना बचपन में ही उनके महापुरुषत्व को व्यक्त कर रही थी।

शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह बालक पार्श्व बढ रहे थे। उनके सद्गुणों की चारु-चन्द्रिका चारों ओर छिटक रही थी। उनकी धीरता, वीरता, गंभीरता, एवं ज्ञान गरिमा को देख कर सभी चकित थे, उनके गहन अनुभवों को सुन कर सभी अवाक् थे। सचमुच अपनी कुशाग्र बौद्धिक चेतना प्रतापपूर्ण प्रतिभा एवं दूरदर्शिता पूर्ण अनुभूतियों से पार्श्व ने परिजन-पौरजन सभी के मन को मोह लिया था।

नाग का उद्धार

राजकुमार पार्श्व के बचपन में जो एक उल्लेखनीय विशेषता थी, वह थी विचार चेतना। वह प्रत्येक वस्तुस्थिति का बडी गंभीरता के साथ निरीक्षण-परीक्षण करते, उसकी सूक्ष्म-समीक्षा करते और फिर अदम्य निर्भीकता एवं साहस के साथ उसका उदघाटन भी करते। यही विशिष्टता उनके यौवन काल में धर्मक्रांति के रूप में व्यक्त हुई, जिसका निमित्त बनी नाग उद्धार की घटना।

एक दिन राजकुमार पार्श्व राजप्रासाद के गवाक्ष में बैठे हुए नगर को निहार रहे थे कि अर्चना की सामग्री लिए हुए जन समूह को

नगर के बाहर जाते हुए देखा।[1] कुतूहलवश कुमार ने पूछा—"क्या आज कोई महोत्सव है, या अन्य कोई विशेष प्रसंग है जिसके कारण यह झुंड के झुंड जा रहे हैं"।[2]

अनुचर ने बताया—कुमारवर! नगर के बाहर एक कमठ नामक महान् तपस्वी आया हुआ है जो पंचाग्नि तप तप रहा है, वह बहुत उग्र तपस्वी है। उसकी पूजा और अर्चना करने के लिए यह लोग जा रहे हैं।[3]

कुतूहलवश राजकुमार पार्श्व भी कमठ को देखने के लिए चले, यह वही कमठ था जिसका सम्बन्ध पार्श्वनाथ के जीव के साथ पिछले नौ भवों से चला आ रहा था। उसके कठिन तप के कारण जनता उसके प्रति आकर्षित हो चुकी थी। राजकुमार पार्श्व ने देखा—तपस्वी पंचाग्नि तप रहा है।[4] चारों दिशाओं में अग्नि जल रही है और मस्तक पर

---

१ (क) अण्णया य पासायस्स उवरिभूमिभाए णिसण्णेण पासयंदेण वायायणंतरालेण पलोइयं णयरीए सम्मुहं जाव दिट्ठो सयलो वि पुरीजणवओ पवर कुसुम—वलिपडलयविहत्थो बाहिं णिग्गच्छन्तो।

—चउप्पन्न. २६१

(ख) त्रिषष्टि— ९।३।४७९

(ग) पासणाह चरियं— देवभद्र. प्र. ३. पृष्ठ १६५—१६६.

२ तओ पुच्छियं भयवया जहा किं पुण कारणं एस जणवओ पत्थिओ? किं कोई छणो? किं वा ओनाइयं? ति

—चउप्पन्न. २६१

(ख) त्रिषष्टि— ९।३।४७९.

(ग) सिरिपासणाह चरियं— ३।१६६.

३ ण एवंविहं एत्थ किं पि कारणं, किंतु कोई महातवस्सी कढो णाम किल एत्थ महापुरीए बाहिं समागओ तस्स वंदणत्थं पत्थिओ इमो जणवओ त्ति।

—चउप्पन्न. २१६

४ तओ तमायणिऊण जाणियकोऊहलविसेसो भयवं पि पत्थिओ। गओ जत्थ सो कढो। दिट्ठो य पंचग्गितवं तप्पमाणो।

—चउप्पन्न. २१६

(ख) मिच्छत्तमोहमोहियं बोहेमि त्ति कारुन्नपवन्नमानसो पउरनारीनयणुप्पलपूइज्जमाणो पविट्ठो जयगुरू

—सिरिपास— ३।१६६

सूर्य तप रहा है। अग्निकुंड में बडे बडे लक्कड जल रहे हैं। उसमें एक सर्प भी जल रहा है।[1] सर्प को जलते देख कर पार्श्वकुमार का हृदय करुणासे द्रवित हो गया। तापस के इस विवेक शून्य क्रिया-काण्ड को देख कर पार्श्व ने कहा—"तपस्विन्! यह कैसा अज्ञान तप है! पंचेन्द्रिय जीवों को भस्म कर तुम अपना कल्याण चाहते हो? दया के विना धर्म कहां है?[२]"

तपस्वी– "राजकुमार! तुम धर्म के रहस्य को नहीं समझते। राजपुत्र तो हाथी घोडों पर क्रीडा करना और युद्ध करना जानते हैं। धर्म के रहस्य को तो हमारे जैसे तपस्वी समझ सकते हैं।[3] तुम यहाँ से चले जाओ, अभी तो दूध–मुँहे बच्चे हो। क्या तुम मेरी धूनी में किसी जीव को जलता हुआ बता सकते हो?"

राजकुमार– "तपस्वी इस बडे लक्कड में सर्प जल रहा है।"

तपस्वी–"कुमार! तुम्हारा कथन मिथ्या है"। उसी समय राज–कुमार पार्श्व ने अपने अनुचर को आदेश दिया। अनुचर ने अग्निकुंड

---

१ तओ तिण्णाणसंपण्णत्तणओ मुणियं भयवया एक्कम्मि अग्गिकुंडे पक्खित्ताए महल्लरुक्खखोडीए डज्झमाणं णायकुलं

—चउप्पन्न– २६१

२ (क) धम्मस्स दयामूलं सा पुण पज्जालणे कहं सिहिणो ?
तंमि जओ जीवाणं दिट्ठो सव्वाणवि विणासो।

—सिरिपास. ३।१६६

(ख) तं च तहाविहं कलिऊण अच्चन्तकारुण्णोववण्णहियएण भणियं भयवया. अहो कट्ठमण्णाणं ति, जेण सुव्वउ जह
लहइ पायवो णेय अप्पयं मूलपसरवइरित्तो।
तह धम्मो धम्मत्थीण होइ ण विणा दयाए फुडं ।।२०२।।
जह बीएण विणा होइ णेय सयला वि सासनिप्फत्ती।
तह धम्मत्थीण ण होइ णूण धम्मो दयाए विणा ।।२०३।।

—चउप्पन्न. २६२

३ कढेण जंपियं जहा– पत्थिवसुयाणं रह– तुरय– कुंजराईण परिस्समो धम्मो, धम्मं पुण जइणो वियाणन्ति।

—चउप्पन्न. २६२

(ख) सिरिपासणाह, ३।१६७

में से लक्कड को बाहर निकाला और सावधानी से चीरा तो उसमें से तिल मिलाता हुआ सर्प बाहर निकला। वह मरणासन्न स्थिति में था। पार्श्वकुमार ने अपने अनुचर से उसे नवकार मंत्र सुनवाया और प्रत्याख्यान दिलवाये।[1] वह समाधिपूर्वक मर कर धरणेन्द्र (नागकुमार जाति के देवों का इन्द्र) देव हुआ।[2] लोगों ने कमठ की विवेकशून्य तपस्या की भर्त्सना की, वे उसे धिक्कारने लगे। तापस पार्श्वकुमार पर बहुत रुष्ट हुआ। पर करता भी क्या? आखिर अज्ञान तप के कारण कमठ तापस वहाँ से मर कर मेघमाली नामक देव बना।[3]

---

१ (क) तावय भणिओ भयवया एक्को णिययपुरिसो जहा, रे रे, एयं खोडिं दर दड्ढं कुहाडेण फोडेसु त्ति।
तओ 'जमाणवेमि' त्ति भणमाणेण दोफालीकया खोडी। विणिग्गयं महल्लं णागकुलं। तत्थ पुलइओ ईसीसि डज्झमाणो एक्को महाणागो। तओ भयवया णियय पुरिसवयणेण दवाविओ से पंचणमोक्कारं पच्चक्खाणं च।

—चउप्पन्न. २६२

(ख) तओ परमकारुन्नायन्नमाणसेण सव्वसत्तसंताणकारिणा भगवया दाविओ एयस्स पंचनमोक्कारो।

—सिरिपास. ३।१६७

(ग) त्रिषष्टि ९।३ में भी दूसरे से नवकार मंत्र सुनाया।

२ (क) ताव य कयणमोक्कार-पच्चक्खाणो कालगओ समाणो समुप्पण्णो णागलोयम्मि सयलणागलोयाहिवत्तणेणं ति।

—चउप्पन्न—२६२

(ख) त्रिषष्टि — ९।३।४८०. गुज.

(ग) तप्परिभावणपभावेण य मरिऊण उववन्नो उरगराओ धरणोत्ति नामं भवणवासिदेवेसु।

— सिरिपासणाह चरिउ — ३।१६७

३ (क) कालगओ समाणो समुप्पण्णो मेहकुमारमज्झम्मि भवणवासित्तणेणं मेहमाली णाम।

—चउप्पन्न. २६२

(ख) एवं च कढो अच्चंतविलियमावन्नो तप्पच्चएणेव दुक्खेणं विहेऊण कठ्ठयरमेव अन्नाणतवं कालं-काऊण उववन्नो भवणवईसु मेहकुमार-निकायमज्झंमि मेहमाली नाम देवोत्ति—

—सिरिपासणाह चरिउ प्र. ३। पृ. १६८

भावी तीर्थंकर द्वारा गृहस्थाश्रम में इस प्रकार धर्मक्रांति का यह एक अद्वितीय उदाहरण है।

वर्णन मे वैविध्य

पासणाह चरिउ :– पद्मकीर्ति ने पासणाह चरिउ में प्रस्तुत प्रसंग का वर्णन अन्य प्रकार से किया है और वह इस प्रकार है–भगवान पार्श्व युद्ध के लिए कुशस्थल पहुँचे। वहाँ पर यवनराज के साथ उनका भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में यवनराज को परास्त कर पार्श्व वहीं पर आनन्द के साथ रहने लगे। उन्होंने प्रभावती के साथ विवाह करने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।[1]

इधर वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित लोगों की अर्चना की वस्तु ले कर जाते हुए देखा। पार्श्व कुमार ने पूछा–"ये कहाँ पर जा रहे हैं?" तब राजा रविकीर्ति ने बताया कि यहाँ से एक योजन दूर एक भयानक वन है। उसमें कंद-मूल फलाहारी तपस्वी गण निवास करते हैं। उन्हें ये लोग वन्दन करने के लिए जा रहे हैं। कुशस्थल के निवासी उनके परम भक्त हैं। वे अन्य किसी को भी नहीं मानते[2]।

---

१ गउ वियसिय–वयणु खणेण तित्थु
अच्छइ धवलहरि कुमारु जित्थु
करि लेवि णरिंदे वुत्तु देउ।
महु कण्ण परिणि करि वयणु एउ
पडिवण्णु कुमारे एउ होउ
परितुट्ठु असेसु वि सयल–लोउ ॥
–पासणाह चरिउ ९।१३।९।११०.

२ इय–णयरहो उत्तर– पच्छिमेण
वणु अत्थि भयाणउ जोयणेण
तहि तावस णिवसहि तविय- देह।
तिण - कंद - फलासण विगय - मोह
तहु वंदण– हत्तिए जाइ लोउ
बलि - धूव - गंध परियण समेउ ॥
तावस – तवगिहि भत्तउ एहु कुसत्थल – लोउ
दिवि – दिवि जाइ असेसु वि अवगुण गण्णइ देउ ॥
–पासणाह १३।९।११०.

पार्श्वकुमार उस आश्रम में जाते हैं और वहाँ पर देखते हैं कि कुछ तपस्वी पंचाग्नि तप तप रहे हैं, कुछ धूम्रपान कर रहे हैं, कुछ औंधे लटक रहे हैं। कुछ ऐसे कृश हो चुके हैं जिनकी हड्डियाँ और चमडी ही शेष है[1]।

उस समय कमठ नामक तपस्वी जंगल से लकडियों की भारी ले कर आता है। वह एक बडी लकडी को अग्नि में डालना चाहता है, उसी समय पार्श्व कुमार ने कहा—"अरे तपस्वी! इसे अग्नि में न डालो, इस में भयंकर विषधर है। यह सुनते ही कमठ रुष्ट हो गया, पार्श्व-कुमार की बात को मिथ्या सिद्ध करने के लिए उसने क्रोध से उस लकडे को चीरा, किन्तु उस में विशाल काय सर्प को देख कर वह लज्जित हो गया। सभी ने उसका उपहास किया।[2] लकडी को चीरने के कारण सर्प का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। भगवान ने उसके कान में नम-

---

१ णिमिसद्धें भीसण – वणे पइट्ठ,
तावस तवंत तउ तेहिं दिट्ठ।
पंचग्गि मज्झि तउ के वि तवंति,
के वि धुमु पवणु तावस पियंति॥
के वि चक्कल – णेसण – ऍक्क – पाय,
चम्मट्ठि सेस के वि तित्थु जाएय।
जड – मउड – विहूसिय के वि तित्थु,
इहु – मणुव – जम्मु पल्लेहिं णिहत्थु
—पासणाह चरिउ १०।१३।१११

२] एत्थंतरि तावसु कमढु णाउ,
आयउ भमेवि वणु मढिय–ताउ।
सिरि कट्ठहो केरउ लयड भारु
करि तासु कुढारउ णिसिय – धारु॥
पंचग्गिहि घल्लइ कट्ठु जाम
जगणाहें तावसु वुत्तु ताम।
मं घल्लि कट्ठु इहि मज्झि सप्पु
तउ गरुउ जाउ भीसण्णु सदप्पु॥
तहे सहहे मज्झि वेहीवसेण
तं कट्ठु च्छिण्णु पसु– तावसेण।

स्कार मंत्र सुनाया।[1] नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से वह नाग वहाँ से आयु पूर्ण कर नागराजाओं के बीच तीन पल्य की आयुवाला बन्दी वर देव के रूप में उत्पन्न हुआ[2] और कमठ का जीव असुरेन्द्र हुआ।

उत्तर पुराण में गुणभद्राचार्य ने प्रस्तुत प्रसंग का चित्रण इस प्रकार से किया है–

पार्श्वकुमार के नाना महीपाल थे, उनका पत्नी पर अत्यधिक अनुराग था। असमय में उसका निधन हो जाने से महाराजा को हार्दिक आघात लगा। उस वियोग से व्यथित हो कर राज्य का त्याग कर तापसी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।[3] आश्रम में पंचाग्नि के बीच बैठ कर तप करने लगा। एक दिन कुमार पार्श्व उस आश्रम में पहुँचे किन्तु उस तपस्वी को विना नमस्कार किये ही वह एक ओर खडे हो गये।[4] कुमार

---

१ आसीविसु तित्थु भुअंगु छिण्णु।
सामंतहिं द्धि– द्धि– कारु दिण्णु॥

–पासणाह ११।१३।१११

परमेसरेण पेक्खिवि भुअंगु
अइ - गरुव - पहारहिं चरिअंगु।
तहु कण्ण - जाउ दिज्जइ खणेण
पंचत्तु पत्तु सो थिर मणेण॥

– वही १२।१३।११२

२ पायालि ऽहिंदहँ मज्झि जाउ
वंदीवरु देउ ति पल्ल– आउ।

– वही १२।१३।११२

३ क्रीडार्थ स्वबलेनामा निर्याथाद्वहिः पुरम्।
आश्रमादि वने मातुर्महीपालपुराधिपम्॥
पितरं तं महीपालनामानममरार्चिताः
महादेवीवियोगेन दुःखात्तापदीक्षितम्॥

उत्तरपुराण– ७३।९६-९७, पृ. ४३५

४ तपः कुर्वन्तमालोक्य पञ्चपावकमध्यगम्।
तत्समीपे कुमारोऽस्थादनत्वैनमनादरः॥

वही ७३।९८

पार्श्व के इस व्यवहार से तपस्वी को मन-ही-मन में क्रोध आया।[१] किन्तु बिना बोले ही वह बुझती हुई अग्नि में डालने के लिए वहाँ पर पडी हुई लकडी को काटने के लिए ज्यों ही अपना मजबूत फरसा उठाया[२] कि अवधिज्ञानी पार्श्व ने कहा– "इसे मत काटो, इसमें जीव है।"[३] इन्कार करने पर भी उस तापस ने काष्ट काट ही डाला, उस काष्ट के भीतर रहने वाले सर्प और सर्पिणी के दो-दो टुकडे हो गये।[४] सर्प और सर्पिणी कुमार के उपदेश से शान्ति को प्राप्त हुए तथा मर कर धरणेन्द्र पद्मावती हुए।[५] और वह तपस्वी अभिमान से मर कर शम्बर नामक ज्योतिषी देव बना।[६]

समीक्षा

कितने ही श्वेताम्बर अर्वाचीन ग्रन्थों में भी लक्कड चीरने पर नाग-नागीन निकलने का उल्लेख मिलता है और जब भगवान पार्श्व ने उनको नवकार मंत्र सुनाया तो वे वहाँ से आयु पूर्ण कर धरणेन्द्र और

---

१ वही ७३।९९–१००.

२ वही ७३।१०१.

३ प्राणीति वार्यमाणोऽपि कुमारेणावधित्विषा।
अन्वतिष्ठदयं कर्म तस्याभ्यन्तरवर्तिनौ॥

—वही ७३।१०२.

४ नागी नागश्च तच्छेदाद् द्विधा खण्डमुपागतौ।
तन्निरीक्ष्य सुभौमाख्यकुमारः समभाषत॥

—वही ७३।१०३। पृ. ४३६.

५ नागी नागश्च सम्प्राप्तशमभावौ कुमारतः
बभूवतुहीन्द्रश्च तत्पत्नी च पृथुश्रियौ,
ततस्त्रिंशत्समामानकुमार समये गते॥

—वही ७३।११८–११९ पृ. ४३६·४३७

६ पराभवति मामेवमिति तस्मिन् प्रकोपवान्।
सशल्यो मृनिमासाद्य शम्बरो ज्योतिषामरः॥

–वही ७३।११७. पृ. ४३६.

पद्मावती हुए, किन्तु चउप्पन्न महापुरिस चरियं[1], सिरिपासणाह चरियं[2], त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र[3], पद्मकीर्ति रचित पार्श्वनाथ चरित्र[4], सभी में नाग का उल्लेख है, नागिन का नहीं। सर्प युगल की बात उत्तर पुराण[5] आदि दिगम्बर ग्रन्थों में मिलती है। संभव है उन्हीं का अनुसरण कुछ अर्वाचीन श्वेताम्बर लेखकों ने भी किया हो।[6]

कितने ही लेखकों ने यह भी लिखा है कि नागिन मर कर धरणेन्द्र की स्त्री पद्मावती देवी बनती है।[7] किन्तु स्थानाङ्ग[8], भगवती[9] और ज्ञातासूत्र[10] में धरणेन्द्र नागराज की १ आला, २ शक्रा, ३ सतेरा, ४ सौदामिनी, ५ इन्द्रा, ६ घनविद्युता, ये छह अग्रमहिषियाँ बताई गई हैं। उन में पद्मावती का कहीं भी नाम नहीं है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इन्द्रों के नामों की तरह अग्र-

---

१ तत्थ पुलइओ ईसीसि डज्झमाणो एक्को महाणागो

चउप्पन्न २६२.

२ नीहरिओ य तत्तो ज्झामियसरीरो धूमावली वाउलियनयणो थोवावसेस जीवियव्वो भुयंगमो

—सिरिपासणाह चरियं प्र. ३, पृ. १६७

३ त्रिषष्टि. ९।३। पृ. ४८०. (गुजराती संस्करण)

४ पासणाह चरिउ. ११।१३।१११.

५ उत्तर पुराण—७३।१०३, पृष्ठ ४३६.

६ कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका—लक्ष्मीवल्लभ.

७ उत्तर पुराण—७३।११८-११९. पृष्ठ ४३६-४३७.

८ धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमारन्नो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तं जहा— आला, सक्का, सतेरा, सोयामणा, इंदा घणविज्जुया।

—स्थानाङ्ग सूत्र ३५, घासीलालजी. भा. ४. पृष्ठ ३७१.

९ धरणस्स णं भंते! नागकुमारिंदस्स नागकुमारन्नो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

अज्जो! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—१ इला, २ सुक्का, ३ सतारा, ४ सोदामिणी, ५ इन्दा, ६. घणविज्जुया।

—भगवती शतक १०, उद्दे. ५, खण्ड ३, पृष्ठ २०१.

१० ज्ञातासूत्र द्वितीय श्रुतस्कंध; तृतीय वर्ग पृष्ठ ६०६. प्रकाशक—तिलोक रत्न स्था. परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी.

महिषियों के नाम भी शाश्वत माने गये हैं, उनमें परिवर्तन नहीं होता। ज्ञातासूत्र के अनुसार वर्तमान में जो धरणेन्द्र की अग्रमहिषियाँ हैं, वे भगवान पार्श्व के शासन में बनी हैं। अग्रमहिषियों की आयु स्थिति अर्ध पल्योपम से अधिक बतलाई गई हैं।[१] इससे यह स्पष्ट है कि धरणेन्द्र की जो पूर्व अग्रमहिषियाँ थीं, वे सतरहवें तीर्थंकर कुंथु के समय बनी होंगी, अतः वे भगवान पार्श्व के गृहस्थाश्रम तक जीवित थीं।[२]

आचार्य हेमचन्द्र,[३] और भावदेव सूरि[४] ने भगवान पार्श्व के शासन देव का नाम पार्श्वयक्ष दिया है, तथा शासन देवी का नाम पद्मावती यक्षिणी। कहीं-कहीं ग्रन्थों में धरणेन्द्र और पार्श्व ये दोनों एकार्थक रूप में व्यवहृत हुए हैं।[५] लाइफ एण्ड स्टोरीज् ऑफ पार्श्वनाथ,[६] तथा हार्ट ऑफ जैनिज्म[७] में भी धरणेन्द्र और पद्मावती को क्रमशः शासन देव और देवी माना गया है। वादिराजसूरि के पार्श्वनाथ चरित्र[८] में तथा बृहद्पद्मावती स्तोत्र[९] में भी यही उल्लेख है। हमारी दृष्टि से भ्राँतिवश ही लेखकों में ऐसा विपर्यय हो गया है।

---

१ णवरं धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ सातिरेगअद्धपलिओवमठिई,
—वही २।३। पृ. ६०६

२ समर्थ- समाधान- भाग १ ला. पृष्ठ ६५.

३ (क) त्रिषष्टि- ९।३। पृष्ठ ४८६-४८७ गुजराती.
(ख) अभिधान चिन्तामणि- ४३.

४ पार्श्वचरित- सर्ग ७, श्लोक ८२७.

५ श्री पार्श्वचरित- सर्ग ६, श्लोक १९०-१९४.

६ लाइफ एण्ड स्टोरीज् ऑफ पार्श्वनाथ- फूटनोट. पृ. ११८-१६७.

७ हार्ट ऑफ जैनिज्म- पृष्ठ ३१३.

८ पद्मावती जिनमतस्थिति मुन्नयंती, किं नैव तत्सदसि शासन देवतासीत्।
तस्याः पतिस्तु गुणसंग्रहदक्षचेता, यक्षो बभूव जिनशासनरक्षणज्ञः
—श्री पार्श्वनाथ चरितम्- १२।४२, पृष्ठ १९३.

९ पातालाधिपति प्रिया प्रणयिनी चिन्तामणि प्राणिनां
श्रीमत्पार्श्वजिनेश शासनसुरी पद्मावती देवता।
बृहद् पद्मावती स्तोत्र २२.
(प्रका:—माणिकचंद दिगंवर जैन, ग्रंथमाला समिति, हीराबाग, बम्बई.)

पद्मावती को यक्षिणी लिखा गया है और यक्ष यह वाणव्यन्तर देवों का एक प्रकार है,[1] जब कि धरणेन्द्र भवनपति के इन्द्र हैं।[2] अतः पद्मावती यक्षिणी उनकी देवी कैसे हो सकती है ? पद्मावती को धरणेन्द्र की देवी मानना आगम–सम्मत नहीं है।

दूसरी बात यह है कि जलते हुए साँप को निहार कर चउप्पन्न महापुरिस चरियं एवं त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र के अनुसार भगवान पार्श्व दूसरे अनुचर से उनको नवकार मंत्र सुनवाते हैं, किन्तु कितने ही ग्रंथकारों ने भगवान के मुखारविन्द से ही नवकार मंत्र सुनवाने की बात लिखी है। हमारी दृष्टि से आचार्य शीलाङ्क और आचार्य हेमचन्द्र का कथन अधिक तर्कसंगत व आगमयुक्त है। चूंकि तीर्थंकर अपने छद्मस्थ काल में धर्मोपदेश नहीं करते–ऐसी मान्यता रही है, और उक्त कथन इस मान्यता को पुष्ट करता है।

विवाह

सिरिपासणाह चरियं, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, पासणाह चरिउ आदि में वर्णन है कि एक समय महाराजा अश्वसेन राजसभा में बैठे हुए विचार चर्चा कर रहे थे। उस समय एक दूत आया। उस दूत ने बताया कि मैं कुशस्थल से आ रहा हूँ। वहाँ के सम्राट् नरवर्मा ने आर्हती दीक्षा ग्रहण की है।[3] और उनके पुत्र राजा प्रसेनजित् इस समय वहाँ का राज्य संचालन कर रहे हैं। उनके एक पुत्री हैं जिसका नाम प्रभावती है।[4] वह अत्यन्त रूपवती

---

१ स्थानाङ्ग. समवायाङ्ग पृष्ठ ४५५.

२ स्थानाङ्ग. समवायाङ्ग. पृष्ठ ४८१.

३ (क) कुसत्थलं नाम नगरं ! .... नरधम्मो नाम नराहिवो।
जत्थ सुए संकामिय रज्जभरो भरहभूमिनाहोव्व।
सुगुरुकरदिन्नदिक्खो, सयणाइलोगनिरवेक्खो ॥२॥
—सिरिपासणाह चरिउ. ३।१५४

(ख) त्रिषष्टि.

(ग) पासणाह चरिउ ९।७।७४

४ पभावई नाम वरधूया–
सिरिपास. ३।१५५

है। एक समय उसने किसी के द्वारा आप के पुत्र पार्श्वकुमार की प्रशंसा सुनी और वह उन पर अनुरक्त हो गई। प्रतिपल–प्रतिक्षण वह पार्श्व–कुमार के ध्यान में ही दत्त–चित्त रहने लगी।[1] इधर कलिंग देश का अधिनायक 'यवन' नामक राजा को जब यह ज्ञात हुआ कि प्रभावती का आकर्षण पार्श्वकुमार की ओर है तो उसने कुशस्थल पर चढाई कर दी। नगर को चारों ओर से घेर कर उसने प्रसेनजित राजा को यह सन्देश पहुँचाया कि मेरे रहते प्रभावती का पाणिग्रहण पार्श्वकुमार के साथ नहीं हो सकता, तुम्हारे में यदि शक्ति है तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। महाराजा असंमजस्य में पड गये, बिना प्रभावती की इच्छा के पाणिग्रहण कैसा कराया जा सकता है ? अतः महाराज ने मुझे आपके पास भेजा है कि अपने स्वजन की शत्रु से रक्षा करो।[2]

ज्यों ही दूत से यह सन्देश सुना महाराजा अश्वसेन की भुजाएं फडफडा उठी, नसों में खून खौलने लगा।[3] प्रसेनजित् की रक्षा करने

---

१ इयं पि निसामिउण कुमारगुणाकित्तणं किंपि।
अणाइक्खणिज्जं अणणुभूयपुव्वं सा वाला रसंतरं पवन्ना ॥
—सिरि. पास. ३।१५६.

२ पउरकरितुरयजुत्तं पारद्धो ता कलिंगनरनाहो।
अन्नेवि य सीमाला भूवाला पयडियामरिसा ॥
जीवेंतेसु वि अम्हेसु जाइ जइ एरिसं जुवइरयणं।
अन्नत्थ ता पउत्था अम्हं सूरत्तवत्तावि ॥
इय भाविता सव्वे पुव्वब्भत्थणमवेक्खिय विलक्खा।
सव्ववलेण समेया नयरं आवेढिऊण ठिया ॥
रयणीए नरनाहो पसेणई सज्जिऊण नियबलं।
विद्दविउं आढत्तो रिउणो वक्कंददाणेण ॥
एवं दुत्थावत्थे सागरचंदस्स मंतिणो पुत्तो।
पुरिसुत्तमनामोहं समागओ देव तुह पासे ॥
एयं सोच्चा जं किंचि समुचियं तं करेसु देव तुमं ॥
—सिरिपासणाह चरिउ ३।१५७.

३ (क) सोऊण इमं कुविओ नरनाहो आससेणो वि।
आवद्धभिउडिभीमाणणा य कोवारुणच्छिविच्छोहा
करकवियविविहसत्था खुब्भिया सव्वे सुहडसत्था ॥
—सिरिपासणाह चरिउ ३।१५७.

(ख) त्रिषष्टि

के लिए वह उसी समय ससैन्य प्रस्थित हुए। पार्श्वकुमार ने निवेदन किया, पिताजी! मैं जाऊंगा।[1] पार्श्वकुमार के अत्यधिक आग्रह करने पर महाराजा अश्वसेन ने अनुमति प्रदान की।[2] पार्श्वकुमार सेना सहित कुशस्थल पहुँचे। राजा यवन को यह सन्देश पहुँचाया कि तुम्हारे लिए यही श्रेयस्कर है कि विना युद्ध किये उलटे पैरों अपनी राजधानी लौट जाओ। प्रथम यवन राजा पार्श्वकुमार के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हुआ, किन्तु एक वृद्ध मंत्री के समझाने पर वह पार्श्वकुमार के चरणों में आ कर गिर पडा।[3] वह पार्श्वकुमार के दिव्य प्रभाव से प्रभावित हो गया। पार्श्वकुमार ने यवन राजा और प्रसेनजित में मैत्री सम्बन्ध स्थापित करवाया। प्रसेनजित ने अत्यधिक प्रसन्न हो कर पार्श्वकुमार के साथ अपनी पुत्री प्रभावती का पाणिग्रहण करना चाहा। वह पार्श्वकुमार से अत्यधिक आग्रह करने लगे, किन्तु पार्श्वकुमार ने स्पष्ट निषेध करते हुए कहा कि मैं पिता की आज्ञा से आपकी शत्रू से रक्षा करने के लिए आया हूँ न कि विवाह करने के लिए।[4]

पार्श्वकुमार पुनः वहाँ से वाराणसी के लिए प्रस्थित हुए, राजा प्रसेनजित भी उन्हें पहुँचाने की दृष्टि से अपनी पुत्री प्रभावती को साथ ले कर वाराणसी आये। महाराज अश्वसेन को सारी स्थिति समझाई और निवेदन किया कि बिना आप के आदेश के हमारी भावना पूर्ण नहीं हो सकती।[5]

राजा अश्वसेन तो पार्श्व कुमार की मनःस्थिति से पूर्व ही परिचित थे। वे जानते थे पार्श्वकुमार संसार में रहने पर भी संसार के वाता-

---

१ ताय! थोयमिमं कज्जं किमेत्तियमेत्तेणवि आयासिज्जइ अप्पा ?। अहंपि तयणुरूवं उवक्कमं करिस्सामि । केत्तियमेत्तो सो दुट्ठो। मए विज्जंते जइ तुब्भं एवंविहकज्जे आयासणिज्जा ? ता किं पुत्तेहिं कायव्वं ति ?

—सिरिपासणाह चरियं ३।१५८.

२ सिरिपासणाह चरियं — ३। गा. ३, पृष्ठ १५९.

३ सिरिपासणाह चरियं ३।१६१.

४ त्रिषष्टि — ९।३, पृष्ठ २७८.

५ त्रिषष्टि — ९।३।४७९.

वरण से बिलकुल अलग-थलग रहता है, सदा आत्म चिंतन करता रहता है। कहीं यह दूसरी दिशा में न बह जाय, एतदर्थ वह स्वयं भी शीघ्र ही उन्हे परिणय-बंधन में बाँधना चाहते थे। उन्होंने बलपूर्वक पार्श्वकुमार से कहा। पार्श्वकुमार इन्कार करते रहे। पर अन्त में माता-पिता के ममता भरे आग्रह ने उन पर विजय पा ली और प्रतिभा मूर्ति प्रभावती के साथ उनका विवाह संस्कार संपन्न हो गया।[1]

चउपन्न महापुरिस चरियं में प्रभावती के साथ पार्श्वकुमार के विवाह का वर्णन है[2] किन्तु कुशस्थल जाने का वर्णन नहीं है। तिलोय-पण्णत्ती और पद्मचरित आदि में भी कुशस्थल जाने और वहाँ पर विवाह की चर्चा होने के सम्वन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। गुणभद्रचार्य-कृत उत्तर पुराण में, पुष्पदन्त कृत महापुराण में, वादिराजकृत पार्श्व चरित में न तो कुशस्थल युद्ध में जाने का वर्णन किया गया है और न पार्श्व के विवाह का प्रसंग ही उठाया गया है। देवभद्रसूरि रचित पास-णाह चरियं में एवं त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र में यवन के आत्म-समर्पण करने के पश्चात विवाह का वर्णन किया है। देवभद्र सूरि ने पार्श्व-कुमार का विवाह कुशस्थल में ही सम्पन्न कराया है, तो आचार्य हेम-चन्द्र ने वाराणसी में। किन्तु पद्मकीर्ति ने विवाह का प्रसंग उठाया है पर विवाह नहीं होने दिया है। उसने यवन राजा के साथ पार्श्व के युद्ध का विस्तार से वर्णन किया है।

उपरोक्त ग्रन्थों में नाम आदि की दृष्टि से भी कुछ अन्तर है। जैसे देवभद्र सूरि ने और आचार्य हेमचन्द्र ने कुशस्थल के राजा का नाम प्रसेनजित और उनके पिता का नाम नरवर्मा लिखा है। पद्म-कीर्ति ने कुशस्थल के राजा का नाम रविकीर्ति या भानुकीर्ति और उनके पिता का नाम शक्रवर्मा लिखा है।

---

१ त्रिषष्टि – ९।३

२ एत्थावसरम्मि य सयलगुणालंकियसविसेसीकयरुवसोहग्गाइसयस्स भय-वओ पसेणइया अच्चन्त–सोहग्गसालिणी पहावती णाम णिययधूया पणामिया
चउप्पन्न २६१

–पासणाह चरिउ– पद्मकीर्ति संधि ११–१२.

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् पार्श्व के विवाह के सम्बन्ध में सभी ग्रन्थकार एक मत नहीं हैं। समवायांग और मूल कल्पसूत्र में विवाह के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का वर्णन नहीं है।

स्थानाङ्ग[1], आवश्यक निर्युक्ति[2], पउमचरियं[3], पद्मपुराण[4], हरिवंशपुराण[5], तिलोयपण्णत्ती[6] प्रभृति श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों में १ वासुपूज्य, २ मल्लि, ३ अरिष्टनेमि, ४ पार्श्व, और ५ वीर इन पाँच तीर्थंकरों ने कुमारवास में रह कर दीक्षा ग्रहण की और शेष उन्नीस तीर्थंकरों ने राज्य किया। यहाँ पर कुमार शब्द का प्रयोग होने के कारण दिगम्बर परम्परा उन्हें अविवाहित मानती है, और श्वेताम्बर परम्परा का मन्तव्य है कि कुमार काल से तात्पर्य राज्याभिषेक से पूर्व की अवस्था का है, न कि विवाह से पूर्व की कुमारावस्था का।

---

१ स्थानाङ्ग. ४७१

२ वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च।
एए मुत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो ॥
रायकुलेसु वि जाया, विसुद्धवंसेसु खत्तिअकुलेसु।
न य इच्छियाभिसेओ, कुमारवासम्मि पव्वइया ॥
आवश्यक निर्युक्ति– २२१, २२२. पृ. ३९.

३ मल्ली अरिट्ठनेमी पासो वीरो य वासुपुज्जो ॥५७॥
एए कुमारसीहा गेहाओ निग्गया जिणवरिन्दा
सेसा वि हु रायाणो, पुहई भोत्तूण निक्खन्ता ॥५८॥
—विमलसूरिरचित, पउमचरिय, वीसइमो उद्देसो, पृ. ९८।२.

४. वासुपूज्यो महावीरो मल्लिः पार्श्वो यदुत्तमः
कुमारा निर्गता गेहात्, पृथिवीपतयोऽपरे
—पद्मपुराण– २०।६७

५ निष्क्रान्तिर्वासुपूज्यस्य, मल्लेर्नेमिजिनांत्ययोः
पञ्चानां तु कुमाराणां, राज्ञां शेषजिनेशिनाम्
–हरिवंशपुराण ६०।२१४। भाग २ पृ. ७१९.
–जिनसेन. (माणिक्यचन्द्र जैन ग्रंथमाला, बम्बई).

६ णेमी मल्ली वीरो कुमारकालम्मि वासुपुज्जो य।
पासो वि गहिदतवा, सेसजिणा रज्जचरमम्मि ॥
—तिलोयपण्णत्ती अधिकार– ४, गा. ६७०.

यह अर्थ केवल आचार्य अभयदेव[1] ही नहीं, अपितु शब्दरत्नसमन्वय-कोश[2], वैजयन्ति कोश[3], अमरकोश[4], अभिधान चिन्तामणि कोश[5], मोनियर- मोनियर विलियम्स संस्कृत- इंग्लिश डिक्शनरी[6] और आप्टे- संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी[7] से भी सिद्ध है।

कुछ आधुनिक विद्वानों को पार्श्व के विवाह के सम्बन्ध में प्रसेनजित के कारण भ्रम हो गया है। डाक्टर मजूमदार का कहना है कि पार्श्व का विवाह अयोध्या के राजा प्रसेनजित की कन्या के साथ हुआ था[8]। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों में कुशस्थल (कनौज)[9] का राजा प्रसेनजित बताया है। अतः प्रसेनजित् को उज्जैनी का अधिपति मानना भ्रमपूर्ण है।

---

१ (क) कुमाराणामराजभावेन वासः कुमारवासः

—स्थानाङ्ग सटीक- ५।३।२५१.

(ख) कुमाराः- राज्यार्हाः

—प्रश्नव्याकरण, अभयदेववृत्ति पत्र ९६.

२ कुमारो युवराजेऽश्ववाहके बालके शुके

—शब्दरत्न- समन्वयकोश- पृ. २६८.

३ कुमारस्याद्गुहे बाले वरणेऽश्वानुचारके
युवराजेच .... ।

—वैजयन्ति कोश, त्र्यक्षरकाण्डे नाना लिंगाध्याय- पृ. २५९.

४ युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः

—अमरकोश, पृ. ७५, काण्ड १, नाट्यवर्ग, श्लो. १२.
निर्णयसागर,

५ युवराज कुमारो भर्तृदारक :

—अभिधान चिन्तामणि काण्ड २. श्लो. २४६. पृ. १६६.

६ कुमार चाइल्ड, ब्वॉय, यूथ, सन, प्रिन्स,

—पृ. २९२.

७ कुमार- सन, ब्वॉय, यूथ, ए बॉय बिलो फाइव, ए प्रिन्स,

—पृ. ३६३.

८ हिस्ट्री ऑफ इंडिया- पृ. ४३५। ५५१। ५५२. ले. - मजुमदार.

९ कान्यकुब्जं[1], महोदयम्[2]।९७३
कन्याकुब्जं[3] गाधिपुरं[4], कौशं[5], कुशस्थलं[6] च तत्॥ ९७४

—अभिधान चिन्तामणि तिर्यक्काण्ड. ४. पृ. २२२ (अहमदाबाद).

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् पार्श्व के विवाह के सम्बन्ध में सभी ग्रन्थकार एक मत नहीं हैं। समवायांग और मूल कल्पसूत्र में विवाह के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का वर्णन नहीं है।

स्थानाङ्ग[1], आवश्यक निर्युक्ति[2], पउमचरियं[3], पद्मपुराण[4], हरिवंशपुराण[5], तिलोयपण्णत्ती[6] प्रभृति श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों में १ वासुपूज्य, २ मल्लि, ३ अरिष्टनेमि, ४ पार्श्व, और ५ वीर इन पाँच तीर्थंकरों ने कुमारवास में रह कर दीक्षा ग्रहण की और शेष उन्नीस तीर्थंकरों ने राज्य किया। यहाँ पर कुमार शब्द का प्रयोग होने के कारण दिगम्बर परम्परा उन्हें अविवाहित मानती है, और श्वेताम्बर परम्परा का मन्तव्य है कि कुमार काल से तात्पर्य राज्याभिषेक से पूर्व की अवस्था का है, न कि विवाह से पूर्व की कुमारावस्था का।

---

१ स्थानाङ्ग. ४७१

२ वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च।
एए मुत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो ॥
रायकुलेसु वि जाया, विसुद्धवंसेसु खत्तिअकुलेसु।
न य इच्छियाभिसेओ, कुमारवासम्मि पव्वइया ॥
आवश्यक निर्युक्ति– २२१, २२२. पृ. ३९.

३ मल्ली अरिटठनेमी पासो वीरो य वासुपुज्जो ॥५७॥
एए कुमारसीहा गेहाओ निग्गया जिणवरिन्दा
सेसा वि हु रायाणो, पुहई भोत्तूण निक्खन्ता ॥५८॥
—विमलसूरिरचित, पउमचरिय, वीसइमो उद्देसो, पृ. ९८।२.

४. वासुपूज्यो महावीरो मल्लिः पार्श्वो यदुत्तमः
कुमारा निर्गता गेहात्, पृथिवीपतयोऽपरे
—पद्मपुराण– २०।६७

५ निष्क्रान्तिर्वासुपूज्यस्य, मल्लेर्नेमिजिनांत्ययोः
पञ्चानां तु कुमाराणां, राज्ञां शेषजिनेशिनाम्
–हरिवंशपुराण ६०।२१४। भाग २ पृ. ७१९.
–जिनसेन. (माणिक्यचन्द्र जैन ग्रंथमाला, बम्बई).

६ णेमी मल्ली वीरो कुमारकालम्मि वासुपुज्जो य।
पासो वि गहिदतवा, सेसजिणा रज्जचरमम्मि ॥
—तिलोयपण्णत्ती अधिकार– ४, गा. ६७०.

यह अर्थ केवल आचार्य अभयदेव[1] ही नहीं, अपितु शब्दरत्नसमन्वय-कोश[2], वैजयन्ति कोश[3], अमरकोश[4], अभिधान चिन्तामणि कोश[5], मोनियर- मोनियर विलियम्स संस्कृत- इंग्लिश डिक्शनरी[6] और आप्टे- संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी[7] से भी सिद्ध है।

कुछ आधुनिक विद्वानों को पार्श्व के विवाह के सम्बन्ध में प्रसेन-जित के कारण भ्रम हो गया है। डाक्टर मजूमदार का कहना है कि पार्श्व का विवाह अयोध्या के राजा प्रसेनजित की कन्या के साथ हुआ था[8]। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों में कुशस्थल (कनौज)[9] का राजा प्रसेनजित बताया है। अतः प्रसेनजित् को उज्जैनी का अधिपति मानना भ्रमपूर्ण है।

---

१ (क) कुमाराणामराजभावेन वासः कुमारवासः

—स्थानाङ्ग सटीक- ५।३।२५१.

(ख) कुमाराः- राज्यार्हाः

—प्रश्नव्याकरण, अभयदेववृत्ति पत्र ९६.

२ कुमारो युवराजेऽश्ववाहके बालके शुके

—शब्दरत्न- समन्वयकोश- पृ. २६८.

३ कुमारस्याद्गुहे बाले वरणेऽश्वानुचारके
युवराजेच .... ।

—वैजयन्ति कोश, त्र्यक्षरकाण्डे नाना लिंगाध्याय- पृ. २५९.

४ युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः

—अमरकोश, पृ. ७५, काण्ड १, नाटयवर्ग, श्लो. १२.
निर्णयसागर,

५ युवराज कुमारो भर्तृदारक:

—अभिधान चिन्तामणि काण्ड २. श्लो. २४६. पृ. १६६.

६ कुमार चाइल्ड, ब्वॉय, यूथ, सन, प्रिन्स,

—पृ. २९२.

७ कुमार- सन, ब्वॉय, यूथ, ए बॉय बिलो फाइव, ए प्रिन्स,

—पृ. ३६३.

८ हिस्ट्री ऑफ इंडिया- पृ. ४१५। ५५१। ५५२. ले. - मजुमदार.

९ कान्यकुब्जं[1], महोदयम्[2]।९७३
कन्याकुब्जं[3] गाधिपुरं[4], कौशं[5], कुशस्थलं[6] च तत् ॥ ९७४

—अभिधान चिन्तामणि तिर्यक्काण्ड. ४. पृ. २२२ (अहमदाबाद).

रानी गुंफा में एक भित्ति चित्र में एक पुरुष और स्त्री का चित्र है जिस में पुरुष को बाण चलाते हुए देख कर कुछ विद्वानों ने यह कल्पना की है कि यह पार्श्वनाथ के विवाह की घटना का चित्र है, जब वे यवनराज पर विजय कर प्रभावती को ले गये थे।[1] पर इस कल्पना का भी कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।

इस प्रकार विवाह के प्रश्न पर श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में मतभेद का जो आधार महावीर के लिए है अर्थात् जिस 'कुमार' शब्द पर वे महावीर को अविवाहित मानते हैं उसी कुमार शब्द पर पार्श्व को भी अविवाहित होना सिद्ध करते हैं। यद्यपि श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी पार्श्व के विवाह की घटना को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। फिर भी अनेक ग्रन्थों में इसकी इतनी स्पष्ट चर्चा है कि विवाह से इन्कार करने का भी कोई कारण नहीं है। कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि पार्श्वकुमार सांसारिक विषय भोगों के प्रति प्रारंभ से ही उदासीन एवं विरक्त रहते थे, जिसके कारण उनके पिता को चिंता हुई। और इसी कारण पिता ने उनसे विवाह का अधिक आग्रह किया। विवाह प्रसंग की घटना में पार्श्वकुमार के शौर्य प्रदर्शन का प्रसंग, यवनराज की चर्चा एक ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती है।



---

१ ए ब्रीफ सर्वे ऑफ जैनिज्म इन दी नॉर्थ.
पृ. ७. लेखक. यू. पी. शाह.

वैराग्य कैसे? | ५

उत्तरपुराण के अनुसार नाग उद्धार की घटना जब पार्श्वकुमार सोलह वर्ष से अधिक आयु के थे तब हुई थी[1]। अतः वह घटना उनके वैराग्य का कारण नहीं हुई। किन्तु पद्मकीर्ति के अनुसार नाग की घटना इकतीसवे वर्ष में हुई थी[2] और वही घटना उनके वैराग्य उत्पन्न होने का मुख्य कारण बनी[3]। किन्तु अन्य पार्श्व चरित्र के लेखकों ने नाग की घटना का वर्णन कर के भी उस घटना को वैराग्य का कारण नहीं माना।

उत्तरपुराण और पुष्पदन्तकृत महापुराण के अनुसार जब पार्श्वकुमार तीस वर्ष के थ, उस समय अयोध्या के राजा जयसेन की ओर से एक दूत भेंट ले कर आया। पार्श्वकुमार ने अयोध्या की विभूति के सम्बन्ध में जिज्ञासा अभिव्यक्त की तो दूत ने सर्व प्रथम अयोध्या नगरी

---

१ षोडशाब्दावसानेऽयं कदाचिन्नवयौवनः

—उत्तरपुराण – ७३।९५.

२ पासणाह चरिउ । ९।३।६२.

३ अहिवरहो मरणु पेक्खिवि कुमारु
णिंदणहँ लग्गु इहु जगु असारु।
तिण लग्गु बिंदु सम– सरिसु जीउ
अणुहवइ कम्मु जं जेण कीउ ॥
... ...
जाय ण मरणु वियंभइ जाय ण विहडइ देहु ।
ताय महातउ हउँ करमि मेल्लिवि कलि-मलु-कोहु ॥
—पासणाह चरिउ – १३।१२।११२.

के निर्माता ऋषभ देव के सम्बन्ध में वर्णन किया। भगवान ऋषभ का वर्णन सुनकर पार्श्वकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वे उसी समय विरक्त हो गये।[1]

आचार्य शीलाङ्क,[2] देवभद्रसूरि,[3] भावदेवसूरि[4] और हेमविजय गणी[5] के अभिमतानुसार एक समय पार्श्वकुमार वसन्त ऋतु में घूमने के लिए उद्यान में गये वहाँ पर नेमिनाथ के भित्तिचित्रों को देख कर वैराग्य हुआ।

आचार्य हेमचन्द्र[6] और वादिराज ने उनके वैराग्योत्पति का कोई निमित्त कारण नहीं माना है।

समीक्षा

जहाँ तक हमारी धारणा है आगम साहित्य में किसी भी तीर्थंकर को किसी निमित्त से वैराग्य उत्पन्न हुआ हो ऐसा वर्णन नहीं है, क्योंकि तीर्थंकर स्वयं संबुद्ध होते हैं।[7] प्रत्येक तीर्थंकर के दीक्षा लेने के

---

१ ततस्त्रिंशत्समामानकुमारसमये गते।
साकेत नगराधीशो जयसेनो महीपतिः।
भगलीदेशसज्जातहयादिप्राभृतान्वितम्।।
अन्यदासौ निसृष्टार्थः प्राहिणोत्पार्श्वसन्निधम्।
गृहीत्वोपायनं पूजयित्वा दूतोत्तमं मुदा।।
साकेतस्य विभूतिं तं कुमारः परिपृष्टवान्।
सोऽपि भट्टारकं पूर्वं वर्णयित्वा पुरुं पुरम्।।
... ...
विजृम्भितमतिज्ञानक्षयोपशमवैभवात्
लब्धबोधिः पुनर्लौकान्तिकदेवप्रबोधितः।।
—उत्तरपुराण –७३, ११९–१२५. पृ. ४३७

२ चउप्पन्न महा. पृष्ठ २६२ – २६३.

३ सिरिपासनाह चरियं – प्रस्ताव ३, पृष्ठ. १६९-१७०.

४ पार्श्वनाथ चरित्र

५ हेमविजयगणी – पार्श्वचरितम्

६ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र – पर्व ९। सर्ग ३

७ सव्वेऽवि सयंबुद्धा लोगंतियबोहिया य जीयंति–
आवश्यक निर्युक्ति
देखिए कल्पसूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति।

पूर्व लोकान्तिक देव आते हैं। उद्‌बोधन के रूप में वे निवेदन भी करते हैं पर उनके निवेदन करने के कारण से उन्हें वैराग्य नहीं होता और न उनके कहने से वे दीक्षा ही लेते हैं। जब तीर्थंकर के दीक्षा का समय सन्निकट आता है तब वे देव आते हैं और उद्‌बोधन देते हैं, जो उनका एक प्रकार से जीताचार है।[1]

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पार्श्वकुमार को संसारावस्था में अवधिज्ञान था[2] और वह अवधिज्ञान वे दसवें देवलोक से ही साथ में लेकर आये थे। वह अवधिज्ञान काफी विशुद्ध था जिससे वे अपने पूर्व भव आदि को भी जानते थे। तथापि उपरोक्त ग्रंथों में जो चित्रपट्ट और ऋषभ वृतान्त को सुना कर जातिस्मरण ज्ञान के द्वारा विरक्ति बताई गई है वह विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं लगती। कारण कि जातिस्मरण ज्ञान मतिज्ञान का ही एक प्रकार है[3] और वह परोक्ष ज्ञान है।[4] जब कि अवधिज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है[5] एवं मतिज्ञान से उसका विषय भी अधिक एवं स्पष्ट है।

---

१ (क) पासे णं अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए तीसं वासाइं आगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासि-जय-जय नंदा जय जय भद्दा, भद्दं ते जाव जय-जय सद्दं पउंजंति.

—कल्पसूत्र १५२ पृष्ठ २१९

(ख) जय-जय खत्तिय वर वसभ बुज्झहि भयवं।
सव्व जगज्जीव हियं अरहं तित्थं पव्वत्तेहि॥

२ पुव्वि पि णं पासस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहियए

—कल्पसूत्र १५३ पृष्ठ २१९

३ (क) मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्

—तत्त्वार्थसूत्र – १।१३

(ख) विशेषावश्यक भाष्य ३९६.

४ आद्ये परोक्षम्

—तत्त्वार्थ सूत्र – १।११.

५ प्रत्यक्षमन्यत्

—तत्त्वार्थ सूत्र – १।१२.

वार्षिक दान

दीक्षा लेने के पूर्व श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार पार्श्वकुमार एक वर्ष तक वर्षीदान देते हैं।[1] किन्तु दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में वर्षीदान का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

अभिनिष्क्रमण

कल्पसूत्र[2], चउप्पन्न महापुरिस चरियं[3], त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र[4], सिरिपासणाह चरियं[5], प्रभृति ग्रन्थों के अनुसार जब पार्श्वकुमार की आयु तीस वर्ष की पूर्ण होती है तब पौष कृष्णा एकादशी को वाराणसी के बाहर आश्रमपद नामक उद्यान में विशाखा नक्षत्र में स्वयं के हाथ से पंच-मुष्टि लोच कर, एक देवदूष्य वस्त्र को ले कर तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करते हैं। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ।[6] दिगम्बर परम्परा के

---

१ तिन्नी कोडिसयाइं अट्ठासीइं च कणयकोडीओ असिईलक्खा एवं सव्वं संवच्छरियदाणं

—पासणाह चरियं ३।१७६.

२ तस्स णं पोसबहुलस्स एक्कारसीदिवसेणं पुव्वण्हकाल समयंसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तं चेव सव्वं नवरं वाणारसिं नगरिं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवर पायवे तेणेव उवागच्छइ, ... विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमायाय तिहिं पुरिससएहिं सिद्धि मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—कल्पसूत्र १५३.

३ .... पोसस्स बहुलेक्कारसीए आसाढणक्खत्तम्मि पवण्णो दिक्खं.

—चउप्पन्न २६६.

४ त्रिषष्टि– ९।३

५ पासणाह. प्र. ३।१७९.

६ भगवं पि दिक्खाणन्तरुप्पण्णमणपज्जवणाणो

—चउप्पन्न. २६६.

(ख) त्रिषष्टि. ९।३

ग्रन्थों में पार्श्व की दीक्षा तिथि माघ शुक्ला एकादशी मानी है[1]। उत्तरपुराण व तिलोयपण्णत्ती के अनुसार उद्यान का नाम अश्ववन था[2]। पुष्पदन्त के अनुसार अश्वत्थ वन था। पद्मकीर्ति के अनुसार तापस आश्रम था[3]।

समवायांग[4], कल्पसूत्र[5], त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[6] प्रभृति ग्रन्थों के अनुसार जिस शिविका में बैठ कर पार्श्व नगर से बाहर दीक्षा के लिए आये थे उस शिविका का नाम विशाला था। उत्तरपुराण और पुष्पदन्त कृत महापुराण के अनुसार उस शिविका का नाम विमला था[7]।

अभिग्रह

दीक्षित होते ही भगवान् पार्श्व ने मित्र, ज्ञाति व सम्बन्धियों को विसर्जित किया। एक उत्कट अभिग्रह धारण किया कि तेरासी दिनों तक (जब तक केवल ज्ञान, केवल दर्शन, उत्पन्न न हो जाये) व्युत्सृष्टकाय और त्यक्तदेह (देह शुश्रुषा से उपरत) हो कर रहूँगा।

---

१ (क) उत्तराभिमुखः पौषे मासे पक्षे सितेतरे।
एकादश्यां सुपूर्वाह्ने समं त्रिशतभूभुजैः॥
—उत्तरपुराण ७३।१२९– पृ. ४३७.
(ख) माघस्सिदएक्कारसिपुव्वण्हे गेण्हदे विसाहासु
—तिलोयपण्णत्ती. ४।६६६.

२ (क) उत्तरपुराण ७३।१२८, पृ. ४३७
(ख) पव्वज्जं पासजिणो अस्सत्थवणम्मि छट्ठभत्तेण।
—तिलोयपण्णत्ती ४।६६६, पृ. २२६.

३ पासणाह चरिउ० १३।१३।११२

४ समवायांग

५ विसालाए सिवियाए–
कल्पसूत्र. १५३, पृ. २२०.

६ त्रिषष्टि– ९।३। पृ. ४८०.

७ प्रत्येय युवितमद्वाग्भिः कृतबन्धुविसर्जनः।
आरुह्य शिविकां रूढां विमलाभिधया विभुः॥
—उत्तरपुराण ७३।१२७.

इस अवधि में देव, मनुष्य और पशु- पक्षियों द्वारा जो भी उपसर्ग उपस्थित होंगे उन्हें समभाव पूर्वक सहन करूँगा।

प्रथम–पारणा

श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार भगवान् पार्श्व अष्टम तप के साथ प्रव्रजित होते हैं[1]। किन्तु पद्मकीर्ति के अनुसार आठ उपवास के साथ दीक्षा लेते हैं[2]। श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार दूसरे दिन[3] कोपटक नामक गाँव में धन्य नामक गृहस्थ के घर खीर से पारणा करते हैं[4]। उत्तर पुराण[5] में उस गाँव का नाम गुल्मखेट दिया है।

---

१ (क) सुमइत्थ णिच्चभत्तेण, णिग्गओ वासुपुज्ज चोत्थेणं पासो मल्ली य अट्ठमेण, सेसा उ छट्ठेणं

—समवायाङ्ग स. १५६ पृ. १४७ कमल.

(ख) अट्ठमेणं भत्तेणं–

कल्पसूत्र. १५३.

(ग) पासो मल्लीवि य अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं

—आवश्यक निर्युक्ति– गा. २५०.

(घ) विद्यायाष्ट ममाहार त्यागमश्ववने महा...।

—उत्तरपुराण ७३।१२८

(च) सिरि पासणाह चरियं– ३।१८२

(छ) त्रिषष्टि– ९।३।४८०.

२ अट्ठोपवासु जग–गुरु करेवि परिहार– सुद्धि संजउ धरेवि

—पासणाह चरिउ– १३।१४।११३.

३ संवच्छरेण भिक्खा, लद्धा उसभेण लोय– णाहेण।
सेसेहि बीयदिवसे, लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥

—समवायाङ्ग १५६। पृ. १४७.

४ त्रिषष्टि– ९।३।४८०.
आवश्यक निर्युक्ति– ३२५.
पार्श्वनाथस्स कोपकडं–

आवश्यक मलय. पृ. २२७.

५ गुल्मखेटपुरं कायस्थित्यर्थं समुपेयिवान्

—उत्तरपुराण– ७३, १३२.

विहार

भगवान पार्श्व ने दीक्षा ले कर वाराणसी से प्रस्थान किया। संयम-साधना, तप-आराधना करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार करने लगे। एक समय विहार करते हुए भगवान् कलिगिरि नामक पर्वत के नीचे अवस्थित कादम्बरी नामक वन में गये, सरोवर के सन्निकट ध्यानस्थ हो कर खडे हो गये। उस समय वहाँ पर घूमता-घामता महीधर नामक हाथी आया। भगवान् को देखते ही उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया[1] जिससे वह भगवान् की अर्चना करने लगा। कलि-गिरिकुण्ड सरोवर के सन्निकट होने से वह स्थान 'कलिकुण्ड' के नाम से विश्रुत हुआ[2]।

वहाँसे भगवान् विहार कर शिवपुरी गये। कौशाम्ब वन में ध्यान-मुद्रा में खडे थे।[3] उस समय अपने पूर्वभव को स्मरण कर धरणेन्द्र वहाँ पर आया। धूप से रक्षा करने के लिए उसने भगवान् पर छत्र किया एतदर्थ उस स्थान का नाम अहिच्छत्रा पडा।[4]

---

१ कायंवरी नामाए महाडवीए पत्तो मवणगरू। ट्ठिओ कलिनामधेयस्स गिरिणो कडएगदेसे काउस्सग्गेण। ………तत्थ य अणेगकलहकरेणुयाजूहपरिवुडो महीहरो नाम करिवरो जलपाणनिमित्तं हव्वमागच्छंतो भयवंतं गिरिकडयकं-यकाउस्सग्गं थिमिय-लोयणं पेच्छइ। तओ एवंविहरूवो महामुणी मए कहिंपि दिट्ठो त्ति, ईहापोहाइपहपयट्टस्स तस्स जायं जाईसरणं।

—पासणाह चरियं—देवभद्र ३। पृ. १८४–१८५

२ कलिकुंडो त्ति पसिद्धि पत्तो मंतक्खरेसुं पि

—पासणाह चरियं—देवभद्र ३।पृ. १८७

३ सिवनयरीए वहिया कोसंववणे ट्ठिओ य पडिमाए

—पासणाह चरियं – ३।१८७.

४ (क) सुचिरं सब्भूयगुणाण संथवं भयवओ पवित्थरिउं।
परिभाविउं पवत्तो अहो कहं रविकरुक्केरो॥
नाहसिरोवरि दुस्सहो कोव विसेसो य सामिभिच्चाणं।
इति सो जाओ उवकरिसो पहुणो उवरिं धरइ छत्तं॥
जाव तिरत्तं तत्तो सामी अन्नत्थ विहरिओ पच्छा।
सा नयरी अहिच्छत्तेति महियले पाविया कित्ति॥

—पासणाह चरियं – ३।१८८.

(ख) पार्श्वनाथ चरित्र – भावदेव सूरिकृत सर्ग ६ श्लोक १४५.

वहाँ से भगवान् राजपुर गये वहाँ पर ईश्वर नामक राजा उन्हें वन्दन करने के लिए आया और वह स्थान 'कुक्कुटेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1]

कमठ का उपसर्ग

वहाँ से विहार कर एक नगर के समीप तापसों का आश्रम था, वहाँ पर भगवान् पार्श्व पधारे। सूर्यास्त होने से एक कुअें के सन्निकट वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ होकर खड़े हो गये।[2] कमठ तापस जो मर कर मेघमाली देव बना था। अवधिज्ञान (विभंगज्ञान) से अपने पूर्वभव को स्मरण कर क्रोध और अहंकार से बेभान बना हुआ जहाँ भगवान् ध्यानस्थ थे वहाँ आया। भगवान को ध्यान से विचलित करने के लिए सिंह, हस्ती, रीछ, सर्प, बिच्छू प्रभृति विविध रूप बना कर नाना प्रकार के कष्ट देने लगा। एक के बाद एक घनघोर यातनाएँ देने लगा[3]। तथापि भगवान् सुमेरू की तरह स्थिर रहे। अपने अडिग धर्म ध्यान से तनिक मात्र भी विचलित नहीं हुए तब उसने खिसिया कर गंभीर गर्जना करते

---

१. (क) कुक्कुडे सरंति देसंतरेसु विक्खाइं गयं

—पासणाह चरियं – ३।१९१.

(ख) पार्श्वनाथ चरित्र – भावदेव सूरि सर्ग ६ श्लोक १६७.

२. (क) गामाणुगामं विहरमाणो संपत्तो पुव्वुत्ते आसमपयंमि। ट्ठिओ धवतरूणो हेट्ठओ काउस्सग्गेणं।

—पासणाह चरियं – ३।१९१.

(ख) त्रिषष्टि – ९।३।

३ (क) ताव पुव्वुत्तकढो, मेहकुमारत्तणेण वट्टंतो।
सरिऊण पुव्वकालियवइरं पंचग्गितवविसयं।।
भयवंतोवरि तक्खणकयगुरुकोवोवरत्तनयण जुओ।
आवद्धभिउडिभीमीभवंतदुप्पेच्छभालयलो।।
पीडिउं आरद्धो निक्कारणवेरिओ तिजयनाहं।
गरुयामरिसवसेणं वहुएहिं कयत्थणसएहिं।।

—सिरिपासणाह चरियं – ३।१९१

(ख) त्रिषष्टि ९।३.

हुए अपार जल वृष्टि की।[1] नासाग्र तक पानी आ जाने पर भी भगवान् का ध्यान भग्न नहीं हुआ[2]। उस समय अवधिज्ञान से धरणेन्द्र ने मेघमाली के उपसर्ग को देखा, उसी क्षण वह वहाँ आया, और सात फनों का छत्र वनाकर उपसर्ग का निवारण किया।[3]

भक्ति भावना से गद्‌गद् हो कर उसने भगवान् की स्तुति की। ध्यानमग्न समदर्शी भगवान् न तो स्तुति करनेवाले धरणेन्द्र देव पर तुष्ट हुए और न उपसर्ग करनेवाले दुष्ट कमठ पर रुष्ट ही हुए। एतदर्थ ही आचार्य हेमचन्द्रने प्रभु पार्श्व की स्तुति करते हुए कहा है :-

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचिते कर्म कुर्वति।
प्रभोस्तुल्यमनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ॥[4]

---

१ हुं नायं पवलजलोहपेल्लणेणं खिवामि भयरहरे।
इय चिंतिउं कढेण वित्थरिया तयणु गयणतले ॥
... ...
मुच्चइ सुघोरधाराधोरणिपडिरुद्धदसदिसाभोगं।
भयवंतसिरस्सुवरिं जम्माभिसेएव्व जलपडलं ॥
—सिरिपासणाह चरियं – देव. ३।१९२.

२ (क) अह वज्जियमज्जायं तह कहविहु तं जलं जलहिणोव्व।
वित्थरियं जह पहुणो कंठे लग्गं सुमित्तं व ॥
जह-जह वित्थरइ जलं तह-तह ज्झाणानलो जयगुरुस्स।
वढ्ढामरिसो वडवानलोव्व वुड्‌ढि परं जाइ ॥
—सिरिपासणाह ३।१९३

(ख) त्रिषष्टि – ९।३।४८२.

(ग) अवगण्णियासेसो वसगत्त य लग्गं णासियाविवरं जाव सलिलं
—चउप्पन्न २६७.

३ (क) चउप्पन्न महापुरिस चरिय – २६७.

(ख) तहाविहं च तं दट्ठूण फुरंतफणामणिचक्कवालकंतिपईवडामरं विरइयं भयवओ उवरि निरुद्धमहामेहवारिपसरं सत्तसंखफारफणाफलगमयं महंतमायवत्तं। पायहेट्ठओ पुण पणमिऊण परमेसरं ठवियं दीहनालोवसोहियं महापउमं ॥
—सिरिपासणाह. ३।१९३

(ग) त्रिषष्टि – ९।३.

४ त्रिषष्टि. पर्व १ सर्ग १ श्लोक २५.

धरणेन्द्र के भय से भयभीत बन कर और पराजित हो कर मेघमाली प्रभु के चरणों में आ कर गिरा और अपने अपराध की क्षमा-याचना करने लगा[1]।

इस प्रकार प्रस्तुत उपसर्ग का वर्णन सभी श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों में प्राप्त होता है। किन्तु उन ग्रन्थों में विघ्न उपस्थित करनेवाले के नाम में अन्तर है। चउप्पन्न महापुरिस चरियं[2], सिरि-पासनाह चरियं[3], त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[4], पद्मकीर्ति पासणाह चरिउ[5] प्रभृति ग्रन्थों में उस विघ्नकर्ता का नाम मेघमालिन् दिया है। उत्तरपुराण[6], पुष्पदन्तकृत महापुराण, और रइधू के पास-चरिय में उस विघ्नकर्ता का नाम शंबर है। वादिराज[7] ने उसका नाम भूतानन्द लिखा है। यद्यपि मूल कल्पसूत्र, उसकी चूर्णि और निर्युक्ति

---

१ तो चिरकालियनिक्कज्जवइरसंजायपच्छयावेण।
हीं ही गरुयमकज्जं कयंति संतप्पमाणेणं॥
पाएसु पडिय काऊण खामणं निंदिउं च दुच्चरियं।
भग्गपइन्नेण दढं जहागयं पडिगयं तेण॥

पासणाहचरियं ३।९।१९४.

(ख) त्रिषष्टि ९।३।

२ इओ य सो मेहमाली अवहिप्पओएणं मुणिऊण अत्तणो वइयरं, सुमरिऊण पुव्वभववेरकारणं, समुप्पण्णतिव्वामरिसो पलोयन्तो समागओ जत्थ भयवं।

—चउप्पन्न. २६६.

३ ताव पुव्वुत्तकढो, मेहकुमारत्तणेण वट्टंतो।

—सिरिपास. ३।१९१.

४ त्रिषष्टि- ९।३.

५ तं पेक्खेवि धवलुज्जलु थक्कउ अविचलु मेहमल्लिभडु कुद्धउ।

—पासणाह चरिउ- १४।५।११९.

६ गृहीत्वा सत्त्वसारोऽस्याद् धर्मध्यानं प्रवर्तयन्।
शम्बरोऽत्राम्बरे गच्छन्न गच्छतस्वं विमानकम्॥
लोकमानो विभङ्गेन स्पष्टप्राग्वैरबन्धनः।
रोषात्कृत महाघोषो महावृष्टिमपातयत्॥

—उत्तर पुराण. ७३।१३६-१३७.

७ श्री पार्श्वनाथ चरित्र- १०।८८.

में उपसर्ग उपस्थित होने का कोई वर्णन नहीं है किन्तु सभी टीकाकारों ने उसका रोचक वर्णन किया है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने भी कल्याण मंदिर स्तोत्र में कमठ के द्वारा दिये गए उपसर्ग का उल्लेख किया है।' हे स्वामिन् । उस शठ कमठ ने क्रोधावेश में जो धूलि आप पर फेंकी वह धूलि आप की छाया पर भी आघात नहीं पहुँचा सकी[1]।'

प्राय: सभी ग्रन्थों में उपसर्ग के निवारण हेतु धरणेन्द्र नागराज का उल्लेख किया गया है। और उसे नाग का जीव माना है जिसे पार्श्व ने नमस्कार महामंत्र सुनवाया था।

दिगम्बर आचार्य गुणभद्र ने उपसर्ग स्थल का नाम दीक्षा वन दिया है, जिस स्थान पर भगवान् पार्श्व ने दीक्षा ग्रहण की थी।[2] उसी स्थल पर चार माह के पश्चात् जब भगवान् पुनः पधारते हैं तब शंवर नामक देव ने उनको सात दिन तक भयंकर उपसर्ग दिये। किन्तु देवभद्राचार्य[3], हेमचन्द्राचार्य[4], हेमविजय गणी[5], उदयवीर गणी[6] प्रभृति श्वेताम्बर विज्ञों ने उपसर्ग का स्थल आश्रम बताया है।

---

१ प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषाद्
उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥
—कल्याणमन्दिर ३१.

२ नयन्स चतुरो मासान्, छाद्मस्थ्येन विशुद्धिभाक्।
दीक्षाग्रहवने देवदारुभूरिमहीरुहः ॥
—उत्तर पुराण, ७३।१३४.

३ एवं च भयवं पासनाहो कुक्कुडेसराओ निक्खंतो गामाणुगामं विहरमाणो संपत्तो पुव्वुत्ते आसमपयंमि।
—पासनाह चरियं, ३।१९१.

४ त्रिषष्टि— ९।३, गुजराती अनुवाद. पृ. २८७.

५ सुखे दुःखे च सदृशः क्रमतो विहरन् विभुः।
पुरासन्ने ययौ क्वापि, तापसानां तपोवने ॥
—पार्श्वनाथ चरितम् ५।२६८ पृ. १४८.

६ पार्श्वनाथ चरित्र— सर्ग ६.

केवल-ज्ञान की उपलब्धि

कमठ के उपसर्ग के पश्चात् भगवान् पार्श्व वहाँ से विहार कर, अन्य अनेक स्थलों पर परिभ्रमण करते हुए एवं ध्यान साधना करते हुए वाराणसी नगरी के बाहर आश्रमपद नामक उद्यान में पधारे। भगवान् को दीक्षा ग्रहण किये तिरासी (८३) रात्रि-दिन व्यतीत हो गये थे। चौरासीवां दिन चल रहा था। ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन पूर्वाह्न में आँवले (धातकी) के वृक्ष के नीचे षष्ट तप किये हुए शुक्ल ध्यान में लीन थे। आत्म-मन्थन अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। संयम और तप से चित्त के सब मैल धुल चुके थे, अन्तर्जगत पूर्णतः विशुद्ध हो चुका था, अतः जब विशाखा नक्षत्र का योग आया तब उन्हें उत्तमोत्तम केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।[1] उस महान् तपस्वी की साधना सफल हुई। ज्ञान का महास्रोत उमड पड़ा। अतः अब उन्हें जानने के लिए कुछ भी शेष न रहा, वे जैन दर्शन की भाषा में जिन, अरिहंत और केवल ज्ञानी हो गये।

---

१ (क) तए णं पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए जाव अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं चउरासी इमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तवहुले तस्स णं चित्त वहुलस्स चउत्थी पक्खेणं पुवूण्हकाल समयंसि धायतिपायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणं तरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने –

—कल्पसूत्र १५५ पृ. २२२.

(ख) चित्ते वहुलचउत्थी विसाहजोएण पासनामस्स।

—आवश्यक निर्युक्ति – गा. २७५, पृ. २०७

(ग) चित्तकिण्हचउत्थीए विसाहाहिं समुप्पण्णं केवलं नाणं

—चउप्पन्न २६८

(घ) अह चेत्तकिण्हचउत्थीए पव्वज्जादिणाओ आरब्भ चुलसिइमे
दिणे विसाहा नक्खत्तोवगए ससहरे......केवलनाणं समुप्पन्नं ॥

—सिरिपासणाह चरियं – ४।१९६

(च) त्रिषष्टि – ९।३.

जिस दिन भगवान् पार्श्व को केवल ज्ञान की उपलब्धि हुई वह दिन मानवता का मंगल दिन था। एक मानव सच्चे पुरुषार्थ से जीवन के सर्वोच्च शिखर पर किस प्रकार आरूढ हो सकता है यह बात उन्होंने सिद्ध कर दी।

पद्‌मकीर्ति के अनुसार भगवान् पार्श्व को केवल ज्ञान का साक्षात्कार जिस समय कमठ उपसर्ग दे रहा था उस समय हुआ था[1] पर सभी श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार उसके कुछ दिनों के पश्चात् हुआ था।

कल्पसूत्र से लेकर सभी श्वेताम्बर पार्श्व चरित्रों के अनुसार भगवान् पार्श्व को दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् चौरासीवें दिन केवल ज्ञान हुआ था अर्थात् वे तिरासी दिन तक छद्‌मस्थ अवस्था में रहे थे। किन्तु तिलोयपण्णत्ती के अनुसार चार माह के पश्चात् केवल ज्ञान हुआ था। दिगम्बर परम्परा ने भी चैत्र वहुल चतुर्थी के पूर्वाह्‌न काल में विशाखा नक्षत्र में केवलज्ञान की उत्पत्ति मानी है।[2]



---

१ एम घोरु उवसग्गु सहंतहो, पासहो सुक्क-झाणु चितंतहो।
मिच्छा-दंसणु ऍक्कु मुअंतहो, अट्ट-रुद्द वे झाण चयंतहो॥
... ...
लोयालोय-पयासणु सुय-गइ-सासणु जण-मण-णयणाणंदहो
पउमकित्ति-मुणि-णवियहो णर-सुर-महियहो णाणुप्पण्णु जिणिंदहो
—पासणाह चरिउ-१४।३०।१३२

२ तिलोयपण्णत्ती-४।७००.

तीर्थंकर जीवन

६

केवल ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् इंद्रादि द्वारा समवसरण की रचना की गई। भगवान् सिंहासन पर आसीन हुए। उद्यान रक्षक ने जा कर राजा अश्वसेन को सूचना दी कि उद्यान में भगवान् पार्श्व को केवल ज्ञान हुआ।[1] सूचना प्राप्त होते ही महाराजा अश्वसेन अत्यधिक प्रसन्न हुए। महारानी वामादेवी और अन्य परिजनों के साथ वे उसी क्षण प्रस्थित हुए। हजारों की जन-मेदनी के बीच भगवान् पार्श्व ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया।[2] श्रावक के द्वादश व्रतों का निरूपण किया। भगवान् के आध्यात्मिक प्रवचन को श्रवण कर जन-जन के मन में त्याग निष्ठा जागृत हुई। शताधिक व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की। महाराजा अश्वसेन ने भी अपने पुत्र हस्तिसेन को राज्य दे कर दीक्षा ग्रहण की और वामादेवी तथा प्रभावती ने भी संयम लिया।[3]

समवायाङ्ग और कल्पसूत्र के अनुसार पार्श्व के प्रथम शिष्य

---

१ (क) एत्थंतरे तुरियागयारामपालएहिं जिणकेवलालोयलाभनिवेयणेण वद्धाविओ सोवरोहो आससेणमहानरिंदो

—सिरिपासणाह चरियं—४।१९८.

(ख) त्रिषष्ठि—९।३.

२ चाउज्जामपहाणो गामकुलाईसु ममत्तपरिहारो।
इंदियदमणं दूरं विणिग्गहो तह कसायाणं ॥

—सिरिपासणाह. ४।२००.

३ त्रिषष्दि—९।३.

दिन्न (आर्यदत्त)[1] हुए और प्रथम शिष्या पुष्पचूला हुई।[2] प्रथम श्रावक सुनन्द हुए और प्रथम श्राविका सुनन्दा हुई।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार प्रथम शिष्य का नाम स्वयंभू है।[3] और प्रथम शिष्या का नाम सुलोका[4] या सुलोचना है। पद्मकीर्ति के अनुसार प्रथम शिष्या का नाम प्रभावती है।[5]

स्थानाङ्ग[6], समवायांङ्ग[7] और कल्पसूत्र[8] के अनुसार भगवान् पार्श्व के आठ गण और आठ गणधर थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शुभ, शुभघोष, वसिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यश।

---

१ (क) समवायाङ्ग—१५७ गा. ३९–४१.
(ख) पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्णपामोक्खाओ।
—कल्पसूत्र १५७.

२ (क) पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुष्फचूलापामोक्खाओ……
सुनन्दपामोक्खाणं…सुनन्दापामोक्खाणं……।
—कल्पसूत्र–१५७.
(ख) समवायाङ्ग—१५७।४२–४.

३ (क) …मल्लीणामो सुप्पहवरदत्ता सयंभुइंदभूदीओ।
उसहादीणं आदिमगणधरणामाणि एदाणि॥
—तिलोयपण्णत्ती–४।९६६. पृ. २७१. प्र. भाग.
(ख) एत्थंतरि गयउर–पुरहो णाहु,
णामें सयंभु थिर-थोर बाहु।
सो गणहरु पहिलउ जिणहो जाउ॥
—पासणाह चरिउ–१५।१२।१३८

४ तिलोयपण्णत्ती—४।११।८०.

५ तहो दुहिय पहावइ वर–कुमारि
अवयरिय जुवाणहँ णाइ मारि
सा अज्जिय संघहो वर–पहाण…
—पासणाह चरिउ. १५।१२।१३८

६ स्थानाङ्ग—६१७.

७ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणिअस्स अट्ठ गणा, अट्ठ गणहरा होत्था तं जहा–गाहा—
सुभे य सुभघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिधरे चेव, वीरभद्दे जसे इ य॥
समवायाङ्ग ८।८

८ कल्पसूत्र–१५६ पृ. २२३

आवश्यक निर्युक्ति[1], आवश्यक मलयगिरिवृत्ति[2], त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[3], सिरिपासणाह चरिउ[4], तिलोयपण्णत्ती प्रभृति ग्रन्थों में भगवान् पार्श्व के दस गणधर बताये हैं। इन गणधरों के नामों में भी कुछ अंतर है। जैसे कल्पसूत्र में द्वितीय गणधर का नाम आर्यघोष है तो समवायाङ्ग में शुभघोष है। कल्पसूत्र में प्रथम गणधर का नाम शुभ है तो सिरिपासनाह चरियं में शुभदत्त है।

गणधरों की संख्या में जो अन्तर है उसका समाधान करते हुए उपाध्याय विनयविजयजी ने लिखा है—दो गणधर अल्प आयुष्यवाले थे[5]। अतः समवायाङ्ग और कल्पसूत्र में आठ का उल्लेख है और अन्य ग्रन्थकारों ने उन दो को भी गिना है अतः दस का उल्लेख किया है।

इस प्रकार चतुर्विध तीर्थ की संस्थापना कर वे तीर्थंकर बने और संसार को धर्म का उपदेश दिया।

धर्म-देशना क्यों और किसलिए ?

प्रश्न यह है कि भगवान् पार्श्व केवल ज्ञान की दिव्य ज्योति पा चुके थे। वे स्वयं कृतकृत्य हो चुके थे, उनके लिए कुछ भी करना अवशेष नहीं था। वे चाहते तो एकान्त-शान्त स्थान में रह कर अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे किन्तु उन्होंने जो कैवल्य की महान् ऋद्धि प्राप्त की थी, अमृत का अक्षय कोष जो उन्हें मिला था, वह '**सव्वजग-**

---

१ आवश्यक निर्युक्ति—गा. २९०.
२ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति. पत्र २०९.
३ त्रिषष्टि—९।३.
४ (क) पुव्वभवनिकाइयगणहरनामगोया पसत्थलक्खणंकिथा सुभदत्त—अज्जघोस—वसिट्ठ—बंभ—सोम—सिरिधर—वारिसेण—भद्दजस—जयविजयनामाणो विसिट्ठ कुलसंभवा उवट्ठिया।
—सिरिपासणाह चरियं—४।२०२.
(ख) हेमविजय गणि के अनुसार दस गणधरों के नाम इस प्रकार हैं :—
आर्यदत्त आर्यघोषो वशिष्ठो ब्रह्मनामकः।
सोमश्च श्रीधरो वारिषेणो भद्रयशा जयः ॥
विजयश्चेति नामानो, दशैते पुरुषोत्तमाः।
—पार्श्वचरित्र— ५।४३७–४३८.
५ द्वौ अल्पायुष्कत्त्वादिकारणान्नोक्तौ इति टिप्पणके व्याख्यातम्।
—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पृ. ३८१.

जीवरक्खणदयट्टयाए ' की भव्य-भावना से सभी को अर्पित करना चाहते थे, किसी इच्छा, जिज्ञासा और स्वार्थ वश नहीं अपितु जैन साहित्य की मूल-भाषा के अनुसार विश्वहितंकररूप तीर्थंकर अपने स्वभावानुसार उपदेश प्रदान करते हैं। उनके पास जो ज्ञान रस, आनन्द रस है उसे चारों ओर छिटकते हुए, बरसाते हुए, आगे बढते हैं।

भगवान् पार्श्व जीवन के सच्चे और सफल कलाकार थे। उन्होंने भारतीय आत्मा को अज्ञानान्धकार में ठोकरें खाते हुए देखा। विषय-कषाय की आग में झुलसते हुए देखा। उनका दयालु हृदय द्रवित हो गया। वे सामाजिक मंच पर आये, केवल समस्याएँ ले कर ही नहीं अपितु समस्याओं का सही समाधान ले कर, वे केवल नाडी परीक्षक वैद्य ही नहीं थे अपितु एक कुशल चिकित्सक भी थे। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वही विश्व का सही पथ-प्रदर्शक हो सकता है, जो निष्काम और निस्वार्थ युग-द्रष्टा हो।

भगवान पार्श्व के गणधर

यह बताया जा चुका है कि भगवान् पार्श्व के दस गणधर थे। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है[1]।

१ शुभदत्त

शुभदत्त ये भगवान् पार्श्व के प्रथम गणधर थे, इनकी जन्मस्थली क्षेमपुरी थी। इनके पिता का नाम धनञ्जय और माता का नाम लीलावती था। इन्होंने संभूत मुनि के पास श्रावक धर्म ग्रहण किया था। माता-पिता के परलोकवासी होने पर संसार से विरक्ति हुई। अतः घर से बाहर निकल गये, और आश्रमपद नामक उद्यान में आये, भगवान् को केवलज्ञान होते ही ये वहाँ आये। प्रव्रज्या ग्रहण की और गणधर बने।

२ आर्यघोष

आर्यघोष ये द्वितीय गणधर थे। ये राजगृह नगर के निवासी थे और अमात्यपुत्र थे। भगवान् को केवलज्ञान हुआ उस समय अपने कितने ही स्नेहियों के साथ वहां आये और दीक्षा ले कर गणधर बने।

---

१ सिरीपासणाह चरियं प्रस्ताव ४ पृ. २०२, से प्रस्ताव ५ पृ. ४०२ तक

३ वसिष्ट

ये कांपिल्यपुर के अधिपति महेन्द्र राजा के पुत्र थे। बाल्यावस्था से ही इनकी ईच्छा प्रव्रज्या लेने की थी। कितने ही राजकुमारों के साथ भगवान् के प्रथम समवसरण में उपस्थित हुए, संयम ले कर गणधर हुए।

४ ब्रह्म

ये सुरपुर के अधिपति कनककेतु राजा के पुत्र थे। इनकी माता का नाम शान्तिमती था। ये भगवान के प्रथम परिपद् में उपस्थित हुए, प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर बने।

५ सोम

ये क्षितप्रतिष्ठित नगर के अधिपति थे। इनके पिता का नाम महीधर और माता का नाम रेवती था। युवावस्था आने पर इनका पाणिग्रहण चम्पकमाला के साथ हुआ था। इनके हरिशेखर नामक पुत्र भी हुआ था, किन्तु चार वर्ष की उम्र में ही उसका निधन हो गया। पत्नी चम्पकमाला भी रुग्ण हो गई और अन्त में उसका भी निधन हो गया, जिससे वैराग्य आया, भगवान् के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर दीक्षा ली और गणधर बने।

६ श्रीधर

श्रीधर ये पोतनपुर के राजकुमार थे। इनके पिता का नाम राजा नागबल था और माता का नाम महारानी सुन्दरी था। युवावस्था आने पर प्रसेनजित राजा की पुत्री राजमती के साथ पाणिग्रहण हुआ। वह आनन्द के साथ जीवन व्यतीत कर रहा था कि एक श्रेष्ठीपुत्र के द्वारा पूर्वभव की भगिनी के समाचार सुनाने से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। संसार से विरक्ति हुई। एक दिन वह राजा को दीक्षा ग्रहण करने की वार्ता कह रहा था कि उसी समय अन्तपुर में कोलाहल हुआ। कोलाहल का कारण जानने पर ज्ञात हुआ हि उसका लघुभ्राता अभी अभी क्रूर काल के गाल में समा गया है। भाई की मृत्यु के समाचारों से वैराग्य-भावना और प्रबल हुई और उसी समय भगवान् पार्श्व के पास आये, दीक्षा ग्रहण की, गणधर बने।

७ वारिसेन

वारिसेन ये भगवान् पार्श्व के सातवें गणधर हैं। ये विदेह देश की मिथिला नगरी के निवासी थे। इनके पिता का नाम नमिराजा और माता का नाम यशोधरा था। पूर्वभव के संस्कारों के कारण वारिसेन प्रारंभ से ही संसार से विरक्त थे। उनके अन्तर्मानस में प्रव्रज्या ग्रहण करने की वलवती इच्छा थी जिसके कारण माता पिता की आज्ञा ग्रहण कर अपने संगी साथी राजपुत्रों के साथ चले थे। भगवान् पार्श्व के केवलज्ञान की सूचना मिलते ही वे भगवान् के समवसरण में आये और उपदेश सुन कर प्रव्रज्या ली तथा गणधर वने।

८ भद्रयश

भद्रयश ये भी पोतनपुर के निवासी थे, इनके पिता का नाम समरसिंह था और माता का नाम पद्मा था। एक समय भद्रयश मत्त-कुंजर नामक उद्यान में गया। वहां पर एक व्यक्ति को नुकीले कीलों से वेष्टित देखा। करुणा से द्रवित हो कर उसकी कीलें निकालीं और जब उसे ज्ञात हुआ कि उस व्यक्ति के भाई ने ही पूर्वभव के वैर के कारण यह दशा की है, तो भद्रयश को संसार के स्वरूप का ज्ञान हुआ। वह अपने साथिओं के साथ भगवान् पार्श्व के पास आया, दीक्षा ले कर गणधर वना।

९, १० जय और विजय

जय और विजय ये दोनों सहोदर थे। श्रावस्ती के रहनेवाले थे। दोनों भाइयों में अत्यन्त स्नेह था। एक वार उन्हें स्वप्न आया कि उनका आयुष्य कम है। वे दोनों भाई दीक्षा ग्रहण करने के लिए भगवान् पार्श्व के पास पहुँचे, दीक्षा ग्रहण की, गणधर वने।

इस प्रकार भगवान् पार्श्व के प्रथम समवसरण में ही अनेकों व्यक्तियों के साथ दसों गणधरों ने दीक्षा ग्रहण की।

विहार

आवश्यक निर्युक्ति की सूचना के अनुसार भगवान् पार्श्व का विहार क्षेत्र मुख्यतः पूर्वभारत—जिसमें अंग, वंग, मगध आदि जनपद थे—

३ वसिष्ट

ये कांपिल्यपुर के अधिपति महेन्द्र राजा के पुत्र थे। बाल्यावस्था से ही इनकी ईच्छा प्रव्रज्या लेने की थी। कितने ही राजकुमारों के साथ भगवान् के प्रथम समवसरण में उपस्थित हुए, संयम ले कर गणधर हुए।

४ ब्रह्म

ये सुरपुर के अधिपति कनककेतु राजा के पुत्र थे। इनकी माता का नाम शान्तिमती था। ये भगवान के प्रथम परिषद् में उपस्थित हुए, प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर बने।

५ सोम

ये क्षितप्रतिष्ठित नगर के अधिपति थे। इनके पिता का नाम महीधर और माता का नाम रेवती था। युवावस्था आने पर इनका पाणिग्रहण चम्पकमाला के साथ हुआ था। इनके हरिशेखर नामक पुत्र भी हुआ था, किन्तु चार वर्ष की उम्र में ही उसका निधन हो गया। पत्नी चम्पकमाला भी रुग्ण हो गई और अन्त में उसका भी निधन हो गया, जिससे वैराग्य आया, भगवान् के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर दीक्षा ली और गणधर बने।

६ श्रीधर

श्रीधर ये पोतनपुर के राजकुमार थे। इनके पिता का नाम राजा नागबल था और माता का नाम महारानी सुन्दरी था। युवावस्था आने पर प्रसेनजित राजा की पुत्री राजमती के साथ पाणिग्रहण हुआ। वह आनन्द के साथ जीवन व्यतीत कर रहा था कि एक श्रेष्ठीपुत्र के द्वारा पूर्वभव की भगिनी के समाचार सुनाने से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। संसार से विरक्ति हुई। एक दिन वह राजा को दीक्षा ग्रहण करने की वार्ता कह रहा था कि उसी समय अन्तपुर में कोलाहल हुआ। कोलाहल का कारण जानने पर ज्ञात हुआ हि उसका लघुभ्राता अभी अभी क्रूर काल के गाल में समा गया है। भाई की मृत्यु के समाचारों से वैराग्य-भावना और प्रबल हुई और उसी समय भगवान् पार्श्व के पास आये, दीक्षा ग्रहण की, गणधर बने।

७ वारिसेन

वारिसेन ये [illegible] [illegible]
को [illegible] में [illegible] [illegible]
और माता [illegible]
वारिसेन प्रारंभ से ही [illegible]
ग्रहण करने की [illegible]
ग्रहण कर अपने संगी [illegible]
के केवलज्ञान की सूचना [illegible]
और उपदेश सुन कर प्रव्रज्या [illegible]

२३, १८–१९, १५१७६–८५

८ भद्रयश

भद्रयश ये भी पोतनपुर के [illegible]
नमरसिंह था और माता का नाम [illegible] था। [illegible]
कुंजर नामक उद्यान में गया। वहां पर [illegible]
से वेष्टित देखा। करुणा से द्रवित हो कर [illegible]
पर उसे ज्ञात हुआ कि उस व्यक्ति के भाई ने ही [illegible]
कारण वह क्या की है, तो भद्रयश को संसार के [illegible]
हुआ। वह अपने साथियों के साथ भगवान् पार्श्व के पास [illegible]
ले कर गणधर बना।

९, १० जय और विजय

जय और विजय ये दोनों सहोदर थे। [illegible]
दोनों भाइयों में अत्यन्त स्नेह था। एक बार उन्हें [illegible]
आयुष्य कम है। वे दोनों भाई दीक्षा ग्रहण करने के लिए [illegible]
पार्श्व के पास पहुंचे, दीक्षा ग्रहण की, गणधर बने।

इस प्रकार भगवान् पार्श्व के प्रथम [illegible]
साथियों के साथ दसों गणधरों ने दीक्षा ग्रहण की।

विहार

आवश्यक निर्युक्ति की सूचना के अनुसार भगवान् पार्श्व का
विहार क्षेत्र मुख्यतः पूर्वभारत–जिसमें अंग, वंग, मगध आदि जनपद थे–

रहा, किन्तु भारत के दक्षिण-पश्चिम अंचल को भी उन्होंने स्पर्श किया और कर्णाटक से सौराष्ट्र तक विहार किए, भगवान् पार्श्व ने अनार्य देशों में भी विहार किया था।[1] सूत्रकृताङ्ग की दृष्टि से अनार्य का अर्थ भाषा भेद भी होता है[2] इस अर्थ के प्रकाश में हम यह भी कह सकते हैं कि भगवान् ने उन देशों में भी विहार किया था जिनकी भाषा उनके मुख्य विहार क्षेत्र की भाषा से भिन्न थी।

सकलकीर्ति के अनुसार भगवान् पार्श्व ने कुरु[3], कौशल[4], काशी[5] सुम्ह, अवन्ती, पुण्ड्र, मालव, अंग[6], बंग[7], कलिंग[8], पांचाल[9], मगध[10], विदर्भ, भद्र, दशार्ण[11], सौराष्ट्र[12] कर्णाटक, कौंकण, मेवाड, लाट[13], द्राविड, काश्मीर, कच्छ, शाक, पल्लव, वत्स[14], आभीर देशों

---

१ मगहारायगिहाइसु मुणओ खेत्तारिएसु विहरिंसु।
उसभो नेमी पासो वीरो य अणारिएसुं पि।।
—आवश्यक निर्युक्ति गाथा २५६

२ सूत्रकृताङ्ग—१।१।२।१५.

३ इसकी राजधानी जैन ग्रन्थों में गजपुर (हस्तिनापुर) बताई है। जो स्थान वर्तमान में मेरठ जिले में है।

४ इसकी राजधानी कोशलपुर थी, जो वर्तमान में अयोध्या है।

५ इसकी राजधानी वाराणसी थी।

६ इसकी राजधानी चम्पा थी, भागलपुर जिले में आज भी इसी नामसे विख्यात है।

७ इसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी।

८ इसकी राजधानी कांचनपुर थी।

९ इसकी राजधानी काम्पिल्य थी, जो फरूखाबाद जिले में कायमगंज से पांच कोस दूरी पर हैं।

१० इसकी राजधानी राजगृह थी।

११ इसकी राजधानी मृत्तिकावती थी।

१२ इसकी राजधानी द्वारावती थी।

१३ इसकी राजधानी कोटिवर्ष थी।

१४ इसकी राजधानी कौशाम्बी थी
—देखिए विशेष परिचय के लिए वृहत् कल्पसूत्र सटीक आगमप्रभावक पुण्यविजय की सम्पादित भाग ३ पृ ३०—१२

में विहार किया था।[1] अन्य आचार्य भी इसी प्रकार भगवान के विहार का वर्णन करते हैं।[2]

---

१ कुरुकोशलकाशी सुह्यावंती पुंड्र मालवान्।
अंग-वंग कलिंगाख्य पंचालमगधाभिधान्॥
विदर्भ भद्र, शाख्य दर्शार्णादीन बहुन्जिनः।
विहार महाभूत्या सन्मार्गदेशिनोद्यतः॥
—सकलकीर्ति, पार्श्वनाथ चरित्र २३, १८–१९,
१५।७६–८५

२ (क) तत्त्वभेदप्रदानेन श्रीमत्पार्श्वप्रभर्महान्।
जनान् कौशलदेशीयान् कुशलान् संव्यधद्भृशम्॥
भिदन् मिथ्यातमोगाढं दिव्यध्वनिप्रदीपकैः।
काशीय देशीयकोकान् स चक्रे संयमपरान्॥
श्रीमान्मालवदेशीय भव्यलोकमुचातकान्।
देशनारसधाराभिः प्रीणयामास तीर्थराट्॥
अवंतीयान् जनान् सर्वान् मिथ्यात्वानलतापितान्।
स्याग्निर्वापयामास पार्श्वचन्द्रामृतैः॥
गौर्ज्जराणां जनानां हि पार्श्वसम्राट् जितेन्द्रियः।
मिथ्यात्वं जर्ज्जरंचक्रे सद्वचः शस्त्रघातनैः॥
महाव्रतधरान् कांश्चिन्महाराष्ट्रजनान् व्यधान्।
दीक्षोपदेशदानेन पार्श्वकल्पद्रुमस्तहा॥
पार्श्वभट्टारक श्रीमान् पादन्यासैर्विहारतः।
सर्वान् सौराष्ट्रलोकांश्च पवित्रान् चिद्रयेभृशं॥
अंगे वंगे कलिंगेऽथ कर्णाटे कौकणे तथा।
मेदपादं तथा लाटे लितिंगे द्राविडे तथा॥
काश्मिरे, मगधे, कच्छे विदर्भे, च दशाके।
पंचाले, पल्लवे, वत्से पराभीरे मनोहरे॥
इत्यार्यखण्डदेशेषु व्यक्षीणारसमहाघनी।
दर्शनज्ञानचारित्ररत्नाम्मेघोतयान्यलं॥
—पार्श्वनाथ चरित्र सर्ग १५–७६–८५.

(ख) त्रिषष्टि–९।४, पृ. २९३–३०८, (गुजराती अनुवाद)
(ग) सिरिपासणाह चरियं–सर्ग ८

दक्षिण में कर्णाटक, कोंकण, पल्लव, द्राविड प्रभृति देश उस समय अनार्य माने जाते थे। शाक भी अनार्य प्रदेश की गणना में था। इसकी पहिचान शाक्य देश या शाक्य-द्वीप से हो सकती है। शाक्य भूमि नेपाल की उपत्यका में है। वहाँ पर भगवान् पार्श्व के क़ाफी अनुयायी थे। महात्मा बुद्ध का चाचा स्वयं भगवान् पार्श्व का श्रावक था[1]। शाक्य प्रदेश में भगवान् पार्श्व का विहार हुआ हो यह बहुत संभव है[2]। अत्यन्त प्राचीन काल से भारत और शाक्य प्रदेश का मधुर संबंध रहा है[3]।

भगवान पार्श्व के विहार क्षेत्र के सम्बन्ध में आज विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है। जो है उसे भी विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता। किंतु फिर भी जो सामग्री एवं प्रमाण उपलब्ध होते हैं, उनसे यही ज्ञात होता है कि पूर्व भारत से ले कर दक्षिण एवं पश्चिम भारत तक उनका विहार क्षेत्र रहा है। और वे आर्यों एवं अनार्यों को समान रूप से उपदेश करते रहे हैं।

उपदेश

भगवान पार्श्व के उपदेशों का मुख्य आधार चतुर्याम संवर धर्म था। उसी मूल बिन्दु का विस्तार अनेक प्रवचनों में हुआ। किन्तु आज कोई भी ग्रन्थ उनके प्रवचनों का, उपदेशों का, संदर्शन करानेवाला प्राप्त नहीं है। अतः इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार करने की भी कोई गुँजाइश नहीं है।

परिनिर्वाण

भगवान् पार्श्व भारत के विविध अंचलों में धर्म की ज्योति जगाते हुए, हजारों व्यक्तियों को धर्म का परिज्ञान कराते हुए, अन्त में

---

१ अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा—भाग २. पृ. ५५९.

२ (क) हिस्टरी ऑफ नेपाल—पृ.—८३—८४.

(ख) भगवान् पार्श्वनाथ—(उत्तरार्ध)—पृ. २३२.

३ टॉड का राजस्थान, वेंकटेश्वर प्रेस, भाग १ पृ. २७.

वाराणसी[1] से आमलकप्पा[2] होते हुए सम्मेत शिखर पर पधारे और वहां पर तेतीस मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण कर श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन विशाखा नक्षत्र में एक मास का अनशन कर परि-निर्वाण को प्राप्त हुए ।[3]

श्वेताम्बर और दिगम्बरों के सभी ग्रन्थ भगवान पार्श्व का निर्वाण स्थल सम्मेत शिखर (सम्मेद शिखर) मानते हैं । जो पर्वत आज भी

---

१ इच्चेवं सुरणागणरविन्दारयविन्दथुणिज्जमाणो–वीसय–सावत्थि–गयपुर–मिहिला–कंपिल्ल–पोयणपुर–चम्पा–कायन्दी–सोत्तिमई–कोसलपुर–रयणपुरपमुहमहानयरेसु रायनिवहं सामन्तमन्तिसेट्ठिसेणावइपमुह–पहाणलोगं च पडिवोहिन्तो गामाणुगामेण विहर-माणो पत्तो वाणारसिं

सिरिपासणाह चरियं पृ. ५।४८१.

२ (क) भयवंपि पासनाहो विहरन्तो गामनगरमाईसु । ......
आमलकप्पानयरीए आगओ कोट्ठगम्मि उज्जाणे ।
सुरनिवहनिम्मियंमि तिसाल कलिए समोसरणे ॥

—सिरिपासणाह चरियं– ५।४८५.

(ख) बौद्ध ग्रन्थों में इसे बुलिय जाति की राजधानी कहा है। यह एक योजन विस्तृत थी । इसका सम्बन्ध वेठद्वीप के राजवंश से बताया गया है। श्री बील का कथन है कि वेठद्वीप का द्रोण ब्राह्मण शाहाबाद जिले में मसार से वैशाली जानेवाले मार्ग में रहता था। अतः अल्लकप्प वेठद्वीप से बहुत दूर न रहा होगा ।

—संयुक्त–निकाय, बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय– पृ. ७.

यह अल्लकप्प ही जैन साहित्य में वर्णित आमलकप्पा है ।—

३ (क) जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावण सुद्धे तस्स णं सावण सुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं सम्मेयसेलसिहरंसि अप्पचोत्तीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोग मुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि वग्घारियपाणी कालगए जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे

—कल्पसूत्र– १५९.

(ख) आचार्य गुणभद्र ने छत्तीस मुनियों के साथ परिनिर्वाण का उल्लेख किया है –
षट्त्रिंशन्मुनिभिः सार्धं प्रतिमायोगमास्थितः

—उत्तरपुराण– ७३।१५९ पृ. ४३९.

बिहार राज्य के हजारीबाग जिले में स्थित है और पार्श्वगिरि के नाम से विश्रुत है।

सभी श्वेताम्बर ग्रन्थ भगवान पार्श्व की निर्वाण तिथि श्रावण शुक्ला अष्टमी मानते हैं और दिगम्बर परम्परा श्रावण शुक्ला सप्तमी का प्रदोष काल मानती है।[1] पर दोनों परम्पराएँ भगवान की आयु सौ वर्ष मानने में एकमत है।

भगवान पार्श्व तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे। तिरासी रात्रि-दिन छद्मस्थ पर्याय में रहे और कुछ कम सत्तर वर्ष केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार उनका १०० वर्ष का आयु हुआ।

भगवान पार्श्व के संघ में आर्यदत्त आदि सोलह हजार साधु थे। पुष्पचूला आदि अडतीस हजार साध्वियाँ थीं। सुनन्द आदि एक लाख चौसठ हजार श्रमणोपासक थे, सुनन्दा आदि तीन लाख सत्तावीस हजार श्रमणोपासिकाएँ थी। तीन सौ चौदह पूर्व धारी थे। चौदह सौ अवधिज्ञानी थे। एक हजार केवली थे। ग्यारह सौ वैक्रिय लब्धिधारी थे। छ सौ ऋजुमति ज्ञानी थे। साढे सात सौ मनःपर्यव ज्ञानी थे। छह सौ वादी थे और बारह सौ अनुत्तरोपपातिक थे, अर्थात् अनुत्तर विमान में जाने वाले थे। भगवान् पार्श्व के समय में एक हजार श्रमण सिद्ध हुए और दो हजार श्रमणियाँ सिद्ध हुईं।[2]

भगवान पार्श्व के केवल ज्ञान होने के तीन वर्ष पश्चात् कोई साधक मोक्ष गया था और वह मुक्तिमार्ग उनके मोक्ष पधारने के पश्चात् भी चार पट्टपरम्परा तक चलता रहा।[3]

---

१ श्रावणे मासि सप्तम्यां सितपक्षे दिनादिमे।
भागे विशाखनक्षत्रे, ध्यान द्वय समाश्रयात्।
गुणस्थानद्वये स्थित्वा सम्मेदाचल मस्तके।
तत्कालोचित् कार्याणि वर्तयित्वा यथाक्रमम्।
निःशेषकर्मनिर्णाशान्निर्वाणे निश्चलं स्थितः॥

—उत्तरपुराण- ७३।१५६ से १५८.

२ कल्पसूत्र- सूत्र- १५७, पृ. २२३-२२४. (देवेन्द्र मुनि सम्पादित)

३ कल्पसूत्र- सूत्र- १५८, पृ. २२४-२२५. „ „

भगवान पार्श्व के तीर्थ में पन्द्रह प्रत्येक बुद्ध हुए[1]। उनके नाम इस प्रकार हैं :—

१ गाहावती पुत्र—तरुण	२ दगमाल
३ रामपुत्र	४ हरिगिरि
५ अम्बड	६ मातंग
७ वारत्तक	८ आर्द्रक
९ वर्द्धमान	१० वायु
११ पार्श्व	१२ पिंग
१३ महाशाल—पुत्र अरुण	१४ ऋषिगिरि
१५ उद्दालक	



१ पत्तेय बुद्धमिसिणो वीसं तित्थे अरिट्ठणेमिस्स ।
पासस्स य पण्णरस, वीरस्स विलीणमोहस्स ॥
—इसिभासियं पइण्ण संगहणी- गा. १.

भगवान पार्श्व की शिष्य संपदा | ७

भगवान् पार्श्व के आठ गणधरों का वर्णन पीछे कर ही चुके हैं। उनके अन्य भी अनेक शिष्य-शिष्याएँ हुई जिनका विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं है। ज्ञातासूत्र में भगवान् पार्श्व के पास दीक्षित अनेक साध्वियोंका वर्णन है जो यहाँ दिया जाता है–

भगवान् पार्श्व ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आमलकप्पा पधारे, आम्रशाल उद्यान में विराजे। उस समय काली,[1] राजी[2], रजनी,[3] विद्युत,[4] और मेघा[5] कुमारिकाओं ने भगवान् के पावन प्रवचन को सुन कर पुष्पचूला आर्या के पास दीक्षा ग्रहण की।

एक समय भगवान् पार्श्व श्रावस्ती पधारे, कोष्ठक उद्यान में

---

१ ......पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमाणसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अठ्ठतीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे जाव अंबतालवणे समोसढे.........तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुष्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयति। तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं कुमारिं सयमेव पव्वावेइ, जाव उवासंपज्जित्ता णं विहरइ।

ज्ञातासूत्र – २।१ पृ. ५८६–५९५.

२ ज्ञातृ धर्मकथा— २।१।२ पृ. ६००

३ ज्ञातृ धर्मकथा— २।१।३ पृ. ६०१

४ ज्ञातृ धर्मकथा— २।१।४ पृ. ६०१

५ ज्ञातृ धर्मकथा— २।१।५ पृ. ६०२

विराजे, उस समय सुंभ,[1] निसुंभा,[2] रंभा[3], निरंभा[4] और मदणा[5] आदि कुमारिकाओं ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

किसी समय भगवान् पार्श्व वाराणसी पधारे। उस समय इला[6] सतेरा[7], सौदामिनी,[8] इन्द्रा,[9] घना[10] और विद्युता[11] आदि श्रेष्ठी पुत्रियों ने संयम ग्रहण किया।

एक समय भगवान् पार्श्व चम्पानगरी में पधारे। पूर्णभद्र उद्यान में विराजे। उस समय रुचा[12], सुरुचा,[13] रुचांशा[14] रुचकावती,[15] रुचकान्ता[16] रुचप्रभा [17] ने संयम मार्ग स्वीकार किया।

---

१ सावत्थी णयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तू राया, सुंभे गाहावई, सुंभसिरी भारिया, सुंभा दारिया, सेसं जहा कालिया

— ज्ञातृधर्म कथा २।२।१ पृ. ६०४.

२ ज्ञातृधर्म कथा — २।२।२

३ ,, ,, — २।२।३

४ ,, ,, — २।२।४

५ ,, ,, — २।२।५

६ वाराणसीए णयरीए कामममहावणे चेइए, इले गाहावई, इलसिरी भारिया, इला दारिया सेसं जहा कालीए।

— ज्ञातासूत्र — २।३।१

७ ज्ञातृधर्म कथा — २।३।२

८ ,, ,, — २।३।३

९ ,, ,, — २।३।४

१० ,, ,, — २।३।५

११ ,, ,, — २।३।६

१२ चंपाए पुण्णभद्दे चेइए रुयए गाहावई, रुयगसिरी भारिया, रुया दारिया, सेसं तहेव —

ज्ञातृधर्म कथा २।४।१

१३ ज्ञातृधर्म कथा २।४।२

१४ ,, ,, — २।४।३

१५ ,, ,, — २।४।४

१६ ,, ,, — २।४।५

१७ ,, ,, — २।४।६

भगवान पार्श्व एक बार नागपुर पधारे। सहस्राम्रवन नामक उद्यान मे विराजे। उस समय भगवान के उपदेश को श्रवण कर १ कमला[1], २ कमलप्रभा,[2] ३ उत्पला,[3] ४ सुदर्शना[4] ५ रूपवती,[5] ६ बहुरूपा[6], ७ सुरूपा,[7] ८ सुभगा,[8] ९ पूर्णा[9], १० बहुपुत्रिका[10], ११ उत्तमा[11], १२ भारिका[12], १३ पद्मा,[13] १४ वसुमती[14] १५ कनका,[15] १६ कनकप्रभा[16] १७ अवतंसा,[17] १८ केतुमती,[18] १९ वज्रसेना,[19] २० रतिप्रिया,[20], २१ रोहिणी[21] २२ नवमिका,[22] २३ ह्री[23], २४ पुष्पवती[24], २५ भुजगा[25],

---

१ नागपुरे नयरे सहसंवणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए कमला दारिया पासस्स अरहओ अंतिए निक्खंता।

ज्ञातृधर्म कथा—२।५।१

२ ज्ञातृधर्म कथा — २।५।२
३ ,, ,, — २।५।३
४ ,, ,, — २।५।४
५ ,, ,, — २।५।५
६ ,, ,, — २।५।६
७ ,, ,, — २।५।७
८ ,, ,, — २।५।८
९ ,, ,, — २।५।९
१० ,, ,, — २।५।१०
११ ,, ,, — २।५।११
१२ ,, ,, — २।५।१२
१३ ,, ,, — २।५।१३
१४ ,, ,, — २।५।१४
१५ ,, ,, — २।५।१५
१६ ,, ,, — २।५।१६
१७ ,, ,, — २।५।१७
१८ ,, ,, — २।५।१८
१९ ,, ,, — २।५।१९
२० ,, ,, — २।५।२०
२१ ,, ,, — २।५।२१
२२ ,, ,, — २।५।२२
२३ ,, ,, — २।५।२३
२४ ,, ,, — २।५।२४
२५ ,, ,, — २।५।२५

२६ भुजंगवती[1], २७ महाकच्छा[2], २८ अपराजिता[3], २९ सुघोषा[4], ३० विमला,[5] ३१ सुस्वरा,[6] ३२ सरस्वती,[7] इन बत्तीस कुमारिकाओं ने दीक्षा ग्रहण की।

भगवान पार्श्व विचरण करते हुए साकेत पधारे। उत्तरकुरु उद्यान में विराजे। भगवान् के उपदेश से प्रभावित हो कर बत्तीस कुमारिकाओं ने दीक्षा ग्रहण की।[8]

भगवान पार्श्व अरक्खुरी नगरी में पधारे। वहां पर सूर्यप्रभा,[9] आतपा,[10] अर्चिमाली,[11] और प्रभंकरा[12] ने त्याग मार्ग को स्वीकार किया।

भगवान पार्श्व मथुरा पधारे, चन्द्रावतंसक उद्यान में विराजे, उस समय चन्द्रप्रभा[13], दीपीनाभा[14], अर्चिमाली[15], और प्रभंकरा[16] ने त्याग धर्म को अपनाया।

---

१ ज्ञातृधर्म कथा — २।५।२६
२ ,, ,, — २।५।२७
३ ,, ,, — २।५।२८
४ ,, ,, — २।५।२९
५ ,, ,, — २।५।३०
६ ,, ,, — २।५।३१
७ ,, ,, — २।५।३२
८ सागेयनयरे, उत्तरकुरुउज्जाणे माया-पिया धूया—नामनामया ......
ज्ञातृधर्म कथा २।६।१—३२ तक
९ अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्पभा दारिया...... ज्ञातृधर्म कथा—२।७।१
१० ज्ञातृधर्म कथा — २।७।२
११ ,, ,, — २।७।३
१२ ,, ,, — २।७।४
१३ महुराए नयरीए भंडवडेंसए उज्जाणे चंदप्पभे गाहावई, चंदसिरी भारिया, चंदप्पभा दारिया—
—ज्ञातृधर्म कथा— २।८।१.
१४ ज्ञातृधर्म कथा — २।८।२.
१५ ,, ,, — २।८।३.
१६ ,, ,, — २।८।४.

भगवान श्रावस्ती पधारे, वहाँपर पद्मा[1] और शिवा[2] ने संयम मार्ग की ओर कदम बढाया।

भगवान हस्तिनापुर पधारे, वहाँ सती[3] और अंजू[4] ने श्रमण धर्म को स्वीकार किया।

भगवान कांपिल्यपुर पधारे, वहाँ पर रोहिणी[5] और नवमिका[6] ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

भगवान साकेत पधारे, वहाँपर अचला[7] और अप्सरा[8] ने दीक्षा ग्रहण की।

भगवान पार्श्व वाराणसी पधारे वहाँ कृष्णा[9], और कृष्णरानी[10] ने और राजगृह में रामा[11] और रामरक्षिता[12] ने श्रावस्ती में वसु[13] और वसुगुप्ता[14] ने और कौसम्बी में वसुमित्रा[15] तथा वसुन्धरा[16] ने दीक्षा ग्रहण की।



१	ज्ञातृधर्म कथा –	२।९।१.
२	,, ,, –	२।९।२.
३	,, ,, –	२।९।३.
४	,, ,, –	२।९।४.
५	,, ,, –	२।९।५.
६	,, ,, –	२।९।६.
७	,, ,, –	२।९।७.
८	,, ,, –	२।९।८.
९	,, ,, –	२।१०।१.
१०	,, ,, –	२।१०।२.
११	,, ,, –	२।१०।३.
१२	,, ,, –	२।१०।४.
१३	,, ,, –	२।१०।५.
१४	,, ,, –	२।१०।६.
१५	,, ,, –	२।१०।७.
१६	,, ,, –	२।१०।८.

भगवान पार्श्व के अनुयायी   ८

आगम साहित्य में भगवान् पार्श्व के अनुयायियों को पार्श्वापत्यीय-'पासावच्चिज्ज' कहा गया है। पार्श्वापत्यीय शब्द की व्याख्या करते हुए टीकाकारों ने पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा लिखी है।[1]

पार्श्व के अनुयायियों के लिए 'पासत्थ' शब्द का प्रयोग भी प्रचलित था। भगवान महावीर ने जब चतुर्विध तीर्थ की संस्थापना की तब कितने ही पार्श्व के अनुयायी साधु शिथिलाचारी हो गये थे, अतः पासत्थ शब्द अपने मूल अर्थ को छोड़ कर शिथिलाचारी के लिए व्यवहृत होने लगा।[2]

---

१ (क) पार्श्वापत्यस्य– पार्श्वस्वामि शिष्यस्य अपत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः
—सूत्र. २।७.

(ख) पार्श्वापत्यानां– पार्श्वजिन शिष्याणामयं पार्श्वापत्यीयः
—भगवती– १।९.

(ग) पार्श्वनाथ शिष्य शिष्ये–
—स्थानांग– ९.

(घ) चातुर्यामिक साधो–
—भगवती– १५.

२ (क) उपदेश पद– ८६१, टीका

(ख) [illegible]
[illegible], बम्बई, [illegible]

(ग) [illegible]

भगवान श्रावस्ती पधारे, वहाँपर पद्मा[1] और शिवा[2] ने संयम मार्ग की ओर कदम बढाया।

भगवान हस्तिनापुर पधारे, वहाँ सती[3] और अंजू[4] ने श्रमण धर्म को स्वीकार किया।

भगवान कांपिल्यपुर पधारे, वहाँ पर रोहिणी[5] और नवमिका[6] ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

भगवान साकेत पधारे, वहाँपर अचला[7] और अप्सरा[8] ने दीक्षा ग्रहण की।

भगवान पार्श्व वाराणसी पधारे वहाँ कृष्णा[9], और कृष्णरानी[10] ने और राजगृह में रामा[11] और रामरक्षिता[12] ने श्रावस्ती में वसु[13] और वसुगुप्ता[14] ने और कौसम्बी में वसुमित्रा[15] तथा वसुन्धरा[16] ने दीक्षा ग्रहण की।



१ ज्ञातृधर्म कथा — २।९।१.
२ " " — २।९।२.
३ " " — २।९।३.
४ " " — २।९।४.
५ " " — २।९।५.
६ " " — २।९।६.
७ " " — २।९।७.
८ " " — २।९।८.
९ " " — २।१०।१.
१० " " — २।१०।२.
११ " " — २।१०।३.
१२ " " — २।१०।४.
१३ " " — २।१०।५.
१४ " " — २।१०।६.
१५ " " — २।१०।७.
१६ " " — २।१०।८.

चम्पानगरी का राजा जितशत्रु[1] और उसका मंत्री सुबुद्धि[2] भी पार्श्व परम्परा के ही थे।

इनके अतिरिक्त भी अनेक पार्श्वापत्य श्रमणोपासक रहे होंगे किन्तु उनके नाम और परिचय प्राप्त नहीं है।

पण्डित दलसुख मालवणिया का यह अभिमत है कि जितशत्रु राजा, सुबुद्धि प्रधान, चित्त सारथी, प्रदेशी राजा, सिद्धार्थ राजा, सुपार्श्व, नन्दि वर्धन, त्रिशलारानी, और सुदंसणा, ये पार्श्वापत्य थे, परन्तु ये भगवान महावीर के शासन में नहीं मिले,[3] पर हमारी दृष्टि से इनमें से कितने ही व्यक्ति तो भगवान् महावीर के तीर्थ संस्थापना के पूर्व ही परलोक वासी हो चुके थे और कितने ही श्रमण धर्म को स्वीकार कर चुके थे। किन्तु भगवान महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन और उनकी बहिन सुदंसणा ये भगवान महावीर के परिनिर्वाण तक जीवित थे।[4] भगवान महावीर और उनका सांसारिक भी अत्यन्त नैकट्य का सम्बन्ध था। ऐसी स्थिति में यह कैसे माना जा सकता है कि वह भगवान के शासन में न मिले हों।

यह पूर्ण सत्य है कि श्रमणों की तरह श्रावकों का महावीर के शासन में मिलने का वर्णन नहीं है। संभव है कि उनके व्रत आदि में किसी भी प्रकार का अन्तर न रहा हो, इस कारण कोई उल्लेख भी न आया हो, यदि अन्तर होता तो अवश्य ही उल्लेख होता। किन्तु कोई उल्लेख न होने से इस कल्पना का भी आखिर क्या आधार है कि वे भगवान महावीर के शासन से पृथक् रहे हों?

आगम, चूर्णि, टीका आदि साहित्य के अनुसार भगवान महावीर के समय में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के सम्बद्ध श्रमण आदि अनेक रूपों में विद्यमान थे। कुछ स्थविर, तपस्वी आदि थे, कुछ पार्श्वस्थ

---

१ ज्ञाताधर्मकथा– १।१२.
२ वही १।१२.
३ जैन प्रकाश महावीर उत्थान अंक—
४ (क) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका—सूत्र पत्र–१०१.
(ख) दीपमालिका व्याख्यान—पत्र–११५.
(ग) तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ. ३०३.

पं. सुखलालजी,[1] डाक्टर जगदीशचन्द्रजी जैन[2], डाक्टर मोहनलालजी मेहता[3] और पं. मुनि नथमलजी[4] प्रभृति अनेक विज्ञों ने राजा प्रदेशी के प्रतिबोधक केशी कुमार श्रमण को और गणधर गौतम के साथ सम्वाद करने वाले केशीकुमार श्रमण को एक माना है, पर हमारी दृष्टि से वे दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति रहे हैं। क्यों कि जो सम्राट् प्रदेशी को प्रबोध देने वाले केशीकुमार श्रमण हैं, वे चार ज्ञान के धारक थे।[5] और गणधर गौतम के साथ चर्चा करने वाले तीन ज्ञान के धारक थे।[6] यदि हम यह मान लें कि जिस समय गणधर गौतम के साथ चर्चा की गई थी उस समय वे तीन ज्ञान के धारक थे और बाद में चार ज्ञान के धारक हो गये होंगे, पर यह कथन भी युक्ति-युक्त नहीं है। क्यों कि यदि वे चार ज्ञान के धारक पश्चात् बने हैं तो श्रावस्ती नगरी में चित्त सारथी को चार याम का उपदेश किस प्रकार देते?[7] उनके नाम के साथ पार्श्वापत्यीय विशेषण कैसे लगता? अतः स्पष्ट है कि ये दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं। पर नाम साम्य होने से उन्हें एक मान लिया गया है, जो एक ऐतिहासिक भ्रम है।

(२) पार्श्वापत्य मुनिचन्द्र

भगवान महावीर छद्मस्थ काल में एकबार कलाय सन्निवेश में

---

१ दर्शन और चिन्तन. भ. पार्श्वनाथ का विरासत लेख —पृ. ५.

२ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास — भाग २ पृ. ५४–५५.

३ वही

४ उत्तरज्झयणाणि — भाग १ पृ. ३०१.

५ पासावच्चिज्जे केसीणामं कुमार समणे जाइसंपण्णे........चउद्दसपुव्वी चउनाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे
—रायपसेणइय पृ. २८३. पंडित बेचरदासजी सम्पादित

६ तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे।
केसी कुमार समणे विज्जाचरणपारगे॥
ओहिनाण सुए बुद्धे, सीससंघसमाउले।
गामाणुगामं रीयन्ते, सावत्थिं नगरिमागए॥
उत्तराध्ययन — २३–२।३

७ तए णं केसी कुमार समणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे महतिमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ।
रायपसेणइय पृ. २८३

श्रावक आदि के रूप में–जो कि अनेक चमत्कारी निमित्तों के ज्ञाता भी थे। भगवान महावीर के छद्मस्थ काल में इस प्रकार के स्थविरों व पार्श्वापत्य श्रावकों का सम्पर्क आता है। कुछ स्थविर निर्ग्रन्थ भगवान महावीर के तीर्थ स्थापन के बाद गणधर गौतम के साथ शंका समाधान कर के संघ में सम्मिलित होते हैं, कुछ स्वयं भगवान् महावीर के समवसरण में उपस्थित हो कर तत्त्व-जिज्ञासा करते हैं और अन्त में पंच-महाव्रत धर्म को अंगीकार करते हैं। उन सबका संक्षिप्त वर्णन हम यहाँ दे रहे हैं। विस्तार के लिए मूल ग्रन्थ देखने चाहिए।

१ कुमार केशी श्रमण

इतिहासकारों का अभिमत है कि सम्राट प्रदेशी प्रतिबोधक कुमार केशी श्रमण ये भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर थे। प्रथम पट्टधर आचार्य शुभदत्त थे, जो प्रथम गणधर थे, जिनका परिचय पूर्व दिया जा चुका है। उनके उत्तराधिकारी आचार्य हरिदत्त सुरि हुए, जिन्होंने वेदान्त-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य 'लोहिय' से शास्त्रार्थ किया, प्रतिबोध दे कर पाँच सौ शिष्यों को दीक्षित किया। उन नव दीक्षित श्रमणों ने सौराष्ट्र, तैलंग आदि प्रान्तों में विहार कर जैन शासन की अत्यधिक प्रभावना की। तीसरे पट्टधर आचार्य समुद्रसूरि थे, उन्हीं के समय 'विदेशी' नामक एक प्रभावशाली आचार्य ने उज्जैनी नगरी के अधिपति महाराजा जयसेन, उनकी महारानी अनंग सुन्दरी और उनके राजकुमार केशी को दीक्षित किया। आगे चल कर उन्हीं केशी श्रमण ने नास्तिकवादी राजा प्रदेशी को उसकी चिर-संचित शंकाओं का समाधान कर आस्तिक बनाया।[२] राजा प्रदेशी के प्रश्न और केशी श्रमण के मौलिक उत्तर राय पसेणिय नामक आगम में उट्टङ्कित हैं, जिज्ञासु पाठकों को वहाँ देखना चाहिए।

---

१ समरसिंह—पृष्ट, ७५,७६

२ केशिनामा तद–विनेयः यः प्रदेशी नरेश्वरम्।
प्रबोध्य नास्तिकाद् धर्माद् जैनधर्मेऽध्यरोपयत्।।
—नाभिनन्दोद्धार प्रबंध—१३६

पं. सुखलालजी,[1] डाक्टर जगदीशचन्द्रजी जैन[2], डाक्टर मोहनलालजी मेहता[3] और पं. मुनि नथमलजी[4] प्रभृति अनेक विज्ञों ने राजा प्रदेशी के प्रतिबोधक केशी कुमार श्रमण को और गणधर गौतम के साथ सम्वाद करने वाले केशीकुमार श्रमण को एक माना है, पर हमारी दृष्टि से वे दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति रहे हैं। क्योंकि जो सम्राट् प्रदेशी को प्रबोध देने वाले केशीकुमार श्रमण हैं, वे चार ज्ञान के धारक थे।[5] और गणधर गौतम के साथ चर्चा करने वाले तीन ज्ञान के धारक थे।[6] यदि हम यह मान लें कि जिस समय गणधर गौतम के साथ चर्चा की गई थी उस समय वे तीन ज्ञान के धारक थे और बाद में चार ज्ञान के धारक हो गये होंगे, पर यह कथन भी युक्ति-युक्त नहीं है। क्योंकि यदि वे चार ज्ञान के धारक पश्चात् बने हैं तो श्रावस्ती नगरी में चित्त सारथी को चार याम का उपदेश किस प्रकार देते?[7] उनके नाम के साथ पार्श्वापत्यीय विशेषण कैसे लगता? अतः स्पष्ट है कि वे दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं। पर नाम साम्य होने से उन्हें एक मान लिया गया है, जो एक ऐतिहासिक भ्रम है।

(२) पार्श्वापत्य मुनिचन्द्र

भगवान महावीर छद्मस्थ काल में एकबार कुमाराक सन्निवेश में

---

१ दर्शन और चिन्तन, भ. पार्श्वनाथ की विरासत [illegible]
२ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास — भाग २, पृ. ४८–४९.
३ वही
४ उत्तरज्झयणाणि — भाग १, पृ. १०१.
५ तए णं से केसीनामं कुमार समणे चउनाणी [illegible]
[illegible]
— रायपसेणइय पृ. १८१, पंडित बेचरदासजी सम्पादित
६ तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे ।
केसी कुमार समणे विज्जाचरणपारगे ॥
ओहिनाण सुए बुद्धे, सीससंघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, सावत्थिं नगरिमागए ॥
— उत्तराध्ययन २३/२–३
७ [illegible]
— रायपसेणइय पृ. [illegible]

विहार कर पत्रालय ग्राम से होते हुए कुमार सन्निवेश में आए।[1] चम्पक रमणीय उद्यान में ध्यानस्थ हुए। मध्याह्न में गोशालक ने भगवान से कहा—भगवन्। वस्ती में भिक्षा के लिए चलें। भगवान ने कहा आज मेरे उपवास है। मैं भिक्षा के लिए नहीं जाऊँगा।

गोशालक गाँव में आया। कूपनय नामक एक धनाढ्य कुंभकार की शाला में पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्य मुनिचन्द्र अपने शिष्य परिवार के साथ ठहरे हुए थे। वे जिनकल्प प्रतिमा की साधना कर रहे थे। वे अपने शिष्य[2] को गण का भार दे कर स्वयं स्वत्व—भावना में अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे।

गोशालक ने गाँव में घूमते-घूमते पार्श्वापत्य स्थविर मुनिचन्द्र को देखा, उसके आश्चर्य का पार न रहा। उसके मन में आया, ये कैसे साधु हैं जो रंग—विरंगे वस्त्र पहिनते हैं।[3] पात्र आदि अनेक उपकरण रखते हैं। गोशालक ने पूछा— आप कौन हैं?

उत्तर मिला—'हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं,' और पार्श्वनाथ के अनुयायी हैं।

गोशालक ने कहा—यह कैसी निर्ग्रन्थता? सब कुछ तो संग्रह कर रखा है। मेरे गुरु और मैं ही सच्चा निर्ग्रन्थ हूँ, तुम सब ने तो आजीविका चलाने के लिए यह ढोंग रच रखा है।

साधुओं ने कहा—जैसे तुम हो वैसे ही तुम्हारे धर्माचार्य भी होंगे?

इतना सुनते ही गोशालक कुपित हो गया। क्रोधाग्नि में जलते हुए उसने कहा— तुम मेरे धर्माचार्य की अवज्ञा करते हो। यदि मेरे

---

१ आवश्यक चूर्णि. पूर्वार्द्ध पत्र २८५.

२ त्रिषष्टि शलाकापुरुषचरित्र — १०।३, श्लो. ४५८ में उनका नाम 'वर्द्धन' दिया है; चूर्णि में केवल शिष्य लिखा है।

३ भगवान पार्श्व के साधु रंग-विरंगे वस्त्र पहिनते थे, देखिए— ...... वर्धमान विनेयानां हि रक्तादिवस्त्रानुज्ञाने वक्रजडत्वेन वस्त्ररञ्जानादिषु प्रवृत्तिरतिदुर्निवारैव स्यादिति न तन तदनुज्ञातं, पार्श्वशिस्यास्तु न तथेति रक्तादीनामपि।

—उत्तराध्ययन-- वादीवेताल शान्त्याचार्य टीका २३।३१ पत्र ५०३।२

(ख) कल्पसुबोधिका— पत्र ३.

[illegible] है जो [illegible] [illegible] हो जाए।

[illegible] ने [illegible] कुछ नहीं [illegible]। [illegible] साधु-संतों के [illegible] में भी [illegible] हैं, न [illegible] है और न [illegible] होता ही है।

[illegible] भगवान् महावीर के पास आया और बोला, भगवन् ! आप जैसे महान्, [illegible] को देखा है। मेरे [illegible] पर भी [illegible] नहीं [illegible]। भगवन् ! ऐसा क्यों ?

महावीर ने [illegible] है। जो [illegible] है, [illegible] पर नहीं [illegible]। वे [illegible] के मार्ग हैं।

[illegible] समय [illegible]। [illegible] के [illegible] में [illegible] और [illegible] के [illegible] है। [illegible] पर भी [illegible] के [illegible], [illegible] को [illegible] हो सके।

(१) व्यावहारिक दृष्टिकोण

[illegible]

बुद्ध और मुक्त हुए।[1]

आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य तथा टीका ग्रन्थों में ऐसे पार्श्वापत्यों का भी वर्णन मिलता है, जिन्होंने पहले श्रमण धर्म को स्वीकार किया था, पर संयमी जीवन का सम्यक् प्रकार से पालन न करने के कारण वह साधना से च्युत हो जाते हैं, और निमित्त आदि से अपनी जीविका चलाते हैं।

(४) उत्पल

एक बार भगवान महावीर छद्मस्थ काल में शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में पहुँचे। क्रूर यक्ष को उद्बोधन देने के लिए वे वहीं पर ध्यानस्थ खडे हो गये।[2] रात्रि का निबिड अंधकार, चारों ओर गंभीर सन्नाटा, कहीं भी मानव को आवाज नहीं, भयंकर अट्टहास कर यक्ष ने महावीर को लोमहर्षक यातनाएँ दीं, पर महावीर '**मेरुव्व वाएण अकंपमाणो**' — सुमेरू की तरह अकंपित थे। अर्धरात्रि तक एक के बाद एक उपद्रवों की लम्बी शृंखला चलती रही। यक्ष सोचता रहा—अब गिरा, अब मरा। पर महावीर की निर्भयता देख कर चरणों में गिर पडा। प्रभो! मैंने भयंकर अपराध किया है, मुझे क्षमा करो। भक्ति विह्वल हो कर

---

१ पच्छा तंबायंणाम गामं एंति, तत्थ णंदिसेणा णाम थेरा बहुस्सुया बहुपरिवारा, ते तत्थ जिणकप्पस्स पडिकम्म करेंति, पासावच्चिज्जा इमेवि बाहिं पडिमं ठिता, गोसालो अतिगतो ...... ते आयरिया तद्दिवसं चउक्के पडिमं ठायंति, पच्छा तहिं आरक्खियपुत्तेणं हिंडंतेणं चोरोत्ति भल्लएण आहतो, केवलणाणं.

—आवश्यक चूर्णि— पृ. २९१.

आचार्य इन्द्रविजयजी ने तीर्थंकर महावीर भाग १, पृ. २०३ में नन्दिसेण को अवधिज्ञान हुआ और वह मर कर देवलोक मे गये ऐसा लिखा है। प्रस्तुत कथन आवश्यक चूर्णि से मेल नहीं खाता है।

—लेखक

२ तस्सेव बोहणत्थं भयवं पडिमाए सण्ठिओ रत्तिं

—महावीर चरियं—९१२ (नेमिचंद)

[illegible] से धर्म की [illegible] करने लगा।[१] [illegible] उसकी [illegible] प्रकार [illegible] थी, वहाँ [illegible] की [illegible] के रूप में [illegible] हो गयी थी।

[illegible] गाँव में उत्पन्न ब्राह्मण [illegible] निमित्त [illegible] विद्वान् माना था।[६] वह निमित्त और ज्योतिष से अपनी आजीविका चलाता था। [illegible] कि भगवान महावीर [illegible] के मंदिर में [illegible] हैं, तो वह [illegible] और निमित्त [illegible] से [illegible] । [illegible] महावीर के दर्शन के लिए [illegible] । महावीर की [illegible] देख कर उसके आनंद का पार न रहा। उसने भगवान् की [illegible] का [illegible] भी [illegible] ।[१]

(५) [illegible]

एक बार भगवान महावीर [illegible] में गए। [illegible] [illegible] किया। [illegible] और [illegible] [illegible] थीं। [illegible]

[illegible]

बुद्ध और मुक्त हुए।[1]

आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य तथा टीका ग्रन्थों में ऐसे पार्श्वापत्यों का भी वर्णन मिलता है, जिन्होंने पहले श्रमण धर्म को स्वीकार किया था, पर संयमी जीवन का सम्यक् प्रकार से पालन न करने के कारण वह साधना से च्युत हो जाते हैं, और निमित्त आदि से अपनी जीविका चलाते हैं।

(४) उत्पल

एक बार भगवान महावीर छद्मस्थ काल में शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में पहुँचे। क्रूर यक्ष को उद्‌वोधन देने के लिए वे वहीं पर ध्यानस्थ खडे हो गये।[2] रात्रि का निविड अंधकार, चारों ओर गंभीर सन्नाटा, कहीं भी मानव की आवाज नहीं, भयंकर अट्टहास कर यक्ष ने महावीर को लोमहर्षक यातनाएं दीं, पर महावीर '**मेरुव्व वाएण अकंपमाणो**' – सुमेरू की तरह अकंपित थे। अर्धरात्रि तक एक के बाद एक उपद्रवों की लम्बी शृंखला चलती रही। यक्ष सोचता रहा–अब गिरा, अब मरा। पर महावीर की निर्भयता देख कर चरणों में गिर पडा। प्रभो! मैंने भयंकर अपराध किया है, मुझे क्षमा करो। भक्ति विह्वल हो कर

---

१ पच्छा तंवायंणाम गामं एंति, तत्थ णंदिसेणा णाम थेरा बहुस्सुया वहुपरिवारा, ते तत्थ जिणकप्पस्स पडिकम्म करेंति, पासावच्चिज्जा इमेवि वाहिं पडिमं ठिता, गोसालो अतिगतो ...... ते आयरिया तद्दिवसं चउक्के पडिमं ठायंति, पच्छा तहिं आरक्खियपुत्तेणं हिडंतेणं चोरोत्ति भल्लएण आहतो, केवलणाणं.

—आवश्यक चूर्णि–पृ. २९१.

आचार्य इन्द्रविजयजी ने तीर्थकर महावीर भाग १, पृ. २०३ में नन्दिसेण को अवधिज्ञान हुआ और वह मर कर देवलोक मे गये ऐसा लिखा है। प्रस्तुत कथन आवश्यक चूर्णि से मेल नहीं खाता है।

—लेखक

२ तस्सेव वोहणत्थं भयवं पडिमाए सण्ठिओ रत्तिं

—महावीर चरियं–९१२ (नेमिचंद)

मधुर स्वर से प्रभु की स्तुति करने लगा।[1] कुछ क्षणों के पूर्व उसकी भीषण हुँकार एवं अट्टहास से दिशाएँ कांप रही थीं, वहाँ अब उसके हृदय की भक्ति संगीत के रूप में मुखरित हो रही थी।

अस्थिक गाँव में उत्पल नामक पार्श्वापत्य निमित्त वेत्ता विद्वान् रहता था।[2] वह निमित्त और ज्योतिष से अपनी आजीविका चलाता था। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि भगवान महावीर शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में ध्यानस्थ हैं, तो वह रात्रिभर नींद न ले सका और विविध आशंकाओं से संत्रस्त रहा। प्रभात के पुण्य पलों में वह पुजारी इन्द्रशर्मा को लेकर महावीर के दर्शन के लिए पहुँचा। महावीर को ध्यानस्थ देख कर उसके आनंद का पार न रहा। उसने भगवान् को स्वप्नों का फलादेश भी कहा।[3]

(५) सोमा जयन्ती

एक बार भगवान महावीर चौराग सन्निवेश में गए। गोशालक भी साथ ही था। वहाँ के अधिकारियों ने गुप्तचर समझ कर उन्हें पकड लिया। अनेक यातनाएँ दीं, वहाँ पर उत्पल की दो बहिनें सोमा और जयन्ती रहती थीं। वे दोनों दीक्षित होने में असमर्थ थीं। अतः पार्श्वापत्यीय परिव्राजिकाओं के रूप में रहती थीं।[4] उन्होंने अधिकारियों को

---

१ तिहुयणपहुणो पुरओ गीयनट्टमहियं काउं पयत्तो
—महावीर चरियं – पृ. १५५ (गुणभद्र)

२ तत्थ य उप्पलो नाम पच्छाकडो परिव्वाओ पासावच्चिज्जो नेमित्तिओ भोयउप्पातसिमिणंतलिक्ख–अंग–सरलक्खण–वंजण–अट्टंग–महानिमित्त –जाणओ जणस्स सोऊण चिंतेति–
– आवश्यक चूर्णि – पत्र २७३

३ (क) भगवती – १६।६, सूत्र ५८० तृ. ख. पत्र १३०५।६
(ख) आवश्यक चूर्णि – २७४
(ग) त्रिषष्टि शलाका – १०।३।१४७
(घ) कल्पसूत्र – सुबोधिका टीका – पत्र २९४.

४ (क) ताव तत्थ सोमा जयंती य उप्पलस्स भगिणीओ पासावच्चिज्जा दो परिव्वाइयातो, न तरंति पवज्जं काउं ताहे परिव्वाइयत्तणं करेंति,...
—आवश्यक निर्युक्ति–मलयगिरिवृत्ति २७९
(ख) आवश्यक चूर्णि—पृ. २८६.

महावीर के सम्बन्ध में यथार्थ जानकारी दी, अधिकारियों ने महावीर और गोशालक को बंधन मुक्त कर दिया।[1]

६ विजया प्रगल्भा

एक बार भगवान् महावीर कूविय सन्निवेश पधारे। गोशालक भी उन के साथ ही था। वहाँ के अधिकारियों ने भी गुप्तचर समझ कर पकड़ लिया। वहाँ पर पार्श्वापत्यीय परम्परा की दो परिव्राजिकाएँ – विजया और प्रगल्भा रहती थीं। उन्हें ज्ञात होने पर वे घटना स्थल पर पहुँची और उन्हें छुडाया।

शोण, कलिन्द, कर्णिकार, अच्छिद्र, अग्निवैशान और अर्जुन ये छहों अष्टांग निमित्त के पारगामी, पार्श्वापत्य साधु थे[2]। श्रमण धर्म का पालन न कर सकने के कारण श्रमण परिधान का परित्याग कर निमित्त के बलपर आजीविका चलाते थे। गोशालक को उन्होंने ही निमित्त शास्त्र का अध्ययन कराया था। उपदेशमाला[3], आवश्यक चूर्णि[4], आवश्यक हरिभद्रीयवृत्ति[5], मलयगिरिवृत्ति[6] व महावीर चरियं[7] में उनको पासावच्चिज्जा लिखा है।

---

१ वही, पृ. २८६.
तत्थ विजया पगब्भा य दोन्नि पासनाहं तेवासिणीतो परिव्वाइयातो, लोगस्स पासे सोऊण तित्थगरो पव्वइयो......
— आवश्यक निर्युक्ति, वृत्ति २८२

२ श्री पार्श्वशिष्या अष्टांगनिमित्त ज्ञान पंडिताः
गोशालस्य मिलितः षडमी प्रोज्जितव्रताः
नाम्ना शोणः कलिन्दोऽन्यः कर्णिकारोऽपरः पुनः
अच्छिद्रोऽथाग्निवेशामोऽथार्जुनः पञ्चमोत्तरः।
तेऽप्यारव्युरष्टांग–महानिमित्तं तस्य सौहृदात्॥
—त्रिषष्टि – १०।४।१३४–३५–३६. पत्र–४५।२

३ उपदेशमाला दोघट्टी विशेष वृत्ति प. ३२०.
४ आवश्यक चूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र २९९.
५ पत्र – २१५, –२.
६ पत्र – २८७, –१
७ (क) महावीर चरियं – नेमिचन्द्र – श्लो. ९३. पत्र. ४६–१.
(ख) महावीर चरियं – गुणचन्द्र – ६. पत्र. २९३–२.

(७) श्रमण केशीकुमार

मिथिला से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान महावीर हस्तिनापुर की ओर पधारे। गणधर गौतम अपने शिष्य समुदाय सहित श्रावस्ती पधारे। कौष्ठक उद्यान में ठहरे।[1] उसी नगरी के बाहर एक ओर तिन्दुक उद्यान था, वहाँ पर पार्श्वसंतानीय निर्ग्रन्थ केशीकुमार श्रमण अपने शिष्यों सहित ठहरे हुए थे। श्रमण केशीकुमार, कमारावस्था में ही दीक्षित हो चुके थे। वे ज्ञान और चारित्र में पारगामी थे, मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञानों के धारक थे[2]।

दोनों के शिष्य समुदाय के अन्तर्मानस में एक दूसरे का भिन्नाचार देख कर कुछ शंकाएँ उद्बुद्ध हुई। हमारा धर्म कैसा है? और इनका धर्म कैसा है? आचार–धर्म–प्रणिधि हमारी कैसी है, इनकी कैसी है? पुरुषादानी पार्श्व ने चातुर्याम धर्म का उपदेश किया है और महामुनि वर्धमान ने पञ्च शिक्षा रूप धर्म का प्रतिपादन किया है। एक लक्ष्य वालों में यह भेद कैसे? एक ने सचेलक धर्म का उपदेश किया, दूसरे ने अचेलक का।[3]

अपने शिष्यों की आशंकाओं से उत्प्रेरित हो कर दोनों ही ने मिलने का निश्चय किया। गौतम अपने शिष्य वर्ग सहित तिन्दुक उद्यान में आये जहाँ पर केशी श्रमण ठहरे हुए थे।[4] गौतम को आते हुए देख कर श्रमण केशीकुमार ने उनका भक्ति–बहुमान पूर्वक स्वागत किया।[5] अपने द्वारा याचित पलाल, कुश तृण आदि के आसन गौतम के सम्मुख प्रस्तुत किये।[6] उस समय अनेक पाखण्डी और कुतुहल प्रेमी व्यक्ति भी वहाँ पर एकत्रित हो गये।[7] केशीकुमार श्रमण एवं गणधर गौतम का

---

१ उत्तराध्ययन – २३।६–७–८

२ उत्तराध्ययन – २३।२–३–४.

३ उत्तराध्ययन – २३।१०-११-१२-१३.

४ उत्तराध्ययन – २३।१५

५ उत्तराध्ययन – २३।१६

६ उत्तराध्ययन – २३।१७

७ उत्तराध्ययन – २३।१८-१९.

वह ऐतिहासिक संवाद उत्तराध्ययन सूत्र (२३) में केसी-गोयमीयं नाम से संकलित है, जिसका महत्त्वपूर्ण कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है।

गौतम से अनुमति प्राप्त कर केशीकुमार ने कहा—"महाभाग ! महामुनि वर्धमान ने पाँच शिक्षा रूप धर्म का उपदेश किया है जब कि महामुनि पार्श्व ने चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया है। मेधाविन् ! एक ही कर्म में प्रवृत्त होने वाले साधकों के धर्म में विशेष भेद होने का क्या कारण है ? इस प्रकार धर्म में अन्तर हो जाने पर क्या आपको संशय नहीं होता ?[1]"

गौतम—जिस धर्म में जीवादि तत्त्वों का विनिश्चय किया जाता है, उसके तत्त्व को प्रज्ञा ही देख सकती है। काल स्वभाव से प्रथम तीर्थंकर के श्रमण ऋजु जड, और अन्तिम तीर्थंकर के मुनि वक्र जड हैं। किन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनि ऋजुप्राज्ञ है, यही कारण है कि धर्म के दो भेद हैं। प्रथम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प दुर्विशोध्य और अन्तिम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प दुरनुपालक होता है। परन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों का कल्प सुविशोध्य तथा सुपालक होता है।[2]

केशीकुमार—गौतम ! आपने मेरी जिज्ञासा का समाधान कर दिया, अब द्वितीय प्रश्न का उत्तर भी प्रदान करें। वर्धमान स्वामी ने अचेलक[3] धर्म का उपदेश दिया है और महामुनि पार्श्व ने सचेलक धर्म का प्रतिपादन किया है। एक ही कार्य में प्रवृत्त होने वालों में यह अन्तर क्यों ? इसमें विशेष हेतु क्या है ? हे यशस्विन् ! इस प्रकार

---

१ उत्तराध्ययन — २३।२२-२३-२४.

२ उत्तराध्ययन — २३।२५-२६-२७.

३ 'अचेलकश्च उक्तन्यायेनाविद्यमानचेलकः कुत्सितचेलको वा यो धर्मो वर्धमानेन देशित इत्यपेक्ष्यते तथा' जो इमो त्ति पूर्ववद् यश्चायं सान्तराणि—वर्धमान स्वामिसत्कयति वस्त्रापेक्षया कस्यचित्कदाचिन्मानवर्ण विशेषतो विशेषितानि उत्तराणि च महाधनमूल्यतया प्रधानानि प्रक्रमाद्वस्त्राणि यस्मिन्नसौ सान्तरोत्तरो धर्मः पार्श्वेन देशित इतीहापेक्ष्यते।

—उत्तराध्ययन बृहद्वृत्तीय प. ५०९.

वेश (लिंग) में अन्तर हो जाने पर क्या आपके अन्तर्मानस में विप्रत्यय उत्पन्न नहीं होता[1] ?

गौतम – लोक में प्रत्यय के लिए, वर्षादि ऋतुओं में संयम की रक्षा के लिए, संयम यात्रा के निर्वाह के लिए, ज्ञानादि ग्रहण करने के लिए अथवा 'यह श्रमण है' इस पहचान के लिए वेश (लिंग) का प्रयोजन है। भगवन् ! वस्तुतः दोनों ही तीर्थंकरों की प्रतिज्ञा तो यही है कि निश्चय में मोक्ष के सद्भूत साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही हैं"।[2]

केशीकुमार – महाभाग ! आप अनेक सहस्र शत्रुओं के बीच खडे हैं। वह शत्रु आपको जीतने के लिए आपके अभिमुख आ रहे हैं। आपने उन शत्रुओं को किस प्रकार जीता है ?[3]

गौतम – जब मैंने एक शत्रु को जीत लिया, पाँच शत्रु जीते गये। पाँच शत्रुओं के जीते जाने पर दस, और इसी तरह मैंने सहस्रों शत्रुओं को जीत लिया।[4]

केशीकुमार – वे शत्रु कौन हैं ?

गौतम – महामुने ! बहिर्भूत आत्मा, चार कषाय, व पाँच इंद्रियाँ शत्रु हैं, उन्हें जीत कर मैं बिचरता हूँ।[5]

केशीकुमार – मुने ! लोक में अनेक जीव पाशवद्ध देखे जाते हैं, किन्तु आप पाशमुक्त और लघुभूत हो कर कैसे विचरते हैं ?[6]

गौतम – मुने ! मैं उन पाशों को सभी तरह से छेदन कर तथा सोपाय विनष्ट कर मुक्तपाश और लघुभूत हो कर विचरता हूँ।[7]

केशीकुमार – भन्ते ! वे पाश कौन से हैं ?

---

१ उत्तराध्ययन – २३।२९-३०.
२ उत्तराध्ययन – २३।३२-३३.
३ उत्तराध्ययन – २३।३५.
४ उत्तराध्ययन – २३।३६.
५ उत्तराध्ययन – २३।३८.
६ उत्तराध्ययन – २३।४०.
७ उत्तराध्ययन – २३।४१.

गौतम – भगवन् ! राग, द्वेष और तीव्र स्नेहरूप पाश हैं, जो वडे भयंकर हैं। इनका सम्यक् च्छेदन कर मैं यथाक्रम विचरण करता हूँ।[1]

केशीकुमार – गौतम ! अन्तःकरण की गहराई से उद्भूत लता जिसका फल परिणाम अत्यन्त विष-सन्निभ है, उसे आपने किस प्रकार उखाडा ?[2]

गौतम – मैंने उस लता का सर्वतोभावेन छेदन कर दिया है तथा उसे खण्ड–खण्ड कर समूल उखाड कर फेंक दिया है, एतदर्थ मैं विषसन्निभ फलों के भक्षण से सर्वथा मुक्त हो गया हूँ।

केशीकुमार – महाभाग ! वह लता कौनसी है ?

गौतम – महामुने ! संसार में तृष्णा लता बहुत भयंकर है और दारुण फल देने वाली है। उसका न्यायपूर्वक उच्छेद कर मैं विचरता हूँ।[3]

केशीकुमार – मेधाविन् ! शरीर में घोर और प्रचंड अग्नि प्रज्वलित हो रही है। वह शरीर को भस्मसात करने वाली है। आपने उसे कैसे शान्त किया, कैसे वुझाया ?[4]

गौतम – तपस्विन् ! महामेघ से प्रसूत उत्तम और पवित्र जल को ग्रहण कर मैं उस अग्नि को सींचता रहा हूँ, अतः सिंचित की गई अग्नि मुझे नहीं जलाती।[5]

केशीकुमार – महाभाग ! वह अग्नि और जल कौनसा कहा गया है ?

गौतम – महामुने ! कषाय अग्नि है श्रुत, शील और तप जल है। श्रुत जलधारा से अभिहत वह अग्नि मुझे नहीं जलाती।

---

१ उत्तराध्ययन – २३।४३.
२ उत्तराध्ययन – २३।४५.
३ उत्तराध्ययन— २३।४६–४८
४ उत्तराध्ययन— २३।५०
५ उत्तराध्ययन— २३।५१

केशीकुमार – मुनिपुंगव ! यह साहसिक भीम, दुष्ट, अश्व चारों ओर भाग रहा है। उस पर चढे हुए भी आप उसके द्वारा उन्मार्ग कैसे नहीं ले जाये गये ? ।[1]

गौतम – तपस्विन् ! भागते हुए अश्व को मैं श्रुत रूप-रस्सी से बाँधे रखता हूँ। एतदर्थ वह उन्मार्ग में गमन नहीं करता, अपितु, सन्मार्ग में ही प्रवृत्त रहता है।[2]

केशीकुमार – श्रीमन् ! आप अश्व किसे कहते हैं ?

गौतम – विज्ञवर ! मन ही दुःसाहसिक व भीम अश्व है। वही चारों ओर भागता है। मैं कन्थक अश्व की तरह धर्म-शिक्षा के द्वारा उसका निग्रह करता हूँ।[3]

केशीकुमार – व्रतिवर ! संसार में ऐसे बहुत से कुमार्ग है जिन पर चलने से जीव सन्मार्ग से च्युत हो जाता है, किन्तु आप सन्मार्ग पर चलने पर भी विचलित नहीं होते ?[4]

गौतम – मुनिपुङ्गव ! सन्मार्ग में गमन करने वालों व उन्मार्ग में प्रस्थान करने वालों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अतः मैं सन्मार्ग से हटता नहीं।[5]

केशीकुमार – व्रतिवर ! वह सन्मार्ग और उन्मार्ग कौनसा है ?

गौतम – महर्षे ! कु-प्रवचन को माननेवाले सभी पाखण्डी उन्मार्ग में प्रस्थित है। सन्मार्ग तो जिन-भाषित है। और निश्चय रूप से वही उत्तम मार्ग है।[6]

केशीकुमार – यतिराज ! महान् पानी के प्रवाह में बहते हुए प्राणियों के लिए शरण और प्रतिष्ठा रूप द्वीप आप किसे कहते हैं।[7]

---

१ उत्तराध्ययन— २३।५५
२ उत्तराध्ययन— २३।५६
३ उत्तराध्ययन— २३।५८
४ उत्तराध्ययन— २३।६०
५ उत्तराध्ययन— २३।६१
६ उत्तराध्ययन— २३।६३
७ उत्तराध्ययन— २३।६५

गौतम – महाप्राज्ञ ! एक महाद्वीप है। अत्यंत विस्तृत है। पानी के प्रबल प्रवाह की भी वहाँ गति नहीं है।

केशीकुमार – वह महाद्वीप कौनसा है ?

गौतम –, ऋषिवर ! जरा मरण के वेग से डुवते हुए प्राणियों के लिए धर्मद्वीप प्रतिष्ठा रूप है और उसमें जाना उत्तम शरण रूप है[1] ?

केशीकुमार :– महाप्रवाह वाले समुद्र में एक नौका विपरीत रूप से चारों ओर भाग रही है। आप उसमें आरूढ हो रहे हैं, फिर वताइए आप पार कैसे जा सकेंगे[2] ?

गौतम – छिद्रयुक्त नौका पारगामी नहीं होती, किन्तु अच्छिद्र नौका ही पार पहुँचाने में समर्थ होती है[3]।

केशीकुमार – वह नौका कौनसी है ?

गौतम – ऋषिवर ! शरीर नौका है। आत्मा नाविक है। संसार समुद्र है, जिसे महर्षि जन सहजतया ही तैरते हैं[4]।

केशीकुमार – बहुत सारे प्राणी घोर अंधकार में हैं। इन प्राणियों के लिए लोक में उद्योत कौन करता है[5] ?

गौतम – उदित हुआ सूर्य लोक में सव प्राणियों के लिए उद्योत करता है।

केशीकुमार – वह सूर्य कौनसा है ?

गौतम – जिनका संसार नष्ट हो चुका है, ऐसे सर्वज्ञ जिन भास्कर का उदय हो चुका है। वे ही सारे विश्व में उद्योत करते हैं[6]।

---

१ उत्तराध्ययन— २३।६८
२ उत्तराध्ययन— २३।७०
३ उत्तराध्ययन— २३।७१
४ उत्तराध्ययन— २३।७३
५ उत्तराध्ययन— २३।७५
६ उत्तराध्ययन— २३।७८

केशीकुमार – शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीडित प्राणियों के लिए क्षेम और शिवरूप तथा बाधा रहित आप कौनसा स्थान मानते हैं।?[1]

गौतम – लोक के अग्रभाग में एक ध्रुव स्थान है, जहाँ जरा, मरण, और व्याधि नहीं हैं, जहाँ पर आरोहण करना नितान्त दुष्कर है।[2]

केशीकुमार – वह कौनसा स्थान है ?

गौतम – महर्षियों ने जिस स्थान को प्राप्त किया है, वह निर्वाण, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अव्याबाध इन नामों से प्रसिद्ध है। वह स्थान शाश्वत वास का है, लोक के अग्र भाग में स्थित है और दुरारोह है। उसे प्राप्त कर भव परम्परा का अन्त करने वाले मुनिजन चिन्तन मुक्त हो जाते हैं।[3]

चर्चा का उपसंहार करते हुए केशी कुमार श्रमण ने कहा—हे महामुने ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरे संशयों को नष्ट कर दिया है। हे संशयातीत ! हे सर्वसूत्र महोदधि ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।[4]

गणधर गौतम को नमस्कार करने के पश्चात् कुमार केशीश्रमण ने अपने शिष्य समुदाय सहित, पंचमहाव्रत रूप धर्म को भाव से ग्रहण किया और भगवान महावीर के भिक्षु संघ में प्रविष्ट हुए।[5]

(८) पार्श्वापत्य उदक पेढाल

राजगृह नगर के ईशान दिशा में शताधिक गगन चुम्बी उच्च प्रासादों से सुशोभित नालन्दा एक उपनगर था। वहाँ 'लेव' नामक एक श्रीमन्त था, जिसकी निर्ग्रन्थ प्रवचन पर अपार आस्था थी। वह श्रमण

---

१ उत्तराध्ययन — २३।८०
२ उत्तराध्ययन — २३।८१
३ उत्तराध्ययन — २३।८३–८४
४ उत्तराध्ययन — २३।८६.
५ उत्तराध्ययन — २३।८७.

संस्कृति का परम उपासक था। उसकी 'शेष द्रविका' नामक एक उदकशाला थी, उसी के सन्निकट हस्तियाम नामक उद्यान था। भगवान् महावीर अपने शिष्य समुदाय सहित वहाँ ठहरे हुए थे। उस समय पार्श्वापत्यीय मेतार्य गोत्रीय, पेढालपुत्र उदक नामक निर्ग्रन्थ भी वहीं थे। वे गणधर गौतम से मिले, जिज्ञासाएं प्रस्तुत कीं, गौतम की आज्ञा से उन्होंने पूछा–"आपके प्रवचन का उपदेश करनें वाले कुमार पुत्रीय श्रमण अपने पास व्रतादि नियमों को लेने वाले श्रमणोपासकों को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं।[1] 'राजाज्ञादि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाँधने–छोडने के अतिरिक्त मैं त्रस्त जीवों की हिंसा नहीं करूंगा।' आर्य इस तरह का प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है। जो इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं, वे दुष्प्रत्याख्यान कराते हैं। इस प्रकार का प्रत्याख्यान करने और कराने वाले अपनी प्रतिज्ञा में अतिचार लगाते हैं। क्यों कि स्थावर जीव मरकर त्रस रूप में उत्पन्न होते हैं और त्रस जीव मर कर स्थावर रूप में भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरह जो जीव 'त्रसरूप' में अघात्य थे, वे ही स्थावर रूप में जन्म ग्रहण करने के पश्चात् 'घात्य' हो जाते हैं। एतदर्थ प्रत्याख्यान सविशेष करना और कराना चाहिए। "राजाज्ञादि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बांधने और छोडने के अतिरिक्त मैं त्रसभूत जीवों की हिंसा नहीं करूंगा"। इस प्रकार 'भूत' इस विशेषण के सामर्थ्य से उक्त दोषापत्ति नहीं होती। जो क्रोध अथवा लोभ से दूसरों को निर्विशेषण प्रत्याख्यान कराते हैं, वह भी उचित नहीं है? कहिए गौतम, "मेरी बात आप को तर्क–युक्त लगी न?"

गौतम –आयुष्यमन् उदक। तुम्हारा कथन युक्ति–युक्त नहीं है। मेरी दृष्टि से तो इस प्रकार कहने वाला श्रमण—ब्राह्मण यथार्थ भाषा नहीं बोलता, वह अनुतापिनी भाषा बोलता है और श्रमण–ब्राह्मणों पर मिथ्या आरोप लगाता है।, यहाँ तक कि प्राणी–विशेष की हिंसा को त्यागने वाले को भी दोषी बतलाता है। क्यों कि संसारी जीव त्रसकाय

---

१ रायगिहे नामं नयरे होत्था ...... तत्थणं नालंदाए वाहिरियाए लेवे नामं गाहावई होत्था...... से णं लेवे नामं गाहावई समणोवासए यावि होत्था।

से स्थावर में उत्पन्न होते हैं और स्थावर से त्रस में। जब वह त्रस में उत्पन्न होते हैं, तब त्रस कहलाते हैं। जिसने त्रस हिंसा का त्याग किया है उसके लिए वह अघात्य होते हैं। एतदर्थ प्रत्याख्यान में 'भूत' विशेषण लगाने की आवश्यकता नहीं है।

उदक — आयुष्मन् गौतम ! आप त्रस का अर्थ क्या करते हैं ? 'त्रसप्राण वह त्रस' है, यह अर्थ करते है या अन्य ?

गौतम — आयुष्मन् उदक ! जिन जीवों को आप 'त्रस भूत प्राण' कहते हैं उन्हीं को हम त्रस प्राण कहते हैं। जिन्हें हम त्रस प्राण कहते हैं उन्हीं को आप 'त्रस भूत प्राण' कहते हैं। ये दोनों तुल्यार्थक हैं, किन्तु आर्य उदक ! आपके विचार में इन दो में से 'त्रसभूत प्राण' यह व्युत्पत्ति निर्दोष है और 'त्रस प्राण त्रस' यह व्युत्पत्ति सदोष है। किन्तु इनमें वास्तविक भेद नहीं है। इस प्रकार दो वाक्यों में से एक का खण्डन करना और दूसरे का मण्डन करना, यह कैसा न्याय है ?

कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जो कहते हैं कि हम गृहस्थाश्रम का त्याग कर श्रामण्य धर्म ग्रहण करने में समर्थ नहीं है, अभी हम श्रावक धर्म स्वीकार करते हैं, पश्चात् समय आने पर श्रमण धर्म स्वीकार करेंगे, वे अपनी अविरतिमय प्रवृत्तियों को मर्यादित करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि– 'राजाज्ञादि कारण से गृह–पति अथवा चोर के बांधने व छोडने के अतिरिक्त हम त्रस जीवों की हिंसा नहीं करेंगे' प्रस्तुत प्रतिज्ञा भी उनके जीवन की निर्मलता का कारण है।

आर्य उदक ! आपका यह अभिमत है कि त्रस मर कर स्थावर होते हैं, अतः त्रस हिंसा के प्रत्याख्यानी के हाथ से उन जीवों की हिंसा होने से उसके प्रत्याख्यान का भंग हो जाता है, यह कथन उचित नहीं है। क्यों कि त्रस नाम कर्म के उदय से ही जीव त्रस कहलाते हैं। जब त्रस गति का आयु क्षीण हो जाता है तब वे त्रस काय की स्थिति को छोड कर स्थावर में जा कर उत्पन्न होते हैं, उस समय उन में स्थावर नाम कर्म का उदय होता है और वे जीव स्थावर कायिक कहलाते हैं। इसी तरह स्थावर काय के जीव वहाँ का आयु पूर्ण कर जब त्रसकाय में

उत्पन्न होते हैं तब वे त्रस कहलाते हैं, प्राण भी कहलाते हैं, उनका शरीर बडा होता है और आयुष्य स्थिति भी लम्बी होती है।

उदक – आयुष्मन् गौतम ! ऐसा भी कभी समय आ सकता है जब सब के सब त्रस जीव स्थावर रूप में उत्पन्न हों, तब त्रस जीव की हिंसा न करने वाले श्रमणोपासक का 'त्रस हिंसा प्रत्याख्यान' किस प्रकार रह सकेगा ? क्यों कि जिन जीवों की हिंसा का उसने प्रत्याख्यान किया है, वे सभी जीव तो स्थावर हो गये हैं। अतः वह उनकी हिंसा टाल नहीं सकता।

गौतम – आयुष्मन् उदक ! हमारे सिद्धान्तानुसार कभी ऐसा होता ही नहीं है कि सभी स्थावर त्रस बन जाये, और सभी त्रस स्थावर हो जायें। किंचित् समय के लिए आपका कथन प्रमाणरूप मान भी लिया जाय, तथापि श्रमणोपासक के त्रस-हिंसा प्रत्याख्यान में बाधा नहीं आती, क्यों कि स्थावर पर्याय की हिंसा में उसका व्रत खण्डित नहीं होता और त्रस पर्याय में तो वह अधिक त्रस जीवों की हिंसा को टालता ही है।

आर्य उदक ! आपका यह कथन कि अधिक त्रस जीवों की हिंसा से निवृत्त होनेवाले श्रमणोपासक के लिए उसके किसी भी पर्याय की हिंसा का प्रत्याख्यान नहीं है, यह कथन न्याय युक्त नहीं है।

उदक पेढाल और गणधर गौतम का मधुर संवाद चल ही रहा था कि अन्य पार्श्वापत्य स्थविर भी वहाँ पर आ गये। उन्हें देख कर गौतम ने कहा–आर्य उदक ! प्रस्तुत सम्बन्ध में आपके स्थविरों से भी तो विचार-चर्चा कर लें।

गौतम – आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस संसार में कितने ही ऐसे मनुष्य होते हैं जिनकी यह प्रतिज्ञा होती है कि 'जो यह अनगार साधु हैं उनको जीवन पर्यन्त नहीं मारूँगा।' उनमें से कोई श्रमण श्रामण्य पर्याय का परित्याग कर गृहवास में चला जाय और श्रमण-हिंसा का प्रत्याख्यानी गृहस्थ गृहवास में रहते हुए उस पुरुष की हिंसा करता है तो क्या उसकी प्रतिज्ञा भंग होती है ?

निर्ग्रन्थ स्थविर– प्रतिज्ञा भंग नहीं होगी।

गौतम– निर्ग्रन्थो! इसी तरह त्रसकाय की हिंसा का त्यागी श्रमणोपासक स्थावरकाय की हिंसा करता हुआ भी अपने प्रत्याख्यान का भंग नहीं करता।

कोई गृहपति या उसका पुत्र धर्म श्रवण कर सर्व सावद्य योगों का त्याग कर श्रमण बन जाय उस समय वह सर्व प्रकार की हिंसा का त्यागी कहा जायेगा या नहीं?

निर्ग्रन्थ– उस समय वह सर्वथा हिंसा त्यागी ही कहा जायेगा।

गौतम– वही श्रमण चार-पाँच वर्षों तक या उससे अधिक समय-तक श्रामण्य पर्याय पाल कर पुनः गृहस्थ हो जाय तो क्या वह सर्वथा हिंसा त्यागी कहा जायेगा?

निर्ग्रन्थ– गृहवासी होने के पश्चात् वह सर्व हिंसा त्यागी श्रमण नहीं कहला सकता।

गौतम– यह वही जीव है जो पहले सभी जीवों की हिंसा नहीं करता था। किन्तु अब वह ऐसा नहीं रहा। पहले वह संयत था, अब असंयत है। इसी प्रकार त्रसकाय में से स्थावरकाय में गया हुआ जीव 'स्थावर' है त्रस नहीं।

कल्पना कीजिए कोई परिव्राजक या परिव्राजिका अन्य मत से निकल कर निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रवेश कर श्रमण धर्म को ग्रहण करे, उस निर्ग्रन्थ के साथ अन्य श्रमण आहार पानी का व्यवहार कर सकते हैं या नहीं?

निर्ग्रन्थ– उनके साथ आहार-पानी का व्यवहार करने में किसी भी प्रकार की कोई बाधा नहीं हो सकती।

गौतम– श्रमण बना हुआ परिव्राजक पुनः गृहस्थ हो जाय उसके साथ क्या आहार आदि का व्यवहार किया जाएगा?

निर्ग्रन्थ– उसके साथ ऐसा कोई भी व्यवहार नहीं किया जा सकता।

गौतम– जिसके साथ पूर्व भोजन आदि का व्यवहार किया जा सकता था किन्तु अब नहीं किया जा सकता, क्यों कि वह पूर्व श्रमण था अब नहीं हैं। इसी तरह त्रस में से स्थावर काय में गया हुआ जीव त्रस हिंसा प्रत्याख्यानी के प्रत्याख्यान का विषय नहीं है, यह स्पष्ट है।

इस प्रकार अनेक दृष्टांतों से गणधर गौतम ने उदक पेढाल की 'त्रस मर कर स्थावर हो और वहाँ पर उसकी हिंसा हो तो श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान का भंग होता है–इस मान्यता का खण्डन किया।

सभी जीव स्थावर हो जायेंगे तब त्रस प्रत्याख्यानी का व्रत निर्विषय होगा। इस प्रकार के उदक के तर्क का निरसन करते हुए गौतम नें कहा–जो श्रमणोपासक श्रावक धर्म का पालन कर के अन्त में अनशन पूर्वक समाधि मरण से मरते हैं, या जो श्रमणोपासक जीवन के उषाकाल में व्रत प्रत्याख्यान का पालन नहीं कर सकते पर जीवन की सांध्य बेला में अनशन पूर्वक समाधि मरण प्राप्त होते हैं, आप की दृष्टि से उनका मरण कैसा है ?

निर्ग्रन्थ– इस प्रकार का मरण वस्तुतः प्रशंसनीय है।

गौतम– जो जीव इस प्रकार मृत्यु प्राप्त करते हैं वे त्रस-प्राणी के रूप में उत्पन्न होते हैं और वे ही त्रस जीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय हो सकते हैं। बहुत से मानव महालोभी, महारम्भी, परिग्रह धारी व अधार्मिक प्रकृति के होते हैं, जो अपने अशुभ कर्मों से पुनः अशुभ गतियों में उत्पन्न होते हैं। अनारम्भी श्रमण और अल्पारंभी श्रावक आदि मर कर शुभ गतियों में जाते हैं। आरण्यक, आवसथिक, ग्रामनियंत्रिक, और राहसिक प्रभृति तापस मर कर भवान्तर में असुरों की गतियों में उत्पन्न होते हैं और वहाँ से निकल कर मनुष्य गति में उत्पन्न होते हैं। दीर्घायुष्क, समायुष्क एवं अल्पायुष्क जीव मर कर पुनः त्रस रूप में उत्पन्न होते हैं। उक्त सभी प्रकार के जीव यहाँ पर त्रस हैं और मर कर फिर त्रस होते हैं, ये सभी त्रस जीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय नहीं है।

कितने ही श्रमणोपासक अधिक व्रत-नियम ग्रहण नहीं कर सकते तथापि वे देशावकाशिक व्रत ग्रहण करते हैं। मर्यादित सीमा से बाहर

जाने का प्रत्याख्यान करते हैं। उनके व्रत का विषय मर्यादित सीमा के बाहर के जीव तो हैं ही, किन्तु सीमा के अन्दर भी जो त्रस जीव हैं, त्रस मर कर पुनः त्रस होते हैं या स्थावर मर कर त्रस होते हैं। स्थावर जीव भी जिनकी निरर्थक हिंसा का श्रमणोपासक त्यागी होता है वे श्रमणोपासक के व्रत का विषय है।

निर्ग्रन्थो! यह कदापि संभव नहीं है कि सभी त्रस जीव स्थावर हो जायें और सभी स्थावर जीव त्रस हो जायें। जब संसार की ऐसी स्थिति है तो फिर 'कोई ऐसा पर्याय नहीं जो श्रमणोपासक के व्रत का विषय हो'—यह कथन तर्क युक्त नहीं है, निरर्थक ऐसी बातों को ले कर मतभेद करना सर्वथा अनुचित है।

आयुष्मन् उदक! मैत्री बुद्धि से भी जो श्रमण ब्राह्मण की निन्दा करता है वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र को प्राप्त कर के भी परलोक की आराधना में विघ्न उपस्थित करता है। जो गुणी श्रमण ब्राह्मण की निन्दा न करके उसको मित्र भाव से देखता है, वह ज्ञान दर्शन को प्राप्त कर परलोक को सुधारता है।

इस प्रकार गणधर गौतम के सविस्तृत विवेचन को श्रवण कर निर्ग्रन्थ उदक पेढाल वहाँ से प्रस्थित होने लगे तब गौतम ने कहा—आयुष्मन् उदक! विशिष्ट श्रमण-ब्राह्मण के मुखारविन्द से एक भी धार्मिक वचन श्रवण कर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के बल से चिन्तन करने पर यह ज्ञात हो कि आज वस्तुतः मुझे योग-क्षेम के स्थान पर पहुंचाया गया है, तो उस मनुष्य को उस श्रमण-ब्राह्मण का आदर करना चाहिए। सत्कार और सन्मान करना चाहिए और उस उपदेशक का देवतुल्य आदर करना चाहिए।

उदक — आयुष्मन् गौतम! इसके पूर्व मैंने ऐसे वचन न तो सुने ही थे, और न जाने ही थे। इन वचनों को सुन कर मुझे विश्वास हो गया है। मैं स्वीकार करता हूं कि आपका कथन यथार्थ है।

निर्ग्रन्थ उदक पेढाल ने चातुर्याम धर्म परम्परा से निकलकर पंच महाव्रतात्मक धर्म को ग्रहण करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। गौतम

उनकी इच्छा का अनुमोदन करते हुए उनको अपने साथ भगवान महावीर के पास ले गये भगवान महावीर को वन्दन, नमस्कार कर पंच महाव्रतिक सप्रतिक्रमण को स्वीकार कर वे महावीर के श्रमण संघ में सम्मिलित हुए।

(९) गांगेय

भगवान महावीर वाणिज्य ग्राम के बाहर दूतिपलास उद्यान में ठहरे हुए थे। प्रवचन समाप्त हो चुका था। श्रोतागण अपने घरों की ओर प्रस्थान कर चुके थे। उस समय गांगेय नामक एक पार्श्वापत्य मुनि भगवान के सन्निकट आये। भगवान से कुछ दूर खडे रह कर उन्होंने पूछा— भगवन् ! नरकावास में नारक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?[1]

महावीर – गांगेय। नारक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।[2]

गांगेय – भगवन्। असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?

महावीर – असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।

गांगेय – भगवन् ! पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?

महावीर – गांगेय। पृथ्वीकायादि जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते वे अपने-अपने स्थानों में निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं।

---

१ तेणं कालेणं तेणं समए णं वाणियगामे नगरे होत्था। ......
तेणं कालेणं तेणं समए णं पासा वच्चिज्जे गंगेए नामं अणगारे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी — संतरं भंते। नेरइया उववज्जंति निरन्तरं नेरइया उववज्जंति ?
—व्याख्या प्रज्ञप्ति— ९।३२।३७१.

२ गंगेया ! संतरं पि नेरइया उववज्जंति निरंतरं पि नेरइया उववज्जंति.
— व्याख्या प्रज्ञप्ति —९।३२।३७१.

गांगेय – भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?

महावीर – गांगेय ! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी ।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य और देव भी सान्तर तथा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ।

गांगेय – भगवन् ! नैरयिक सान्तर च्यवता है, या निरन्तर च्यवता है ?

महावीर – गांगेय ! नैरयिक सान्तर च्यवता है और निरन्तर भी च्यवता है ।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, तिर्यंच मनुष्य, तथा देव भी कभी सान्तर और कभी निरंतर च्यवते हैं, परन्तु पृथ्वीकायिक आदि निरन्तर उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय जीव निरन्तर ही च्यवते हैं ।

गांगेय -- भगवन् ! 'प्रवेशन' कितने प्रकार के कहे हैं ?

महावीर -- गांगेय ! प्रवेशन चार प्रकार के कहे हैं । १ नैरयिक प्रवेशन, २ तिर्यग्योनि प्रवेशन, ३ मनुष्य प्रवेशन, और ४ देव प्रवेशन । उसके पश्चात् भगवान् ने विभिन्न नैरयिकों के प्रवेशन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएं दीं ।

गांगेय -- भगवन् ! तिर्यंचयोनिक प्रवेशक कितने प्रकार का कहा है ?

महावीर -- गांगेय ! पाँच प्रकार का कहा है--एकेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक । उसके पश्चात् भगवान् ने विस्तृत रूपसे उसके सम्बन्ध में वर्णन किया ।

गांगेय -- भगवन् ! मनुष्य प्रवेशन कितने प्रकारका कहा है ?

महावीर -- दो प्रकार का है -- "१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक और २ गर्भज मनुष्यप्रवेशनक" उसके बाद विस्तार से भगवान ने विश्लेषण किया ।

गांगेय – भगवन् ! देव प्रवेशनक कितने प्रकार का है ?

महावीर -- गांगेय ! देव प्रवेशनक चार प्रकार का है -- १ भवनवासी देवप्रवेशनक, २ वानव्यंतर, ३ ज्योतिष्क और ४ वैमानिक। उसके सम्बन्ध में फिर भगवान ने विस्तार से वर्णन किया।

गांगेय -- भगवन् ! 'सत्' नारक उत्पन्न होते हैं या असत् ? इसी तरह 'सत्' तिर्यंच, मनुष्य और देव उत्पन्न होते हैं या असत् ?

महावीर – गांगेय ! सभी सत् उत्पन्न होते हैं, असत् कोई भी उत्पन्न नहीं होता।

गांगेय– भगवन् ! नारक, तिर्यंच और मनुष्य सत् मरते हैं या असत् ? इसी प्रकार देव भी सत् च्युत होते हैं या असत् ?

महावीर– गांगेय ! सभी सत् मरते हैं, असत् कोई नहीं मरता।

गांगेय– भगवन् ! यह कैसे ? सत् की उत्पत्ति कैसी? और मरे हुए की सत्ता कैसी ?

महावीर– गांगेय ! पुरुषादानीय पार्श्व अरिहन्त ने लोक को शाश्वत कहा है। इसमें 'सर्वथा असत्' की उत्पत्ति नहीं होती और 'सत्' का सर्वथा नाश भी नहीं होता।[1]

गांगेय– भगवन् ! यह वस्तुतत्त्व आप स्वयं आत्मप्रत्यक्ष से जानते हैं या किसी हेतुप्रयुक्त अनुमान से अथवा किसी आगम के आधार से ?

महावीर– गांगेय ! यह सभी मैं स्वयं जानता हूँ। किसी भी अनुमान अथवा आगम के आधार पर मैं नहीं कहता। आत्मप्रत्यक्ष से जानी हुई बात ही कहता हूँ।

गांगेय– भगवन् ! अनुमान और आगम के आधार के बिना इस विषय में कैसे जाना जा सकता है ?

---

१ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सतो नेरइया उववज्जंति नो असतो नेरइया उववज्जंति जावसओ वेमाणिया चयंति नो असओ वेमाणिया चयंति ? से नूणं भंते ! गंगेया ! पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए वुइए........

महावीर– गांगेय ! केवली पूर्व से जानता है, पश्चिम से जानता है, उत्तर और दक्षिण से जानता है। केवली परिमित जानता है और अपरिमित भी जानता है। केवली का ज्ञान प्रत्यक्ष होने से उसमें सर्व वस्तुतत्त्व प्रतिभासित होते हैं।

गांगेय– भगवन् ! नरक में नारक, तिर्यञ्च में तिर्यच, मनुष्य गति में मनुष्य और देवगति में देव स्वयं उत्पन्न होते हैं? या किसी की प्रेरणा से? वह अपनी गतियों से स्वयं निकलते हैं या उन्हें कोई निकालता हैं ?

महावीर– आर्य गांगेय ! सभी जीव अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार शुभाशुभ गतियों में उत्पन्न होते हैं और वहाँ से निकलते हैं। इसमें दूसरा कोई भी प्रेरक नही है।

इस प्रकार प्रश्नोत्तरों के पश्चात् गाँगेय अनगार ने भगवान को यथार्थ रूप से पहचाना उसे यह पूर्ण निष्ठा हो गई की ये सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। भगवान महावीर को त्रिप्रदक्षिणा पूर्वक वन्दन और नमस्कार कर महावीर के पंच महाव्रत रूप धर्म में प्रविष्ट हुए।[1]

(१०) कालास्यवैशिक पुत्र

भगवती सूत्र में 'कालास्यवैशिक पुत्र' पार्श्वापत्यीय श्रमण का उल्लेख आता है। वह एक वार भगवान महावीर के स्थविर श्रमणों के पास आते हैं, और प्रश्न करते हैं। हे आर्यो ! सामायिक क्या है ? प्रत्याख्यान क्या हैं? संयम क्या है ? संवर क्या है ? विवेक क्या है ? व्युत्सर्ग क्या है ? क्या आप इन्हें जानते हैं ?[2]

---

१ व्याख्या प्रज्ञप्ति – शतक ९। उद्दे ३२ सू. ३७९

२ तेणं काले णं तेणं समए णं पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते णामं अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता थेरे भगवंते एवं वयासी-थेरा सामाइयं ण जाणंति थेरा सामाइयस्स अट्ठं ण याणंति थेरा पच्चक्खाणं ण याणंति थेरा पच्चक्खाणस्स अट्ठं ण याणंति, थेरा संजयं ण याणंति, थेरा संजमस्स अट्ठं ण याणंति, थेरा संवरे ण याणंति, थेरा संवरस्स अट्ठं ण याणंति, थेरा विवेगं ण याणंति, थेरा विवेगस्स अट्ठं ण याणंति, थेरा विउस्सग्गं ण याणंति, थेरा विउसग्गस्स अट्ठं ण याणंति।

भगवती – श. १०, उद्दे ९. सू. ७६

उत्तर में उन स्थविरों ने कहा—आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही संयम, संवर, विवेक और व्युत्सर्ग है।[1]

प्रश्न किया गया, यदि आत्मा ही सामायिक है, तो आप क्रोधादि कषायों की निन्दा क्यों करते हैं ?

स्थविरों ने उत्तर दिया – संयम आदि के लिए ही क्रोधादि पापों की निन्दा की जाती है। निन्दा करने से पाप के प्रति जो लगाव है वह समाप्त हो जाता है।

पुनः प्रश्न उत्पन्न हुआ, निन्दा यह संयम है या अनिन्दा ?

स्थविरोंने समाधान दिया—यहाँ पर निन्दा संयम है, अनिन्दा नहीं। पाप की निन्दा करने से दोषों का नाश होता है और आत्मा संयम में स्थापित होती है। जब तक दोषों को दोष न समझा जाय तव तक उससे बचा भी कैसे जा सकता है।

इस प्रकार तात्त्विक चर्चा कर कालास्यवैशिक पुत्र समाधान पाते हैं। उनके मन के संशय नष्ट हो जाते हैं और वे अपनी पूर्व परंपरा का विसर्जन कर भगवान महावीर की परम्परा को स्वीकार कर लेते हैं।[2]

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् पार्श्व और महावीर की परम्परा में तात्त्विक विषयों में कोई अन्तर नहीं था। यदि अन्तर होता तो कालास्यवैशिक के मन का समाधान कदापि नही होता।

---

१ तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासि—आया णे अज्जो सामाइएआ या णे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे जाव विउस्सग्गस्स अट्ठे।

—भगवती–श. १०, उद्दे–९, स. ७६

२ तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

—भगवती– १।९।७६.

(११) पार्श्वापत्य स्थविरों का मिलन

भगवान महावीर वाणिज्य ग्राम से इक्कीसवाँ वर्षावास पूर्ण कर राजगृह पधारे।[1] उस समय अनेक पार्श्वापत्य स्थविर भगवान महावीर के समवसरण में उपस्थित हुए। उन्हों ने भगवान महावीर से प्रश्न किया—भगवन् ! असंख्य जगत में अनन्त दिन-रात अतीत काल में उत्पन्न हुए, वर्तमान काल में उत्पन्न होते हैं और भविष्य काल में उत्पन्न होवेंगे? अतीत में नष्ट हुए, वर्तमान में नष्ट होते हैं और भविष्य में नष्ट होवेंगे ?[2]

महावीर— आर्यो। असंख्य लोक में दिन-रात उत्पन्न हुए हैं, होते हैं, और होवेंगे।

पार्श्वापत्य— भगवन् ! वह किस कारण से उत्पन्न हुए हैं, होते हैं, और होवेंगे ?

महावीर— हे आर्यो। पुरुषादानीय पार्श्व ने कहा—लोक शाश्वत, अनादि और अनन्त है। वह लोक अनादि, अनन्त, परिमित, आलोकाकाश से परिवृत्त, नीचे विस्तृत, मध्य में संकुचित और ऊपर विशाल है। नीचे पल्यंक के आकार वाला, मध्य में उत्तम वज्र के आकार वाला और ऊपर के भाग में ऊर्ध्व मृदंग जैसा है। इस अनादि अनन्त लोक में अनन्त जीव पिंड उत्पन्न होते हैं, और नष्ट होते हैं। परिणाम वाले जीव-पिण्ड भी उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं—वह लोक भूत है, उत्पन्न है विगत है, परिणत है। लोक का द्वितीय अंश अजीव काय प्रत्यक्ष होने

---

१ (क) श्रमण भगवान महावीर—कल्याण विजय—पृ. १०८.
(ख) तीर्थंकर महावीर—भाग २, ७४—७५. इंद्रविजयजी

२ तेणं कालेणं २ पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते ठिच्चा एवं वदासी से नूणं भंते। असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा विगच्छिंसु वा विगच्छंति वा विगच्छिस्संति वा परित्ता रातिंदिया उप्पज्जिंसु वा ३, विगच्छिंसु वा ३।

—व्याख्या प्रज्ञप्ति—श. ५, उद्दे. ९, सूत्र २२७.

लोक प्रत्यक्ष है। लोकवर्ती अजीव द्रव्य प्रत्यक्ष देखा जाता है, एतदर्थ ही इसे लोक कहते हैं।[1]

भगवान महावीर के प्रस्तुत स्पष्टीकरण से पार्श्वापत्य स्थविरों का समाधान हो गया। उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि भगवान महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। भगवान को वन्दन कर उन्होंने निवेदन किया—'भगवन्। हम आपके पास चातुर्याय धर्म के स्थान पर पंचमहाव्रतात्मक सप्रतिक्रमण धर्म स्वीकार करना चाहते हैं।' भगवान की अनुमति प्राप्त होते ही उन्होंने भगवान महावीर के पास पंचमहाव्रतात्मक धर्म को स्वीकार किया।[2]

(१२) पार्श्वापत्यों के कथन का समर्थन

श्रमण भगवान महावीर अपना तेइसवाँ वर्षावास श्रावस्ती में व्यतीत कर, अनेक ग्राम-नगरों में विचरण करते हुए राजगृह पधारे। उसी समय पार्श्वापत्य स्थविर पाँच सौ अनगारों के साथ राजगृह के सन्निकट तुंगीया नगरी के पुष्पवती उद्यान में अवस्थित थे। तुंगीया नगरी के श्रमणोपासक स्थविरों को वन्दन करने के लिए पहुँचते हैं। धर्मोपदेश श्रवण करने के पश्चात् श्रमणोपासकों ने स्थविरों से जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कीं। भगवन्! संयम का फल क्या है? तप का फल क्या है?

---

१ हंता अज्जो! असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया तं चेव। से केणट्ठेणं जाव विगच्छिस्संति वा? से नूणं भंते अज्जो पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए वुइए........॥

—व्याख्या प्रज्ञप्ति-श. ५, उद्दे ९ सूत्र २२७.

२ जे लोक्कइ से लोए? हंता भगवं! से तेणट्ठेणं अज्जो! एव वुच्चइ असंखेज्जे तं चेव। तप्पभिति च णं ते पासावच्चेज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणंति सव्वन्नू सव्वदरिसी तए णं ते थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति २ एवं वदासि—इच्छामि णं भंते। तुब्भे अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सप्पडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया। मा पडिबंधं करेह।

—भगवता—५—९—२२७.

स्थविर – आर्यो। संयम का फल अनास्रव है और तप का फल निर्जरा है।

श्रमणोपासक – भगवन्। यदि संयम का फल अनास्रव है और तप का फल निर्जरा है, तो देवलोक में देव किस कारण से उत्पन्न होते हैं[1] ?

कालिय पुत्र स्थविर – प्राथमिक तप से देव लोक में देव उत्पन्न होते हैं।

मेहिल स्थविर – आर्यो ! प्राथमिक संयम से देव लोक में देव उत्पन्न होते हैं।

आनन्दरक्षित स्थविर – आर्यो ! कार्मिकता से देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं।

काश्यप स्थविर – आर्यो ! संगिकता (आसक्ति) से देव लोक में देव उत्पन्न होते हैं। पूर्वतप, पूर्वसंयम, कार्मिकता और संगिकता से देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं।

स्थविरों के प्रस्तुत उत्तर को सुन कर श्रमणोपासक अत्यधिक आह्लादित हुए। स्थविरों ने वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया।

---

१ (क) तएणं ते समणोवासया थेरे भगवंते एवं वदासि ऊ ति णं भंते। संजमे अणण्हयफले तवे वोदाणफले किं पतियं णं भंते। देवा देवलोएसु उववज्जंति ?

—भगवती श. २. उद्दे. ५. पृ. ? ......

(ख) तत्थ णं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी–पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देव लोएसु उववज्जंति। तत्थ णं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी – पुव्वसंजमेणं अज्जो। देवा देवलोएसु उववज्जंति। तत्थ णं आणंदरक्खिए णाणं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी–कम्मियाए अज्जो। देवा देवलोएसु उववज्जंति। तत्थ णं कासवे णामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी – संगियाए अज्जो। देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो। देवा देवलोएसु उववज्जंति।

—भगवती– २।५।११०.

गणधर गौतम, भगवान महावीर की आज्ञा लेकर भिक्षा के लिए राजगृह में गये। उस समय बहुत से व्यक्तियों के मुंह से सुना कि तुंगीया नगरी के श्रमणोपासकों के प्रश्नों के उत्तर में पार्श्वापत्ययी स्थविरों ने इस प्रकार उत्तर दिया।

गणधर गौतम भगवान महावीर के पास आये, उन्होंने लोक-चर्चा का निवेदन कर पूछा-भगवन् ! उन स्थविरों ने जो उत्तर प्रदान किये हैं क्या वे ठीक हैं? क्या इस प्रकार उत्तर देने में वे स्थविर समर्थ हैं?

भगवान ने कहा— "जो पार्श्वापत्य स्थविरों ने उत्तर दिया है वह यथार्थ है, पूर्ण सत्य है, इस सम्बन्ध में मेरा भी यही अभिमत है"।

उपरोक्त संवाद से यह स्पष्ट है कि पार्श्वपरम्परा के स्थविर गंभीर विद्वान् थे। इन स्थविरों का महावीर के शासन में मिलने का वर्णन आगम-साहित्य में कहीं पर भी प्राप्त नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान पार्श्व की विराट शिष्य परम्परा भगवान महावीर के समय विद्यमान थी। आगम और परवर्ती साहित्य में मुख्य रूप से उन्हीं श्रमणों का वर्णन है जो विचार–चर्चा कर भगवान महावीर के शासन में मिले थे। आगमों में अनेक स्थलों पर नाम निर्देश न कर केवल 'थेरा'[१] शब्द का ही प्रयोग किया है। उन की संख्या का भी सूचन नहीं है।

इतिहासकारों का अभिमत है कि परिगणना के अतिरिक्त भी बहुत से श्रमण रहे होंगे। पुरातत्त्ववेत्ता गणी कल्याण विजय जी, तथा विजयेन्द्र सूरि के अभिमतानुसार पार्श्वापत्य श्रमण भगवान महावीर से समय-समय पर मिले हैं। श्रमण केशीकुमार अट्ठाइसवें वर्षावास में मिले

---

१ (क) थेरे भगवंते एवं वदासी जति णं–

—भगवती– शतक २. उद्देशक ५,

(ख) नायाधम्मकहा— १।१२.

हैं।[1] तो उदक पेढालपुत्र चौतीसवें वर्षावास में।[2] अर्थात् श्रमण भगवान महावीर के तीर्थ संस्थापना के पश्चात् उक्त विद्वानों की मान्यता के अनुसार बावीस वर्ष तक पार्श्वापत्य श्रमण पृथक रुप से चातुर्याम धर्म का प्रचार करते रहे।

जिस प्रकार श्रमणों का महावीर के शासन में मिलने का वर्णन प्राप्त है, वैसा वर्णन श्रमणियों के लिए कहीं भी नहीं मिलता। हमारी दृष्टि से उस समय पार्श्वनाथ परम्परा की श्रमणियों की भी काफी संख्या रही होगी, क्यों कि कल्पसूत्र के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ के श्रमणी वर्ग की संख्या अडतीस हजार थी।[3] अर्थात् महावीर के श्रमणी-समुदाय से दो हजार अधिक थी[4]। भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण को अभी दो सो वर्ष से भी कम हुए थे,[5] ऐसी स्थिति में यह कैसे माना जा सकता है कि भगवान महावीर के समय पार्श्व संघ में श्रमणी वर्ग नहीं था। इतने अल्प समय में श्रमणी-वर्ग का समूल नष्ट हो जाना कैसे संभव हैं? हमारी अपनी दृष्टि से उस समय पार्श्व परम्परा की श्रमणियाँ अवश्य थीं, और वे जिन आचार्यो के नेतृत्व में थीं जब वे आचार्य महावीर के शासन में मिल गये तब वे भी स्वतः मिल गई होंगी। जैसे स्थानकवासी सम्प्रदायों के आचार्य व अधिकारी गण जब श्रमण संघ में मिले तब उनके नेश्रायित संत तथा सती वर्ग ही नहीं,

---

१ (क) श्रमण भगवान महावीर–पृ. १४४ गणी कल्याणविजय
(ख) तीर्थंकर महावीर– भाग २. पृ. १९४, विजयेन्द्रसूरि

२ (क) श्रमण भगवान महावीर– पृ. १७४,
(ख) तीर्थंकर महावीर– भाग २. पृ. २५२.

३ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूला पामोक्खाओ अट्ठतीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपदा होत्था।
—कल्पसूत्र– १५७, पृ. २२३ देवेन्द्रमुनि

४ समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचन्दणापामोक्खाओ छत्तीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया होत्था।
—काल्पसूत्र– १३४, पृ. २०७ देवेन्द्रमुनि

५ S. B. E. XLV. Page. 122–123.
Jainism in N. India. Page 7.

अपितु श्रावक और श्राविकाएँ भी श्रमण संघ में स्वतः मिल गईं, वैसे ही उस समय भी रहा होगा।

भगवान महावीर के समय पार्श्वापत्य श्रावक और श्राविकाओं की संख्या भी विपुल मात्रा में रहनी चाहिए। किन्तु कुछ ही मुख्य व्यक्तियों का उल्लेख आया है, शेष का नहीं।

जिस प्रकार श्रमणों के आचार धर्म में ऋजुता और वक्रता के कारण चातुर्याम और पंचमहाव्रतात्मक धर्म में अन्तर रहा, वैसा ही अन्तर श्रमणोपासकों की साधना-पद्धति में भी रहा हो ऐसा उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं है। अपितु राजप्रश्नीय में चित्त सारथी का उल्लेख है जिसने पार्श्वापत्यीय केशीकुमार श्रमण से श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण किये हैं, जिस में पाँच अणुव्रत और सात शिक्षा व्रत हैं।[१]

'पार्श्वापत्यीयो अने महावीर नो संघ,[२]' शीर्षक लेख में पं. दलसुख मालवणिया ने कुछ तर्क उपस्थित किये हैं कि बावीस तीर्थंकरों के श्रमणों के लिए हिंसा, असत्य, चोरी और बाह्य परिग्रह से निवृत्तिरूप चातुर्याम धर्म था, तो श्रमणोपासकों के लिए पञ्च अणुव्रत कैसे संभव है? श्रमणों के चार व्रत थे तो उनके उपासकों के भी चार व्रत ही होने चाहिए। जब साधुओं में चार व्रत की परम्परा थी तो श्रावकों में पाँच व्रत की परम्परा कैसे आ गई। जैसे श्रमणों के लिए भगवान महावीर ने पाँच महाव्रत की स्थापना की, वैसे ही श्रावकों के लिए भी की होगी, क्यों कि महाव्रत की अपेक्षा ही तो अणुव्रत हैं। आगम साहित्य में मुख्य रूप से महावीर के श्रमणोपासकों का ही वर्णन आया है।[३] अतः उन्हीं की मुख्यता होने से पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रावकों का भी उसी तरह वर्णन कर दिया गया है।

---

१ अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए ....चित्ते सारही केसिकुमार समणस्स अंतिए पंचाणुव्वतियं जाव गिहिधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति।

—राइपसेण इयं– पृ. २९०. पंडित बेचारदासजी

२ जैन प्रकाश महावीर उत्थान अंक– पृ. ४९.

३ देखिए, उपासकदशाङ्ग, नायाधम्मकहा, अंतगड, कप्पवडंसिया, भगवई, सूयगड, उत्तराध्ययन, अनुत्तरोववाइअ।

मालवणिया जी के तर्क मननीय अवश्य हैं किन्तु आगम, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका ग्रन्थों में कहीं पर भी इस सम्बन्ध में संकेत नहीं है कि बावीस तीर्थंकरों के श्रमणोपासकों के चार अणुव्रत थे अपितु पार्श्वापत्य श्रमणोपासकों के द्वारा पञ्च अणुव्रत ग्रहण करने का उल्लेख अनेक स्थलों पर आया है।[10] ऐसी स्थिति में यह मानना कि पार्श्वापत्य श्रमणोपासक के चार अणुव्रत रहे होंगे यह कल्पना पर ही आधृत है, आगम सम्मत नहीं। विशेष विद्वानों को इस पर अवश्य ही विचार करना चाहिए।



१० (क) तए णं सुबुद्धि जियसत्तुस्स विचित्तं केवलिपन्नत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ, तमाइक्खइ जहा जीवा बज्झंति जाव पंच अणुव्वयाइं।

—श्रीमद्ज्ञाताधर्मकथांग– पृ. ३७५. संपा.

पं. शोभाचन्द्र जी भारिल्ल

(ख) राइपसेणइयं– पृ. २९०.

(ग) पासनाहचरियं– प्रस्ताव ४, देवभद्राचार्य.

भगवान पार्श्व का श्रुत साहित्य

भगवान् पार्श्व द्वारा उपदिष्ट श्रुत साहित्य आज उपलब्ध नहीं है, चूंकि यह परम्परा रही है कि जिस युग में जो तीर्थंकर होते हैं और वे जो धर्म देशना देते हैं, उनकी वह देशना ही गणधरों द्वारा ग्रथित हो कर श्रुत साहित्य रूप में प्रचलित होती है। हाँ, सिद्धान्तों की मौलिकता तथा पूर्वापर सामंजस्य सभी तीर्थंकरों की श्रुत संपदा में एक समान रहता है। तदपि उसकी परम्परा वर्तमान तीर्थंकर के नाम से ही प्रचलित होती है। इसी कारण आज भगवान पार्श्व का श्रुत साहित्य हमारे समक्ष उपलब्ध नहीं है।

आगम साहित्य का अध्ययन करने से यह सहज ही ज्ञात होता है कि आगमों के अध्ययन की तीन परम्पराएं रही हैं। कितने ही श्रमण सामायिक आदि ग्यारह अंग पढते थे।[1] कितने ही चौदह पूर्व[2] और कितने ही बारह अंग (द्वादशांगी) का अध्ययन करते थे।[3]

बारह अंगों को पढने वाले और चौदह पूर्वों को पढने वाले इस प्रकार के दो भिन्न-भिन्न उल्लेख किसी विशेष बात के द्योतक हैं। कितने ही विद्वान् यह मानते हैं कि चौदह पूर्वों के अध्येता बारह अंगों के अध्येता

---

१ (क) भगवती सूत्र— २।१.
(ख) ज्ञाता सूत्र— अ. १२.

२ (क) भगवती सूत्र— ११।११।४३२, १७।२।६१७.
(ख) ज्ञातासूत्र— ५

३ अन्तगडदशा, चतुर्थ वर्ग अ. १.

अवश्य थे, किन्तु यह मन्तव्य युक्ति-युक्त नहीं प्रतीत होता, क्यों कि दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग, तथा चूलिका ये पाँच भेद हैं। इस में पूर्वगत तो केवल एक भेद है। जिसने पूर्वगत का ही केवल अध्ययन किया है और अन्य परिकर्म सूत्र आदि का अध्ययन नहीं किया वह चौदह पूर्वों का पाठी कहलाता है किन्तु वह द्वादशांगी का पाठी नहीं। जिसने सम्पूर्ण दृष्टिवाद का अध्ययन किया है वह द्वादशांगी विद् कहलाता है। द्वादशांगी का पाठी चतुर्दश पूर्वी अवश्य होता है। इसीलिए गणधर गौतम को द्वादशांगी विद् लिखा है।

श्वेताम्बर अभिमतानुसार दृष्टिवाद में सम्पूर्ण शब्द ज्ञान का अवतार हो जाता है तथापि ग्यारह अंगों की रचना अल्प मेधावाले पुरुषों व स्त्रियों के लिए की गई है।[2] ग्यारह अंगों का अध्ययन वे ही साधु करते थे जिनमें प्रतिभा की प्रखरता उतनी नहीं होती थी। तीव्र मेधा सम्पन्न मुनि पूर्वों का और सम्पूर्ण दृष्टिवाद का अध्ययन करते थे। ग्यारह अंग पूर्वों से ही उद्धृत या संकलित किये गये हैं अतः यह स्वाभाविक है कि जो चतुर्दश पूर्वी होता था। वह नियमतः ग्यारह अंगों का ज्ञाता अवश्य होता था।

कितने ही विद्वान् यह भी मानते हैं कि पार्श्व आदि अन्य तीर्थंकरों के समय पूर्वों का ही अध्ययन होता था, आचारांग आदि अंग साहित्य तो श्रमण भगवान महावीर की देन है। पर उनका यह मन्तव्य अनागमिक है। आगम साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पूर्वों और अंगों की परम्परा भगवान अरिष्टनेमि और भगवान पार्श्व के युग में भी रही है। अन्तगड सूत्र में भगवान अरिष्टनेमि के शिष्य गौतम को सामायिक आदि ग्यारह अंगों का पाठक लिखा है,[3] अरिष्टनेमि के ही शिष्य सुमुखकुमार[4] व

---

१ उत्तराध्ययन— २३।७.

२ जइवि य भूतावाए सव्वस्स वओगयस्स ओयारो।
निज्जूहणा तहावि हु, दुम्मेहे पप्प इत्थी य ॥
—विशेषावश्यक भाष्य– गा. ५५४.

३ सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ.
—अन्तगड प्रथम वर्ग.

४ चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ—
—अन्तगड, तृतीय वर्ग, ९ अध्ययन.

अणीयसकुमार[1] को चौदह पूर्वों का पढने वाला चित्रित किया गया है। अरिष्टनेमि के ही शिष्य जालीकुमार को बारह अंगों का पढने वाला उट्टङ्कित किया गया है। [2] भगवान अरिष्टनेमि के चारसौ मुनि चतुर्दश पूर्वी थे।[3], भगवान पार्श्व के साढे तीनसौ मुनि चतुर्दश पूर्वी थे।[4] और भगवान महावीर के तीनसौ मुनि चतुर्दश पूर्वी थे। [5]

हम यह पूर्व ही बता चुके हैं कि अंगों की रचना अल्प बुद्धिवाले व्यक्तियों के लिए की गई है। भगवान अरिष्टनेमि और भगवान पार्श्व के युग में सभी मुनि प्रतिभा संपन्न ही थे, यह कैसे माना जा सकता है। प्रतिभा का तारतम्य तो प्रत्येक युग में रहा है। मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से चिन्तन करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अंगों की अपेक्षा अन्य तीर्थंकरों के समय भी रही हैं अतः भगवान् पार्श्व के युग में केवल पूर्व ही थे, अङ्ग नहीं-प्रस्तुत कथन की पुष्टि में कोई भी साक्ष्य प्राप्त नहीं है। यह सत्य है कि भगवान् महावीर के शासन में पूर्वों और अंगों का युग की भाव, भाषा, शैली आदि की दृष्टि से नवीनीकरण हुआ है। किन्तु पूर्व पार्श्व की परम्परा से लिए गये और अंग महावीर की परम्परा में रचे गये, यह कथन केवल कल्पना पर ही आधारित है। लगता है-कोई ठोस प्रमाण इस सम्बन्ध में अभी तक प्राप्त नहीं हुआ।

---

१ सामाइयमाइयाइं चौद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ।

—अन्तगड, तृतीय वर्ग, प्रथम अध्ययन

२ बारसंगी— — ,, चुतुर्थ वर्ग. प्रथम अध्ययन

३ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणं।
अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर जाव होत्था॥

—कल्पसूत्र– १६६. पृ. १३७.

४ (क) समवायाङ्ग, प्रकीर्णक समवाय, सूत्र १४.
(ख) पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाण सव्वक्खर जाव चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था।

—कल्पसूत्र– १५७. पृ. २२३.

५ (क) समवायाङ्ग– सूत्र १२.
(ख) कल्पसूत्र– १३७. पृ. २०७.

जैन मान्यतानुसार पूर्व श्रुत ज्ञान का अक्षय कोष है। इसके अर्थ और रचना के विषय में विज्ञों में एक मत नहीं है। नन्दीसूत्र की चूर्णि के अनुसार महावीर ने जो प्रथम उपदेश दिया वह पूर्व कहलाया।[1] समवायाङ्ग वृत्ति के अनुसार पूर्व द्वादशांगी से पूर्व रचे गये थे, एतदर्थ इनका नाम पूर्व रखा गया।[2] आचार्य वीरसेन ने पूर्वगत का अर्थ करते हुए लिखा है जो पूर्वो को प्राप्त हो या जो पूर्व स्वरूप प्राप्त हो वह पूर्वगत है।[3] आचार्य मलयगिरि ने लिखा है पूर्वगत सूत्र के अर्थ को अरिहन्त कहते हैं, और पूर्वगत सूत्र को गणधर रचते हैं[4]।



---

१ जम्हा तित्थकरो तित्थपवत्तणकाले गणधराणं सव्वसुत्ताधारत्तणतो पुव्वं पुव्वगतसुत्तत्थं भासति तम्हा पुव्वं ति भणिता।

—नन्दीसूत्र चूर्णि—पृ. १११.

२ (क) प्रथमं पूर्वं तस्य सर्वप्रवचनात् पूर्वं क्रियमाणत्वात्।

—समवायाङ्ग वृत्ति पत्र— १०१.

(ख) स्थानाङ्ग वृत्ति— १०११

३ पुव्वाणं गयं पत्त—पुव्वसरूवं वा पुव्वगयमिदि गणणामं

—षट्खण्डागम— धवला टीका पुस्तक १ पृ. ११४.

४ अन्ये तु व्याचक्षते पूर्वं पूर्वगतसूत्रार्थमर्हन् भाषते।

—नन्दी मलयगिरिवृत्ति पत्र २४०.

उपसंहार

भगवान पार्श्व का यह संक्षिप्त-सा जीवन चित्र हमारे समक्ष है। जिस पर मैंने आगमिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक-तीनों दृष्टियों से एक चिन्तन पूर्ण अनुशीलन उपस्थित किया है। मूल आगमों में भगवान पार्श्व के जीवन व उपदेश संबंधी सामग्री बहुत कम है। जो है वह भी अति संक्षिप्त। पौराणिक गाथाओं में उनके जीवन चित्र बहुरंगी दृश्यों की भाँति अंकित किये गये हैं। लेकिन उन वर्णनों को विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि सर्वथा मान्य नहीं कर सकती। और केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही भगवान् पार्श्व का जीवन चित्र देखने का प्रयत्न करना अपने आप में अधूरा एवं अप्रामाणिक कार्य होता। इसलिए मैंने तीनों दृष्टियों का समन्वय करके तद् विषयक ग्रन्थों के आधार पर पार्श्व का यह जीवन वृत्त अंकित किया है।

आज भगवान महावीर का शासन चल रहा है। जो भी आगम और उनके उपदेश हैं, वह सब भगवान महावीर की वाणी का ही रूप माना जाता है। इस स्थिति में भगवान पार्श्व के उपदेशों की विस्तृत चर्चा करना न तो संभव है, और न उपयुक्त ही! हाँ, उनके जो उपदेश थे वे लगभग वे ही उपदेश थे जो उनके पश्चात् भगवान महावीर ने दिए। भगवान पार्श्व और महावीर की समसामायिक परिस्थितियाँ बहुत भिन्न नहीं थीं। इसलिए यह मानना चाहिए कि भगवान महावीर के उपदेशों में भगवान पार्श्व के उपदेश भी सन्निहित हैं। रही बात भगवान पार्श्व के व्यक्तित्व की।

भगवान पार्श्व के पूर्ववर्ती तीर्थंकर अरिष्टनेमि और उत्तरवर्ती तीर्थंकर महावीर, दोनों ने ही अहिंसा के सम्बन्ध में क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किया है और युग की कुछ धार्मिक मान्यताओं में संशोधन, परिवर्तन भी! श्रीकृष्ण जिस घोर अंगिरस से अध्यात्म एवं अहिंसा की शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे तत्त्वज्ञ महात्मा अरिष्टनेमि थे—ऐसा ऐतिहासिकों का मत है। भगवान महावीर तो निःसंदेह ही अहिंसा के महान् उद्घोषक मान लिए गए हैं। इन दोनों विचारधाराओं का मध्य बिन्दु भगवान पार्श्व ही बनते हैं। वे अहिंसा के सम्बन्ध में प्रारंभ से ही क्रांतिकारी विचार रखते हैं और गृहस्थ जीवन में भी कमठ तापस के प्रसंग पर धर्म क्रांति का सौम्य स्वर दृढता के साथ मुखरित करते हैं। तीर्थंकरों के जीवन में इस प्रकार की धर्म क्रांति की बात गृहस्थ जीवन में सिर्फ भगवान पार्श्व द्वारा ही प्रस्तुत होती है। दीक्षा के बाद भी वह अनार्य देशों में भ्रमण करके अनेक हिंसक व्यक्तियों के मन में अहिंसा की श्रद्धा जागृत करने में सफल होते हैं।

इस प्रकार भगवान पार्श्व का व्यक्तित्व भगवान अरिष्टनेमि एवं भगवान महावीर के विचारों का मध्य केन्द्र सिद्ध होता है और धर्म क्रांति तथा अहिंसा की गंगा को महाभारत युग से ले कर महावीर बुद्ध युग तक पहुँचा देने वाला भगीरथी व्यक्तित्व भी! काल व्यवधान से साहित्य व इतिहास की अनुपलब्धि के कारण उनके गौरवमय व्यक्तित्त्व के अनेक पक्ष जो उभरने-निखरने चाहिए, वे नहीं निखर पाये हैं।

हम चाहते हुए भी उस व्यक्तित्व के प्रकाश को अधिक विस्तीर्ण नहीं कर सके। फिर भी जो सामग्री प्राप्त है उससे प्रामाणिकता एवं अध्यवसाय के साथ जो विस्तार हमने किया है, वह पाठकों के संतोष के साथ ज्ञान वृद्धि का हेतु बनेगा।



उपसंहार

भगवान पार्श्व का यह संक्षिप्त-सा जीवन चित्र हमारे समक्ष है। जिस पर मैंने आगमिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक-तीनों दृष्टियों से एक चिन्तन पूर्ण अनुशीलन उपस्थित किया है। मूल आगमों में भगवान पार्श्व के जीवन व उपदेश संबंधी सामग्री बहुत कम है। जो है वह भी अति संक्षिप्त। पौराणिक गाथाओं में उनके जीवन चित्र बहुरंगी दृश्यों की भाँति अंकित किये गये हैं। लेकिन उन वर्णनों को विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि सर्वथा मान्य नहीं कर सकती। और केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही भगवान् पार्श्व का जीवन चित्र देखने का प्रयत्न करना अपने आप में अधूरा एवं अप्रामाणिक कार्य होता। इसलिए मैंने तीनों दृष्टियों का समन्वय करके तद् विषयक ग्रन्थों के आधार पर पार्श्व का यह जीवन वृत्त अंकित किया है।

आज भगवान महावीर का शासन चल रहा है। जो भी आगम और उनके उपदेश हैं, वह सब भगवान महावीर की वाणी का ही रूप माना जाता है। इस स्थिति में भगवान पार्श्व के उपदेशों की विस्तृत चर्चा करना न तो संभव है, और न उपयुक्त ही! हाँ, उनके जो उपदेश थे वे लगभग वे ही उपदेश थे जो उनके पश्चात् भगवान महावीर ने दिए। भगवान पार्श्व और महावीर की समसामायिक परिस्थितियाँ बहुत भिन्न नहीं थीं। इसलिए यह मानना चाहिए कि भगवान महावीर के उपदेशों में भगवान पार्श्व के उपदेश भी सन्निहित हैं। रही बात भगवान पार्श्व के व्यक्तित्त्व की।

भगवान पार्श्व के पूर्ववर्ती तीर्थंकर अरिष्टनेमि और उत्तरवर्ती तीर्थंकर महावीर. दोनों ने ही अहिंसा के सम्बन्ध में क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किया है और युग की कुछ धार्मिक मान्यताओं में संशोधन, परिवर्तन भी ! श्रीकृष्ण जिस घोर अंगिरस से अध्यात्म एवं अहिंसा की शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे तत्त्वज्ञ महात्मा अरिष्टनेमि थे—ऐसा ऐतिहासिकों का मत है। भगवान महावीर तो निःसंदेह ही अहिंसा के महान् उद्घोषक मान लिए गए हैं। इन दोनों विचारधाराओं का मध्य बिन्दु भगवान पार्श्व ही बनते हैं। वे अहिंसा के सम्बन्ध में प्रारंभ से ही क्रांतिकारी विचार रखते हैं और गृहस्थ जीवन में भी कमठ तापस के प्रसंग पर धर्म क्रांति का सौम्य स्वर दृढता के साथ मुखरित करते हैं। तीर्थंकरों के जीवन में इस प्रकार की धर्म क्रांति की बात गृहस्थ जीवन में सिर्फ भगवान पार्श्व द्वारा ही प्रस्तुत होती है। दीक्षा के बाद भी वह अनार्य देशों में भ्रमण करके अनेक हिंसक व्यक्तियों के मन में अहिंसा की श्रद्धा जागृत करने में सफल होते हैं।

इस प्रकार भगवान पार्श्व का व्यक्तित्त्व भगवान अरिष्टनेमि एवं भगवान महावीर के विचारों का मध्य केन्द्र सिद्ध होता है और धर्म क्रांति तथा अहिंसा की गंगा को महाभारत युग से ले कर महावीर बुद्ध युग तक पहुँचा देने वाला भगीरथी व्यक्तित्त्व भी ! काल व्यवधान से साहित्य व इतिहास की अनुपलब्धि के कारण उनके गौरवमय व्यक्तित्त्व के अनेक पक्ष जो उभरने-निखरने चाहिए, वे नहीं निखर पाये हैं।

हम चाहते हुए भी उस व्यक्तित्व के प्रकाश को अधिक विस्तीर्ण नहीं कर सके। फिर भी जो सामग्री प्राप्त है उससे प्रामाणिकता एवं अध्यवसाय के साथ जो विस्तार हमने किया है, वह पाठकों के संतोष के साथ ज्ञान वृद्धि का हेतु बनेगा।

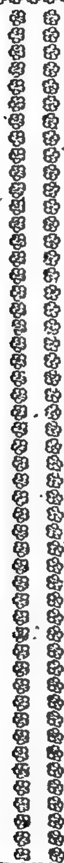
पातालं कलयन् धरां धवलयन्नाकाशमापूरयन्,
दिक्चक्रं क्रमयन् सुरासुरवरश्रेणिं च विस्मापयन् ।
ब्रह्माण्डं सुखयन् जलानि जलधेः फेनच्छलाल्लोलयन्,
श्रीचिन्तामणि–पार्श्वसंभवयशो हंसश्चिरं राजते ।।

× × ×

यस्य प्रौढतमः–प्रतापतपनः प्रोद्दामधामा जगज्
जङ्घालः कलिकालकेलिदलनो मोहान्धविध्वंसकः ।
नित्योद्योतपदं समस्तकमलाकेलिगृहं राजते,
स श्रीपार्श्वजिनो जने हितकरश्चिन्तामणिः पातु माम् ।।

भगवान पार्श्व







परिशिष्ट

आपण घर बैठा लील करो,
निज पुत्र कलत्रसुं नेह धरो ।
तुम देश देशान्तर काँई दौडो,
नित पास जपो श्री जिन रूडो ।।

मन वांछित सघला काज सरे,
शिर ऊपर चामर छत्र धरे ।
कलमल आगल चाले घोडो,
नित पास जपो श्री जिन रूडो ।।

जागतो तीर्थंकर पार्श्व बहु,
इम जाणे सघलो जगत सहु ।
तत्क्षण अशुभ कर्म तोडो,
नित पास जपो श्री जिन रूडो ।।

—समय सुन्दर गणी

परिशिष्ट १

विभिन्न ग्रन्थों में पार्श्व के पूर्व भव

प्रथम भव

ग्रन्थ	पिता का नाम	माता का नाम	पार्श्व का नाम	कमठ का नाम	पार्श्व की मृत्यु
उत्तर पुराण (गुणभद्र)	विश्वभूति	अतुंधरी	मरुभूति	कमठ	कमठ के क्रोध से
महापुराण (पुष्पदत्त)	"	"	"	"	"
सिरिपास (वादिराजसूरि)	"	"	"	"	"
सिरिपास (देवभद्रसूरि)	"	"	"	"	"
त्रिषष्टि (हेमचन्द्र)	"	"	"	"	"
पासणाह चरिउ (पद्मकीर्ति)	"	"	"	"	"
पार्श्वचरितम् (हेमविजयगणि)	"	"	"	"	"
पास चरियं (कविवर रइधू)	"	"	"	"	"

द्वितीय भव

ग्रन्थ	जहाँ पार्श्व का जीव उत्पन्न हुआ	जहाँ कमठ का जीव उत्पन्न हुआ
उत्तरपुराण	हस्तिवज्र घोष	कुक्कुट सर्प
पुष्प महापुराण	"	"
वादिराज	हस्ति पवि घोष	सर्प
देवभद्रसूरि	करि	कुक्कुट सर्प
हेमचन्द्र	"	"
पद्मकीर्ति	हस्ति अशनि घोस	"
हेमविजयगणि	करि	"
कविवर रइधू	करि पवि घोष	सर्प कुक्कुड

तृतीय भव

ग्रन्थ	जहाँ पार्श्व का जीव उत्पन्न हुआ	जहाँ कमठ का जीव उत्पन्न हुआ
उत्तरपुराण	सहस्रारकल्प	धूमप्रभनरक
पुष्पदन्त	"	"
वादिराज	महाशुक्र	पाँचवा नरक
देवभद्र सूरि	सहस्रार कल्प	धूमप्रभ नरक
हेमचन्द्र	"	"
पद्मकीर्ति	"	"
हेमविजयगणि	"	"
कविवर रइधू	"	"

चतुर्थ भव

ग्रन्थ	पिता का नाम	माता का नाम	पार्श्व का नाम	कमठ जिस में उत्पन्न हुआ	पार्श्व की मृत्यु का कारण
उत्तरपुराण	विद्युत्गति	विद्युन्माला	रश्मिवेग	अजगर	अजगर के निगलने से
पुष्पदन्त	विद्युत्वेग	तडिन्माला	,,	,,	,,
वादिराज	,,	×	,,	भुजंग	भुजंग के काटने से
देवभद्र सूरि	विद्युत्गति	तिलकावती	किरणवेग	सर्प महोरग	,,
हेमचन्द्र सूरि	,,	कनकतिलका	,,	सर्प महाहिः	,,
पद्मकीर्ति	,,	मदनावली	,,	अजगर	अजगर के निगलने से
हेमविजयगणि	,,	कनकतिलका	,,	सर्प महाहिः	सर्प के काटने से
कवि रइधू	अशनिगति	तडित्वेगा	अशनिवेग	अजगर	अजगर के निगलने से

पाँचवाँ भव

ग्रन्थ	पार्श्व का जन्म किस स्वर्ग में	कमठ का जीव किस नरक में
उत्तरपुराण	अच्युतकल्प	छट्ठा नरक
पुष्पदन्त	"	तमप्रभ नरक
वादिराज	"	"
देवभद्र	"	धूमप्रभ नरक
हेमचन्द्र	द्वादशकल्प	तमप्रभ नरक
पद्मकीर्ति	अच्युतकल्प	रौद्र नरक
हेमविजय	"	तमप्रभ नरक
कविवर रइधू	"	पाँचवाँ नरक

छट्ठा भव

ग्रन्थ	पिता का नाम	माता का नाम	पार्श्व का नाम	कमठ का जीव किस योनि में	पार्श्व की मृत्यू का कारण
उत्तरपुराण	वज्रवीर्यं	विजया	वज्रनाभि चक्रवर्ती	भील कुरंगक	भील के बाण से
पुष्पदन्त	"	"	वज्रबाहु चक्रवर्ती	"	"
वादिराज	"	"	चन्द्रनाम चक्रवर्ती	"	"
देवभद्रसूरि	"	लक्ष्मीमती	वज्रनाथ	शबर करंगक	शबर के बाण से
हेमचन्द्रसूरि	"	"	"	"	"
पद्मकीर्ति	"	"	चक्रायुध	"	"
हेमविजयगणि	"	"	वज्रनाभ	"	"
कवि रइधू	"	विजया	"	"	"

सातवाँ भव

ग्रन्थ	पार्श्व का जीव	कमठ का जीव
उत्तरपुराण	सुभद्र नामक ग्रैवेयक	नरक
पुष्पदन्त	मध्यम ग्रैवेयक	,,
वादिराज	सुभद्र ग्रैवेयक	सप्तम नरक
देवभद्र सूरि	ग्रैवेयक	,,
हेमचन्द्र	मध्यम ग्रैवेयक	,,
पद्मकीर्ति	ग्रैवेयक	नरक
हेमविजय गणि	मध्यम ग्रैवेयक	सप्तम नरक
कवि रइधू	ग्रैवेयक	अतितम नरक

आठवाँ भव

ग्रन्थ	पिता नाम	माता नाम	पार्श्व नाम	कमठ जिस में जन्मा	पार्श्व की मृत्यु का कारण
उत्तरपुराण	वज्रबाहु	प्रभंकरी	आनन्द मण्डलेश्वर	सिंह	सिंह के खाने से
पुष्पदन्त	"	"	"	×	×
वादिराज	"	"	"	सिंह	सिंह के खाने से
देवभद्र	कुलिशबाहु	"	कनकबाहु चक्रवर्ती	"	"
हेमचन्द्र	"	सुदंशणा	सुवर्णबाहु चक्रवर्ती	"	"
पद्मकीर्ति	वज्रबाहु	प्रभंकरी	कनकप्रभ चक्रवर्ती	"	"
हेमविजयगणि	कुलिशबाहु	सुदंशणा	सुवर्णबाहु चक्रवर्ती	"	"
कवि रइधू	वज्रबाहु	प्रभंकरी	आनन्द चक्रवर्ती	"	"

नौवाँ भव

ग्रन्थ	पार्श्व का जीव	कमठ का जीव
उत्तरपुराण	प्रापात कल्प	नरक
पुष्पदन्त	"	"
वादिराज	आनत	तमप्रभ,
देवभद्र सूरि	प्राणत	पंकप्रभा
हेमचन्द्र सूरि	दशम कल्प	चतुर्थ नरक
पद्मकीर्ति	वैजयन्त	रौद्र नरक
हेमविजय	दशम कल्प	चतुर्थ नरक
कविवर रइधू	चौदहवां कल्प	धूमप्रभ नरक

परिशिष्ट २

तापस परम्परा-एक परिचय

भगवान पार्श्व के समय तापस परम्परा का प्राबल्य था। निशीथ चूर्णि में बनवासी साधुओं को तापस कहा गया है।[1] तापस बनों में आश्रम बना कर रहते थे। यज्ञ–याग करने, शरीर को कष्ट देने हेतु पंचाग्नि तप तपते। उनका अधिकांश समय कन्द, मूल और फलों को बटोरने में व्यतीत होना। वे कभी कभी एक स्थान से दूसरे स्थान पर भी परिभ्रमण किया करते थे।

व्यवहार भाष्य से यह भी ज्ञात होता है कि कितने ही तापस ओखली (उदूखल) या धान साफ करने के स्थान (खलय) के सन्निकट पडे हुए धानों को बीनते और उन्हें पका कर खाते थे। कभी वे तापस इतने ही धान्य को ग्रहण करते, जिससे एक चम्मच, दंड या चुटकी से एक बार उठाया जा सके, अथवा धान्य राशि पर फेंके हुए वस्त्र पर एकवार में लगे रह जाते हो।[2]

औपपातिक में वानप्रस्थ तापसों का उल्लेख आया है।[3] वे तापस इस प्रकार थे —

---

१ निशीथ चूर्णि १३।४४–२० की चूर्णि—

२ व्यवहार भाष्य १०।२३–२५
मूलाचार – ५।५४ (वट्टकेर)

३ से जे इमे गंगाकूलगा वाणपत्था तापसा भवंति, तं जहा–होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया जण्णई सड्ढई थालई हुंपउट्ठा दंतुक्खलिया उमज्जका सम्मज्जका निम्मज्जका संपक्खाला दक्खिणकूलका उत्तरकूलका संखधमका कूलधमका मिगलुद्धका हत्थितावसा उद्दंडका दिसापोक्खिणो वाकवासिणो विलवासिणो जलवासिणो वेलवासिणो रुक्खमूलिआ अंवुभक्खिणो वाउभक्खिणो सेवाल-भक्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा बीयाहारा परिसडियकंदमूलतयपत्तपुप्फफलाहारा जलभिसेअकढिणगायभूया आयावणाहिं पंचग्गितावेहिं इंगालसोल्लियं कंडुसोल्लियं कट्ठसोल्लियं पिव......
औपपतिक सूत्र ३८ प. १७०।१७१

१ होत्तिय – अग्निहोत्र करने वाले
२ पोत्तिय – वस्त्रधारी तापस
३ कोत्तिय – भूमि पर सोने वाले
४ जण्णई – यज्ञ याजित
५ सड्ढई – श्राद्धिक तापस
६ थालई – अपना सामान साथ ले कर भ्रमण करने वाले
७ हुंपउट्टा – कुण्डिक सदा साथ ले कर भ्रमण करने वाले
*८ दंतुक्खलिया – फलभोजी
+९ उम्मज्जका – उन्मज्जन मात्र से स्नान करने वाले
१० सम्मज्जका – कई बार गोता लगा कर अच्छी तरह से स्नान करने वाले
११ निम्मज्जका – क्षण मात्र में स्नान करने वाले
१२ संपक्खला – मिट्टी घिस कर शरीर साफ करने वाले
१३ दक्खिण कूलका – गंगा के दक्षिण किनारे पर रहने वाले
१४ उत्तर कूलका – गंगा के उत्तर किनारे पर रहने वाले
१५ संखधम्मका – भोजन के पूर्व शंख बजाने वाले (ताकि भोजन के समय कोई न आवे)
१६ कूलधमका – तट पर शब्द कर के भोजन करने वाले
१७ मिगलुद्धका – पशुओं का शिकार करने वाले
०१८ हत्थितावसा – ये लोग हाथी मार लेते थे और महीनों एक उसी का मांस खाते थे। इस का वर्णन सूत्रकृताङ्ग में भी है। आर्द्रकुमार की इन तापसों से भेट हुई थी। उनका यह मन्तव्य था कि वर्ष में हम एक हाथी मार कर पाप कम करते हैं।
१९ उद्दंडका – दण्ड उपर कर के चलने वाले।

---

* दंतोलुखलिन् और उन्मज्जक तापसों का वर्णन रामायण (३।६।३) में भी मिलता है। तुलना कीजिए – दीघनिकाय अट्ठकथा – १ पृ. २७०

\+ कर्णदघ्ने जले स्थित्वा तपः कुर्वन् प्रवर्तते।
उन्मज्जकः स विज्ञेयस्तापसो लोकपूजितः॥

–अभिधानवाचस्पति

० हस्तिव्रत नामक तापस का उल्लेख ललितविस्तार पृ. २४८ में भी हुआ है। महावग्ग–६।१०।२२ पृष्ठ २३५ में दुर्भिक्ष्य के समय हस्ति आदि के मांस–भक्षण का वर्णन है।

÷२० दिसापोक्खिणो – चारों दिशाओं में जल छिडक कर फल-फूल एक करने वाले।

२१ वाकवासिणो – वल्कल धारी

२२ अंबुवासिणो – पानी में रहने वाले

२३ बिलवासिणो – बिल (गुफाओं) में रहने वाले

२४ जलवासिणो – जल में रहने वाले

२५ वेलवासिणो – समुद्रतट पर रहने वाले

२६ रुक्खमूलिया – वृक्षों के नीचे रहने वाले

२७ अंबुभक्खिणो – केवल जल पी कर रहने वाले

×२८ वायुभक्खिणो – केवल हवा पर रहने वाले

—२९ सेवालभक्खिणो – सेवाल खा कर रहने वाले

३० मूलाहारा – केवल मूल खाने वाले

३१ कंदाहारा – केवल कन्द खाने वाले

३२ तयाहारा – केवल वृक्ष की छाल खाने वाले

३३ पत्तहारा – केवल पत्र खाने वाले

३४ पुप्फहारा – केवल पुष्प खाने वाले

३५ बीयाहारा – केवल बीज खाने वाले

३६ परिसडियकंदमूलतयपत्तपुप्फफलाहारा – कन्द, मूल, छाल, पत्र, पुष्प फल खाने वाले

३७ जलाभिसेयकढिणगायभूया – बिना स्नान भोजन न करने वाले

३८ आयावणाहि – थोडा आतप सहन करने वाले

३९ पंचग्गितावेहिं – पंचाग्नि तापने वाले

४० इंगालसोल्लियं – अंगार पर सेंक कर खाने वाले

४१ कंडुसोल्लियं – तवे पर सेंक कर खाने वाले

४२ कट्ठसोल्लियं – लकडी पर पका भोजन खाने वाले

÷ देखिए —
  (क) निरयावलियाओ ३ पृ. ३७–४५
  (ख) वसुदेवहिण्डी पृ. १७
  (ग) दीघनिकाय– सिगालोववादसुत्त

× (क) रामायण (३।११।१२) में मंडकर्णी तापस का वर्णन है जो वायु भक्षण कर जीवित रहता था।
  (ख) महाभारत १।९६।४२

— देखिए ललित विस्तर पृ. २४८

इनके अतिरिक्त भी अन्य तापसों के उल्लेख मिलते हैं —

१ अत्तुक्कोरिया – आत्मा में ही उत्कर्ष मानने वाले

२ भूइकम्मिया – उपद्रव के रक्षार्थ भूतिदान करने वाले

३ भुज्जो भुज्जो कोउपकारका – सौभाग्यादि के निमित्त स्नानादि कराने वाले कौतुककारक[1]

४ धम्मचिंतका – धर्म शास्त्र पाठक[2]

५ गोव्वइया – गोव्रत धारण करने वाले[3]

६ गोअमा – छोटे बैल को किस प्रकार कदम रखना चाहिए, यह शिक्षा दे कर भिक्षा माँगने वाले[4]

७ गीयरई – गीत–रति से मानवों को मोहने वाले[5]

८ चंडिदेवगा – चक्र को धारण करने वाले चण्डी के भक्त[6]

९ दगसोयारिय – सांख्य मत के अनुयायी जो अत्यधिक पानी का उपयोग करते हैं।[7]

१० कम्मारभिक्खू – देवताओं की द्रोणी ले कर भिक्षा माँगने वाले[8]

११ कुव्वीए – कूर्चिक, कूर्च–धर–दाढ़ी रखने वाले[9]

१२ पिंडोलवा – भिक्षा पर जीवन निर्वाह करने वाले[10]

१३ सररक्ख – सचित्तरजोयुक्त–धूलियुक्त[11]

१४ वणीमग – याचक की तरह दीनता दिखा कर भिक्षा लेना। स्थानांग[12] में वनीपक के पाँच भेद किये हैं —(क) अतिथि (ख) कृपण (ग) ब्राह्मण (घ) श्वान (च) श्रमण

---

१ औपपातिक सूत्र ४१ पत्र १९६
२ ,, ३८ पत्र १६८
३ ,, ३८।१६८
४ ,, ३८।१६८
५ ,, ३८।१७१
६ सूत्रकृताङ्ग प्रथम भाग पत्र १५४–१ निर्युक्ति
७ पिण्ड निर्युक्ति, मलयगिरिवृत्ति ३१४ पत्र ९८–१
८ बृहत्कल्पभाष्य ३।४३ २१ विभाग ४ पृष्ठ ११७०
९ ,, १।२८ २२ विभाग ३ पृ. ७९८
१० उत्तराध्ययन चूर्णि पत्र १३८
११ आचारांग २।१।६।३
१२ पंच वणीमगा प. तं. अतिहिवणीमते किविणवणीमते माहणवणीमते साणवणीमते समणवणीमते

—स्थानांग ५।३।४४९ पृ. ३३९–२

३५ वारिभद्रक – पानी में ही कल्याण मानने वाले[1]
३६ वारिखल – मिट्टी के द्वारा बारह बार बर्तन को शुद्ध करने वाले[2]
निशीथ चूर्णि में अन्य तीर्थक श्रमण-श्रमणियों का वर्णन इस प्रकार है[3]—

१ आजीवक २ कप्पडिय ३ कब्बडिय ४ कावालिय ५ कावाल ६ कापालिका ७ गेरुअ ८ गोव्वय ९ चरक १० चरिका ११ तच्चनिय १२ तच्चणगी १३ तडिय १४ तावस १५ तिडंगी परिव्वायग १६ दिसापोक्खिय १७ परिव्वाय १८ परिव्राजिका १९ पंचगव्वासणीय २० पंचाग्गिमावयं २१ पंडरंग २२ पंडर भिक्खु २३ रत्तपड २४ रत्तपडा २५ वणवासी २६ मगवी २७ वृद्ध सावक २८ सक्क-शाक्य २९ सरकव ३० समण ३१ हड्डसरकव

इस प्रकार तापसों की विविध परम्पराएँ उपलब्ध होती हैं। उनमें अज्ञान तप का प्राधान्य था।

---

१ सूत्रवृतांग प्रथम भाग पत्र १५४–१
२ बृहत्कल्पभाष्य - १।१७३८ विभाग २ पृ. ५१३
३ निशीथ सूत्र सभाष्य चूर्णि भाग २ पृ. ११८–२०

परिशिष्ट ३

पारिभाषिक शब्द-कोश।

अंग – अंगसूत्र बारह हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग; स्थानांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद।

अचेलक – अल्पवस्त्र या वस्त्ररहित।

अणुव्रत – हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का यथाशक्ति एक-देशीय त्याग।

अतिचार – व्रतभंग के लिए सामग्री एकत्रित करना या एकदेश से व्रत का खण्डन करना।

अनगार – अपवाद-रहित ग्रहण की हुई व्रतचर्या।

अन्तेवासी – गुरु के समीप रहने वाला।

अपूर्वकरण – ऐसा विशिष्ट शुद्ध आत्मभाव, जिससे जीव राग-द्वेष रूपी दुर्भेद्य ग्रन्थि का उच्छेद करता है। ऐसे परिणाम को अपूर्वकरण भाव इसीलिए कहा है। वह जीव को कभी ही आता है।

अभिग्रह – विशेष प्रकार की प्रतिज्ञा।

अरिहन्त – राग-द्वेष रूप शत्रुओं को पराजित करने वाले विशिष्ट पुरुष।

अवधिज्ञान – इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा से रूपी द्रव्यों को जानना।

अवसर्पिणी काल – कालचक्र का वह विभाग जिसमें प्राणियों के संहनन, संस्थान धीरे धीरे हीन होते हैं, आयु और अवगाहना कम होती है। उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम का ह्रास होता है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में भी न्यूनता आती है। शुभभावों की हानि होती है और अशुभ भाव बढते हैं। इसके छह विभाग हैं—१ सुषम-सुषम २ सुषम ३ सुषम-दुःषम ४ दुःषम-सुषम ५ दुःषम ६ दुःषम-दुःषम

अविरति – व्रत ग्रहण कर पाप से निवृत्त होना।

असंख्य प्रदेशी – वस्तु के अविभाज्य अंश को प्रदेश कहा जाता है। जिसमें ऐसे प्रदेशों की संख्या असंख्य हो, वह असंख्य प्रदेशी कहलाता है। हरेक जीव असंख्य प्रदेशी है।

आगार धर्म – अपवाद सहित स्वीकृत व्रतचर्या।

आजीवक – इस मत का प्रवर्तक गोशालक था, जो आत्मवादी, निर्वाणवादी और कष्टवादी होते हुए भी कट्टर नियतिवादी था। तथापि लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण विषयक भविष्य बना कर आजीविका चलाने से वह आजीवक कहलाता था।

आरा – विभाग

आर्तध्यान – प्रिय के वियोग एवं अप्रिय के संयोग में चिन्तित रहना।

आलोचना – प्रायश्चित्त के लिए अपने दोषों को गुरु के सम्मुख प्रकट करना।

आस्रव – कर्म को आकर्षित करने वाले आत्म-परिणाम। कर्मागमन का द्वार।

उत्तरगुण – मूल गुण की रक्षा के हेतु की जाने वाली प्रवृत्तियाँ। श्रमण के लिए पिण्ड विशुद्धि, समिति, भावना, तप प्रतिमा, अभिग्रह प्रभृति। श्रावक के लिए दिशाव्रत आदि।

उत्सर्पिणी -- अवसर्पिणी से विपरीत, अर्थात् उत्तरोत्तर वृद्धि।

उपयोग – चेतना का व्यापार विशेष, अर्थात् ज्ञान और दर्शन।

ऋजुजड – सरल किन्तु तात्पर्य को नहीं समझने वाला।

ऋजुप्राज्ञ – सरल एवं बुद्धिमान। संकेत मात्र से अन्तस्तल तक पहुँचने वाला।

कर्म – आत्मा ही सत् एवं असत् प्रवृत्तियों से आकृष्ट एवं कर्मरूप में परिणत होन वाले पुदगल-विशेष।

कल्प – विधि, आचार, मर्यादा।

गणधर – लोकोत्तर ज्ञान, दर्शन प्रभृति गुणों के समूह को धारण करने वाले तीर्थंकरों के प्रधान शिष्य, जो उनकी वाणी का सूत्ररूप में संकलन करते हैं।

गाथापति – गृहपति; विशाल, समृद्ध, सम्पन्न परिवार का स्वामी। वह व्यक्ति; जिसके यहाँ कृषि और व्यवसाय दोनों कार्य होते हैं।

गुणव्रत – श्रावक के द्वादश व्रतों में छट्ठा, सातवां और आठवां।

गोचरी – जैन श्रमणों का विधिवत् आहार-याचन। भिक्षाटन, माधुकरी।

घातीकर्म – जैन दृष्टि से संसार परिभ्रमण का हेतु कर्म है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से जब आत्मप्रदेशों में कम्पन होता है, तब जिस क्षेत्र में आत्म प्रदेश होते हैं, उस प्रदेश में रहे हुए अनन्तानन्त कर्मयोग्य पुद्‌गल आत्मा के साथ क्षीर-नीरवत् सम्बन्धित होते हैं। उन पुद्‌गलों को कर्म कहते हैं। घाती और अघाती रूप में वे दो प्रकार के हैं। आत्मा के ज्ञान आदि स्वाभाविक गुणों का घात करने वाले कर्म घाती कहलाते हैं। वे चार प्रकार के हैं–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय।

चतुर्थभक्त – उपवास।

चतुर्दश पूर्व – १ उत्पाद २ अग्रायणीय ३ वीर्यप्रवाद ४ अस्तिनास्तिप्रवाद ५ ज्ञानप्रवाद ६ सत्यप्रवाद ७ आत्मप्रवाद ८ कर्मप्रवाद ९ प्रत्याख्यानप्रवाद १० विद्याप्रवाद ११ कल्याण १२ प्राणावाय १३ क्रियाविशाल १४ लोकबिन्दुसार ये चौदह पूर्व बारहवें अंग दृष्टिवाद के अंतर्गत हैं।

चातुर्याम – चार महाव्रत। प्रथम तीर्थंकर और अन्तिम तीर्थंकर के अतिरिक्त मध्यवर्ती बावीस तीर्थंकरों के समय पाँच महाव्रतों का समावेश चार महाव्रतों में होता हैं।

चारित्र – आत्मविशुद्धि के लिए किया जानेवाला उत्कृष्ट उपष्टम्भ।

च्यवन – मरण, देवगति का आयुष्य पूर्ण कर मनुष्यादि गति मे जाना।

चोवीसी – चोवीस तीर्थंकर।

छठ्ठ – दो दिन का उपवास, बेला, षष्टम।

छद्मस्थ – घातीकर्म के उदय को छद्म कहते हैं। इस अवस्था में स्थित आत्मा छद्मस्थ कहलाती हैं। जहाँ तक केवल ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती, वहाँ तक वह छद्मस्थ कहलाता हैं।

जम्बूद्वीप – जैन दृष्टि से असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं। हरेक द्वीप को समुद्र और समुद्र को द्वीप घेरे हुए हैं। उन सब से मध्य में जम्बूद्वीप है। वह पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण एक एक लाख योजन माना जाता है। १ भरत २ हैमवन ३ हरि ४ विदेह ५ रम्यक् ६ हैरण्यवत् और ७ ऐरावत—ये सात वर्ष क्षेत्र है दक्षिण में भरत, ऐरावत उत्तर में है, तथा महाविदेह पूर्व व पश्चिम में हैं।

जातिस्मरणज्ञान – पूर्व जन्म की स्मृति जिस ज्ञान से होती है। एक मान्यता के अनुसार इस ज्ञान से एक व्यक्ति एक से लेकर ९ पूर्व जन्मों को जान सकता हैं। दूसरी मान्यता से ९०० भवों को जान सकता हैं।

जिन – राग और द्वेष को जीतने वाला। अर्हत् आदि इसके पर्यायवाची हैं।

जिनकल्पिक – गच्छ से पृथक् रहकर उत्कृष्ट चारित्र की साधना करना। उसका आचार जिन सदृश होने से जिनकल्प कहलाता हैं। वह साधक-प्राकृतिक हो या दैविक हो तथा शारीरिक हो—किसी भी उपसर्ग से विचलित नहीं होता। वह अभिग्रह पूर्वक भिक्षा लेता है तथा ध्यान आदि में सदा तल्लीन रहता हैं। यह साधना विशेष संहनन युक्त साधक के द्वारा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त होने पर की जाती हैं।

जिनमार्ग – जिन द्वारा कथित धर्म।

ज्ञान – सामान्य-विशेपात्मक पदार्थ के सामान्य धर्म को न्यून कर केवल विशेष धर्मों का कथन करना।

ज्ञानावरणीय कर्म – आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करनेवाला कर्म।

तीर्थ – जिस से संसार-समुद्र तैरा जा सके। तीर्थंकर केवल ज्ञान होने के पश्चात उपदेश देते हैं और उससे श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविकाएँ वनते हैं, यह चतुर्विध तीर्थ कहा जाता है।

तीर्थंकर – तीर्थ का प्रवर्तन करनेवाले आप्त पुरुष।

तीर्थंकर नाम कर्म – जिस नाम कर्म के उदय से जीव तीर्थंकर रूप में उत्पन्न होता है।

दिक्कुमारियाँ – तीर्थंकर के प्रसूति-कर्म को करनेवाली देवियाँ। उनकी संख्या ५६ हैं। इनमें से ८ अधोलोक में, ८ ऊर्ध्वलोक में मेरु पर्वत पर, ८ पूर्व रुचकाद्रि पर, ८ दक्षिण रुचकाद्रि पर, ८ पश्चिम रुचकाद्रि पर, ८ उत्तर रुचकाद्रि पर, ४ विदिशा के रुचक पर्वत पर और ४ रुचक द्वीप पर रहती हैं।

दिशाचर – पथ-भ्रष्ट शिष्य।

देव – औपपातिक प्राणी। ये भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक —चार प्रकार के हैं।

देवदूष्य – बहुमूल्य कम्बल, जो दीक्षा लेते समय इन्द्र तीर्थंकर को देते है।

देवाधिदेव – अरिहन्त।

देशव्रती – व्रतों का किसी एक अंश से पालन करने वाला।

द्वादशांगी – तीर्थंकरों की वाणी का गणधरों के द्वारा जो संकलन होता है, वह अंग है। वे संख्या में बारह हैं, अतः द्वादशांगी है। जैसे पुरुष के दो पैर, दो जंघाएँ, दो उदर, दो गात्रार्द्ध, दो बाहु, एक गर्दन, और एक मस्तक होता है, उसी प्रकार श्रुत-पुरुष के बारह अंग हैं। वे ये है-आचारांग, सूत्रकृतांग,

स्थानांग, समवायांग, विवाह प्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्न व्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद।

नरक – जहाँ पर भयंकर पापाचरण करनेवाले जीव पापों का फल प्राप्त करने के लिए उत्पन्न होते है।

निर्जरा – तप के द्वारा कर्म-मल के उच्छेद से होनेवाली आत्म-उज्वलता।

पंचमुष्टिक लुंचन – मस्तक को पाँच विभागों में विभक्त कर लुंचन करना।

परीषह – साधु जीवन में अनेक प्रकार के होनेवाले शारीरिक कष्ट।

पल्योपम – उपमा-विशेष काल-परिणाम।

पादोपगमन – अनशन का एक प्रकार। पाद का अर्थ है, वृक्ष की अेक छिन्न शाखा। वृक्ष की छिन्न शाखा की तरह अंग से निश्चेष्ट रह-पडा रहना-किसी भी प्रकार का हलन चलन न करना और जीवन पर्यन्त आहार का त्याग करना पादोपगमन संथारा है।

पाप – अशुभ कर्म। पाप के हेतु भी पाप कहलाते हैं।

पार्श्वस्थ – केवल श्रमण का वेश धारण कर रहना किन्तु साध्वाचार का यथावत् पालन नहीं करना।

पार्श्वनाथ–सन्तानीय – भगवान पार्श्व की परम्परा के।

प्रत्याख्यान – त्याग करना।

प्रवचन–प्रभावना – विविध प्रयत्नों से धर्म-शासन की प्रभावना करना।

प्रायश्चित्त – साधना में लगे हुए दोषों की विशुद्धि के लिए हृदय से पश्चाताप करना।

बाल तपस्वी – अज्ञानपूर्वक तप का अनुष्ठान करने वाला।

बालमरण – अज्ञान अवस्था में मरण।

बेला – दो दिन का उपवास।

भव्य – मोक्ष प्राप्ति की योग्यता वाले जीव।

भिक्षु प्रतिमा – साधुओं द्वारा अभिग्रह विशेष से तप का आचरण। ये प्रतिमाएँ बारह प्रकार की होती है।

मतिज्ञान – इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान।

मनःपर्यव – मनोवर्गणा के अनुसार मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान।

महानिर्ग्रन्थ – तीर्थंकर।

महाव्रत – हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का मनसा, वाचा, कर्मणा जीवनपर्यन्त परित्याग। हिंसा आदि का पूर्ण त्याग महाव्रत है।

मिथ्यात्व – तत्त्व के प्रति विपरित श्रद्धा।

मूलगुण – जो गुण चारित्ररूपी वृक्ष के मूल होते हैं, जैसे श्रमणों के पांच महाव्रत और श्रावकों के अणुव्रत।

मोक्ष – सम्पूर्ण कर्मक्षय के अनन्तर आत्मा का अपने स्वरूप में अधिष्ठान।

योग – मन, वचन और काया की प्रवृत्ति।

लब्धि – आत्मा की विशुद्धि से प्राप्त होने वाली विशिष्ट शक्ति।

लेश्या – योग वर्गणा के अन्तर्गत पुद्गलों की सहायता से होने वाला आत्म-परिणाम।

लोकान्तिक – पाँचवें ब्रह्म-स्वर्ग में छह प्रतर हैं। जैसे मकानों में मंजिलें होती हैं, वैसे ही स्वर्गों में प्रतर हैं। तीसरे अरिष्ट प्रतर के पास दक्षिण दिशा में त्रसनाडी के भीतर चार दिशाओं में और चार ही विदिशाओं में आठ कृष्ण राजियां है। लोकान्तिक देवों के यहाँ पर नव विमान हैं। आठ विमान आठ कृष्ण राजियों में हैं और एक उनके मध्य भाग में है। उनके नाम इस प्रकार हैं— १ अर्ची २ अर्चिमाल ३ वैरोचन ४ प्रभंकर ५ चन्द्राभ ६ शुक्राभ ७ ...... ८ सुप्रतिष्ठ ९ रिष्ठाभ। लोक के अन्त में रहने से ये लोकान्तिक कहलाते हैं। ये विपय-वासना से प्रायः मुक्त रहते हैं। अतः देवर्षि भी कहे जाते हैं। ये अपनी परम्परा के अनुसार तीर्थंकरों की दीक्षा के पूर्व उद्‌बोधन देने हेतु आते हैं।

वक्रजड – शिक्षित होने पर भी कुतर्कों द्वारा परमार्थ की अवहेलना करने वाला। छलपूर्वक व्यवहार करते हुए अपनी मूर्खता को चतुरता के रूप में प्रदर्शित करने वाला।

वर्षीदान – तीर्थंकरों के द्वारा एक वर्ष तक प्रतिदिन दिया जाने वाला दान।

विराधक – गृहीत व्रतों का पूर्ण रूप से आराधना नहीं करने वाला। अपने दुष्कृत्यों की प्रायश्चित करने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाना।

वैयावृत्ति – आचार्य, उपाध्याय, शैक्ष, ग्लान तपस्वी, स्थविर साधर्मिक, कुलगण, संघ आदि की आहारादि से सेवा करना।

शल्य – जिससे पीडा हो। उसके तीन प्रकार हैं—१ माया शल्य (कपट भाव रखना), २ निदान-शल्य (राजा, देवता आदि की ऋद्धि को देख कर या श्रवण कर यह चिन्तन करना कि मेरे द्वारा आचीर्ण, ब्रह्मचर्य, तप आदि अनुष्ठानों के फल स्वरूप मुझे भी ये ऋद्धियाँ प्राप्त हो। ३ मिथ्यादर्शन-शल्य (विपरीत श्रद्धा का होना)।

शिक्षाव्रत – वार वार सेवन करने योग्य अभ्यास प्रधान व्रतों को शिक्षाव्रत कहते है।

शुक्लध्यान – निर्मल–प्रणिधान–समाधि-अवस्था। इसके चार प्रकार हैं—१ पृथक्त्व वितर्क सविचार, २ एकत्व वितर्क सविचार, ३ सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती और ४ समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति।

शेषकाल – वर्षावास के अतिरिक्त का समय।

शैलेषी अवस्था – चौदहवें गुणस्थान में जब मन, वचन और काया का योग निरोध हो जाता है, तब उसे शैलेषी अवस्था कहते हैं। ध्यान की पराकाष्ठा होने से इसमें मेरुसदृश निष्कम्पता और निश्चलता आती है।

श्रुतज्ञान – शब्दादि द्रव्य श्रुत के अनुसार दूसरों को समझाने में सक्षम मतिज्ञान।

षडावश्यक – रत्नत्रय की आराधना के लिए आत्मा द्वारा करने योग्य क्रिया को आवश्यक कहा जाता है। ये छह प्रकार के हैं—

१ सामायिक – समभाव का लाभ अथवा समभाव की प्राप्ति।

२ चतुर्विंशतिस्तव – तीर्थंकरों की स्तुति करना।

३ वन्दना – मन, वचन और काया का वह प्रशस्त भाव, जिससे उनके प्रति बहुमान प्रकट किया जाता है।

४ प्रतिक्रमण – प्रमादवश शुभ योग से अशुभ योग की ओर प्रवृत्त हो जाने पर पुनः शुभ योग में प्रवृत्त होना। संक्षेप में अपने दोषों की आलोचना कर विशुद्ध बनना।

५ कायोत्सर्ग – एकाग्र हो कर शरीर की ममता का परित्याग करना।

६ प्रत्याख्यान – किसी एक अवधि के लिए पदार्थ विशेष का त्याग करना।

सन्थारा – अन्तिम समय में आहार आदि का परिहार करना।

संलेखना – शारीरिक तथा मानसिक एकाग्रता से कषायादि का शमन करते हुए तपस्या करना।

संवर – कर्म करने वाले आत्म-परिणामों का निरोध।

संस्थान – आकृति विशेष।

संहनन – शरीर की अस्थियों का दृढ बन्धन, शारीरिक बल।

सचेलक – बहुमूल वस्त्र सहित।

सन्निवेश – उपनगर।

समय – काल का सूक्ष्मतम अविभाज्य अंश।

समवसरण – तीर्थंकर–परिषद्, अर्थात् वह स्थान जहाँ पर तीर्थंकर उपदेश देते हैं।

समाचारी – श्रमणों की अवश्य करणीय क्रियाएँ।

समाधिमरण – श्रुत-चरित्र-धर्म में स्थित रहते हुए निर्मोह भाव में मृत्यु।

समिति – संयम के अनुकूल प्रवृत्ति। पाँच हैं – ईर्या, भाषा, एषना, आदान–निक्षेप और उत्सर्ग।

समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति – शुक्ल ध्यान का चतुर्थ चरण, जिसमें समस्त क्रियाओं का निरोध होता है।

सम्यक्त्व – यथार्थ तत्त्व–श्रद्धा।

सागरोपम – पल्योपम की दस कोटि-कोटि।

सामायिक चारित्र – सर्वथा सावद्य योगों से विरति।

सावद्य – पाप सहित।

सिध्द – कर्मों का निर्मूल नाश कर जन्म-मरण से मुक्त होने वाली आत्मा।

सिद्धि – सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से प्राप्त होने वाली अवस्था।

स्थविर – साधना में स्खलित होते हुए को स्थिर करे। प्रव्रज्या, वय और श्रुत रूप में तीन प्रकार का है।



परिशिष्ट ४

भौगोलिक परिचय

इस ग्रन्थ में अनेक देशों और नगरों का उल्लेख हुआ है। सत्ताईससौ वर्ष की लम्बी अवधि में अनेक देश व नगरों के नाम परिवर्तित हो चुके हैं। कितने ही नगर उस समय समृद्ध थे। आज वे खण्डहर मात्र रह गये हैं। कितने ही मूल से नष्ट हो चुके हैं, तो कितने ही उसी पुराने नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं। कितने ही नगरों के सम्बन्ध में अत्यधिक अन्वेषणा की गई है और कितने नगर ऐसे भी हैं जिनके सम्बन्ध में तनिक भी खोज नहीं की गई। हम यहाँ प्रमुख प्रमुख नगरों के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

श्रावस्ती

यह सौराष्ट्र राज्य की राजधानी थी। आधुनिक विद्वानों ने इसकी पहचान सहेट-महेट से की है। सहेट गोंडा जिले में है और महेट बहराईच जिले में। महेट उत्तर में है और सहेट दक्षिण में।[1] यह स्थान उत्तर-पूर्वीय रेल्वे के बलरामपुर स्टेशन से जो सडक जाती है, उससे दस मील दूर है। बहराईच से वह २९ मील पर अवस्थित है।

विद्वान् वी. स्मिथ के अभिमतानुसार श्रावस्ती नेपाल देश के खजूरा प्रान्त में है और वह बालपुर की उत्तर दिशा में तथा नेपालगंज के सन्निकट उत्तर-पूर्वीय दिशा में है।[2] युआन चुआङ्ग ने श्रावस्ती को जनपद माना है और उसका विस्तार छह हजार ली, उसकी राजधानी को 'प्रासादनगर' कहा है, जिसका विस्तार बीस ली माना है।[3]

जैन दृष्टि से यह नगरी अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे बसी थी, जिसमें बहुत कम पानी रहता था, जिसे पार कर जैन श्रमण भिक्षा के लिए

---

१ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया पृ-४६९-४७४

२ जर्नल ऑफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी भाग १ जन १९००

३ युआन चुआङ्गस् ट्रैवेल्स इन इंडिया भाग १ पृ. ३७७

जाते थे।[1] कभी कभी उस में बहुत तेज बाढ भी आ जाती थी।[2]

श्रावस्ती बौद्ध और जैन संस्कृती का केन्द्र स्थान रहा है। केशी और गौतम का ऐतिहासिक संवाद वहीं हुआ।[3] अनेक ऐतिहासिक प्रसंग उस भूमि से जुडे हुए हैं।[4]

आज यह ऐतिहासिक नगरी चारों ओर जंगलों से घिरी हुई है।

चम्पा

यह अंग देश की राजधानी थी। कनिंघम ने लिखा है—'भागलपुर' से ठीक २४ मील पर 'पत्थर घाट' हैं। यहीं या इसके आसपास चम्पा की अवस्थिति होनी चाहिए। इसके पास ही पश्चिम की ओर एक बडा गांव है, जिसे चम्पानगर कहते हैं और एक छोटासा गांव है, जिसे चम्पापुर कहते हैं। सम्भव है, ये दोनों प्राचीन राजधानी चम्पा की सही स्थिति के द्योतक हो।'[5]

फाहियान ने चम्पा को पाटलिपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा में, गंगा के दक्षिण तट पर स्थित माना है।[6]

महाभारत की दृष्टि से चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' था। महाराजा चम्प ने उसका नाम चम्पा रखा।[7]

स्थानांग[8] में जिन दस राजधानियों का उल्लेख हुआ है और दीघ निकाय में जिन छह महानगरियों का वर्णन किया गया है, उनमें एक चम्पा भी है। औपपातिक सूत्र में इसका विस्तार से निरूपण है।[9]

---

१ (क) कल्पसूत्र
(ख) बृहत्कल्पसूत्र ४।३३
(ग) बृहत्कल्पभाष्य ४।५६३९, ५६५३

२ (क) आवश्यक चूर्णि पृ. ६०१
(ख) आवश्यक हरिभद्रीय वृत्ति पृ. ४६५
(ग) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पृ. ५६७
(घ) टौनी का कथा कोश पृ. ६

३ उत्तराध्ययन

४ महावीर जीवन दर्शन—ले. देवेन्द्रमुनि

५ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया पृ. ५४६–५४७

६ ट्रैवल्स ऑफ फाहियान पृ. ६५

७ महाभारत १२।५।१३४

८ स्थानांग १०।७१७

९ औपपातिक चम्पा वर्णन

दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यंभव ने वहीं की थी।[1]

सम्राट श्रेणिक के निधन के पश्चात् कूणिक (अजातशत्रु) को राजगृह में रहना न भाया और एक स्थान पर चम्पा के सुन्दर उद्यान को देख कर चम्पा नगर बसाया।[2] संभव है, कूणिक का बसाया चम्पानगर भगवान पार्श्व जिस चम्पा में पधारे, उससे पृथक रहा हो। गणि कल्याण विजयजी के अभिमतानुसार चम्पा पटना से पूर्व (कुछ दक्षिण में) लगभग सौ कोस पर थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते हैं। यह स्थान भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम में है।[3]

कौशाम्बी

कौशाम्बी (कोसम, जिला इलाहाबाद) वत्स की राजधानी थी। इस नगरी का वर्णन रामायण और महाभारत में भी आता है। कहा जाता है कि गंगा की बाढ से हस्तिनापुर के नष्ट भ्रष्ट हो जाने पर राजा परीक्षित के उत्तराधिकारियों ने कौशाम्बी को राजधानी बनाया। यहां के कुक्कुटाराम, घोषिताराम और अम्बवन आदि के उल्लेख जैन और बौद्ध वाङ्मय में अनेक स्थलों पर आया है।

कनिंघम के अभिमतानुसार यमुना नदी के बायें तट पर, इलाहाबाद से सीधे रास्ते से लगभग ३० मील दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित 'कोसम' गांव ही प्राचीन कौशाम्बी है।[4]

उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति के अनुसार कौशाम्बी और राजगृह के बीच अठारह योजन का एक महा अरण्य था। वहां पर बलभद्र आदि कक्कडदास जाति के पांच सौ तस्कर रहते थे, जिन्हें कपिलमुनि ने प्रतिबोध दिया था।[5]

बृहत्कल्प में श्रमण और श्रमणियों के विहार की जो सीमा निर्धारित की है, उसमें कौशाम्बी दक्षिण दिशा की सीमानिर्धारण नगरी थी।[6]

कौशाम्बी के आसपास की जो खुदाई हुई है और जो भग्नावशेष निकले हैं, उसके सम्बन्ध मे विन्सेंट स्मिथ ने लिखा है—मेरा यह दृढ निश्चय है कि इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत 'कोसम' गांव से प्राप्त अवशेषों में अधिकतर जैनों के हैं। कनिंघम

---

१ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. ४६४
२ विविध तीर्थ कल्प पृ. ६५
३ श्रमण भगवान महावीर पृ. ३६९
४ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया पृ. ४५४
५ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पत्र २८८-२८९
६ बृहत्कल्पसूत्र भाग ३ पृ. ९१२

ने जो इन्हें बौद्ध अवशेषों के रूप में स्वीकार किया है, वह ठीक नहीं है। निःसन्देह यह स्थान जैनों की प्राचीन नगरी कौशाम्बी का ही प्रतिनिधित्व करता है।[1]

भगवान महावीर भी अनेक वार कौशाम्बी पधारे। चंदनवाला और मृगावती ने यहीं पर दीक्षा ली थी। राजा शतानीक भी कौशाम्बी का ही शासक था।

मथुरा

मथुरा उत्तरापथ की एक विशिष्ट नगरी मानी गई है। इसका दूसरा नाम इन्द्रपुर था।[2] यह व्यापार का मुख्य केन्द्र था।[3] यहाँ के लोगों का मुख्य कार्य व्यापार था, न कि खेती आदि।[4] आवश्यक चूर्णि के अनुसार यह अनेक साधु-सन्तों का केन्द्र रहा है। एतदर्थ इसे पाखण्डी गर्भ कहा है।[5]

अन्तिम केवली जम्बू स्वामी का निर्वाण मथुरा में ही हुआ था।[6] ईस्वी की चौथी शताब्दी में जैन आगमों की संकलना भी यही हुई थी।[7]

मथुरा की पहचान मथुरा से दक्षिण-पश्चिम में स्थित महोलि नामक ग्राम से की जाती है।

हस्तिनापुर

इसकी अवस्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों का अभिमत है—मेरठ जिले में मवाना तहसील में मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व में स्थित जो हस्तिनापुर है, वही प्राचीन हस्तिनापुर है। इस नगर का अपर नाम गजपुर, हस्तिनी, हस्तिनपुर[8] और नागपुर[9] भी रहा है।

---

१ Journal of Royal Asiatic Society, July 1894—

I feel certain that the remains at Kosam in the Allahabad district will prove to be Jain for the most part and not Buddhist as Cunningham supposed. The village undoubtedly represents the Kausambi of the Jains and the site, where temples exist, is still a place of pilgrimage for the votaries of Mahavira.

२ आवश्यक चूर्णि २ पृ. १९३.

३ आवश्यक टीका, हरिभद्र पृ. ३०७.

४ बृहत्कल्प भाष्य १।१२३९

५ आचारांग चूर्णि पृ. १६३.

६ कल्पसूत्र-विवेचन पृ. २८३ (देवेन्द्रमुनि सम्पादित)

७ वीर निर्वाण संवत और जैन कालगणना पृ. १०४ (कल्याण विजय)

८ श्रमण भगवान महावीर पृ. ३९७

९ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. ४६९

स्थानांग में दस राजधानियों का उल्लेख है, उसमें कुरु जनपद की प्रसिद्ध राजधानी हस्तिनापुर रही है।[1] वसुदेवहिण्डी में इसे ब्रह्मस्थल माना है।[2] यह स्थान शान्ति, कुन्थु और अर तीर्थंकरों की जन्मभूमि रहा है।[3]

जिनप्रभसूरि ने इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए लिखा है कि, भगवान ऋषभ के सौ पुत्र थे। उनमें एक का नाम 'कुरु' था। उनके नाम से कुरु जनपद विख्यात हुआ। कुरु के पुत्र का नाम हस्ती था। उसने हस्तिनापुर नगर बसाया। इस नगर के पास गंगा नदी बहती थी।[4] रामायण और महाभारत में भी इसे गंगा के सन्निकट बताया है। किन्तु पाली साहित्य में हस्तिपुर या हस्तिनीपुर के पास गंगा के होने का उल्लेख नहीं है।

मिथिला

विदेह राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पश्चिम में गंडकी और पूर्व में मही नदी तक थी।

जातक की दृष्टि से इस राष्ट्र का विस्तार तीन सौ योजन था।[5] उसमें सोलह सहस्र गाँव थे।[6]

रामायण में मिथिला को जनकपुरी कहा है। विविध तीर्थकल्प में इस देश को तिरहुत्ति कहा है।[7] और मिथिला को जगती (प्रा. जगई) कहा है।[8] इसके सन्निकट ही महाराजा जनक के भ्राता कनक थे। उनके नाम से कनकपुर बसा हुआ है।[9] यहाँ से जैन श्रमणों की शाखा मैथिलिया निकली।[10]

भगवान महावीर ने छह चातुर्मास वहाँ पर बिताएँ।[11] आठवें गणधर

---

१ स्थानांग १०।३।७१९
२ वसुदेवहिण्डी पृ. १६५
३ समवायांग
४ विविध तीर्थ कल्प पृ. २७
५ सुरुचि जातक (सं. ४८९) भाग ४ पृ. ५२१–५२२
६ जातक (सं. ४०६) भाग ४ पृ. २७
७ संपइकाले तिरहुत्ति देसोत्ति भण्णई।

विविध तीर्थकल्प पृ. ३२

८ विविध तीर्थ कल्प पृ. ३२
९ वही पृ. ३२
१० कल्पसूत्र २१३ पृ. २९८ (देवेन्द्रमुनि)
११ छम्मिहिलाए

—कल्पसूत्र १२२ पृ. १३८

अकम्पित की वह जन्मभूमि थी।[1] वाणगंगा और गंडक ये दो नदियाँ इस नगर को परिवेष्टित कर वहती थी।[2] जैन आगमों में उल्लिखित दस राजधानियों में मिथिला का भी नाम है।[3] वहाँ के लोग पढे लिखे तथा शास्त्रों के ज्ञाता थे।[4]

साकेत

फैजाबाद जिले में फैजाबाद से पूर्व और उत्तर में छह मील पर सरयू नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित वर्तमान अयोध्या के समीप प्राचीन साकेत नगर था।

किसी समय यह दक्षिण कोशल की राजधानी थी। हिन्दु पुराणों में इसे मध्यप्रदेश की राजधानी कहा है। जैन दृष्टि से भगवान ऋषभदेव के राज्याभिषेक के अवसर पर भौगोलिकों की विनम्रता को देख कर इन्द्र ने विनीता नगरी वसाई।[5] विनीता का ही दूसरा नाम अयोध्या हुआ। भगवान पार्श्व और महावीर के समय अयोध्या को साकेत कहा जाने लगा। यह मर्यादापुरुषोत्तम राम की जन्मभूमि भी रही है।

राजगृह

मगव की राजधानी राजगृह थी, जिसे मगधपुर, क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर और कुशाग्रपुर आदि अनेक नामों से पुकारा जाता रहा है।

आवश्यक चूर्णि के अनुसार कुशाग्रपुर में प्रायः आग लग जाती थी। अतः राजा श्रेणिक ने राजगृह वसाया।[6] महाभारत युग में राजगृह में जरासन्ध राज्य करता था। पाँच पहाडियों से धिरे होने के कारण उसे गिरिव्रज भी कहते थे। उन पहाडियों के नाम जैन, वौद्ध और वैदिक उन तीनों ही परम्पराओं में पृथक् पृथक् रहे हैं।[7] ये पहाडियाँ आज भी राजगृह में हैं। वैभार और विपुल पहाडियों का वर्णन जैन ग्रन्थों में विशेष रूप से आया है। वृक्षादि से वे खूब

---

१ आवश्यक निर्युक्ति गा. ६४४
२ विविध तीर्थ कल्प पृ. ३२
३ स्थानांग १०।७१७
४ विविध तीर्थ कल्प पृ. ३२
५ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पत्र १५७–२
६ आवश्यक चूर्णि २ पृ. १५८
७ जैन—विपुल, रत्न, उदय, स्वर्ग और वैभार
वैदिक–वैहार, वाराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक
वौद्ध–चन्दन, गिज्झकूट, वेभार, इसगिलि और वेपुल्ल—
सूत्र निपात की अट्ठकथा २ पृ. ३८२

हरे भरे थे। वहाँ अनेक श्रमणों ने निर्वाण प्राप्त किया। वभार पहाड़ी के नीचे ही तपोदा और महातपोपनीरप्रभ नामक उष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था।[1] वर्तमान में भी राजगिर में तपोवन के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भगवान महावीर ने अनेक चातुर्मास वहाँ व्यतीत किए हैं।[2] दो सौ से भी अधिक बार उनके समवसरण होने के उल्लेख आगम साहित्य में मिलते हैं। वहाँ पर गुणसिल[3], मंडिकुच्छ[4] और मोग्गरपाणि[5] आदि उद्यान थे। भगवान महावीर प्रायः गुणसिल (वर्तमान में जिसे गुणाना कहते हैं) उद्यान में ठहरा करते थे।

राजगृह व्यापार का भी प्रमुख केन्द्र था। वहाँ पर दूर दूर के व्यापारी आया करते थे। वहाँ से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा प्रभृति भारत के प्रसिद्ध नगरों में जाने के मार्ग थे।[6] बौद्ध ग्रन्थों में वहाँ के सुन्दर धान के खेतों का वर्णन है।

आगम साहित्य में राजगृह को प्रत्यक्ष देवलोकभूत एवं अलकापुरी सदृश कहा है,[7] पर बुद्ध निर्वाण के बाद क्रमशः राजगृह की अवनति होने लगी। जब चीनी यात्री हुएनसांग यहाँ पर आया था, तब राजगृह पूर्व जैसा नहीं रहा था। आज वहाँ के निवासी दरिद्र और अभावग्रस्त हैं। आजकल राजगृह 'राजगिर' नाम से विश्रुत है। राजगिर विहार प्रान्त में पटना से पूर्व-दक्षिण और गया से पूर्वोत्तर में अवस्थित है।

---

१ (क) व्याख्या प्रज्ञप्ति २।५। पृ. १४१
(ख) बृहत्कल्प भाष्य वृत्ति २। ३४२९
(ग) वायु पुराण १।४।५

२ (क) कल्पसूत्र ५।१२३
(ख) व्याख्या प्रज्ञप्ति ७।४, ५।९, २।५
(ग) आवश्यक निर्युक्ति ४७३।४९२।५१८

३ (क) ज्ञातृधर्म कथा पृ. ४७
(ख) दशाश्रुतस्कंध १० पृ. ३६४
(ग) उपासक दशा ८ पृ. ६१

४ व्याख्या प्रज्ञप्ति १५

५ अन्तकृद्दशा ६ पृ. ३१

६ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. ४६२

७ पच्चक्खं देवलोगभूया एवं अलकापुरी संकासा

तक्षशिला से राजगृह १९२ योजन दूर था।[1] कपिलवस्तु से राजगृह ६० योजन दूर था।[2] कुशीनगर से २५ योजन दूर था।[3] राजगृह से गंगा ५ योजन दूर थी।[4] और नालन्दा एक योजन दूर था।[5] डा. मोतीचंद्र ने राजगृह को तक्षशिला से ६० योजन दूर माना है।[6]

नालन्दा

पटना से दक्षिण-पूर्व में राजगृह से ७ मील और बख्तियार लाइट रेल्वे के नालंदा स्टेशन से २ मील पर अवस्थित बडगाँव प्राचीन युग की नालंदा है। बिहार शरीफ से यह लगभग ५ मील दूर है। बिहार शरीफ से राजगीर जाते समय नालंदा नामक स्टेशन बीच में आता है। यहाँ पर प्राचीन युग में विश्व-विद्यालय था, जिसके खण्डहर आज भी उपलब्ध होते हैं। विक्रम की सातवीं और आठवीं शताब्दी में वह पूर्ण उन्नत अवस्था में थी।

भगवान महावीर ने अनेक वर्षावास यहाँ पर व्यतीत किये। गणधर गौतम और उदक पेढालपुत्र का संवाद भी वहीं पर हुआ था।[7] टीकाकार ने नालंदा का अर्थ इस प्रकार का किया है। अर्थियों को जो यथोचित प्रदान करता है, वह नालन्दा है।[8] ह्वेनसांग ने लिखा है, इसका नाम आम्रवन के मध्य में स्थित तालाब में रहने वाले नाग के नाम पर नालंदा पड़ा।[9]

आयतकल्पा

बौद्ध ग्रन्थानुसार बुलिय राज्य की राजधानी 'अलकप्प' थी, जिसका

---

१ (क) डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स भाग २, पृ. ७२३
(ख) मज्झिम निकाय की ५ व पंचसूदवी-टीका ॥ ९८७
(ग) संयुक्त निकाय की टीका सारत्थपकासिनी i २४३
२ डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स भाग १ पृ. ५१६
३ दिघ निकाय अ-२, ३
४ (क) डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स पृ. ७२३
(ख) महावस्तु i २५३
५ डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स भाग २ पृ. ५६
६ सार्थवाह पृ. १७
७ (क) सूत्रकृतांग २।७।७०
(ख) स्थानांग टीका ९।३ पृ. ४३३
८ सदा आर्थिभ्यो यथामित्यनितं ददातीति नालंदा।
—सूत्रकृतांग २।७।७०
९ डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स खण्ड २, पृ. ५७

अपर नाम 'आयतकल्पा' था। यह स्थान पश्चिम विदेह में श्वेताम्बिका के समीप था। वी. सी. लाहा के अनुसार शाहबाद जिले में मसार और वैशाली के बीच में अवस्थित था।[1]

राजप्रश्नीय में इस नगरी का विस्तार से वर्णन है।

श्वेताम्बिका

यह जैनागमों में वर्णित साढे पच्चीस आर्यदेशों में से 'केकय' देश की राजधानी थी। वहाँ के राजा प्रदेशी को केशीकुमार श्रमण ने आस्तिक बनाया था। बौद्ध ग्रन्थों में सेयविया को सेतव्या कहा है और उसे कोशल देश की नगरी बताया है।[2] बौद्ध ग्रन्थों की दृष्टि से श्रावस्ती से कपिलवस्तु जाते समय श्वेताम्बिका बीच में आती थी। जैन वर्णनों से श्वेताम्बिका श्रावस्ती से पूर्वोत्तर में अवस्थित थी। मुनि कल्याण विजय के अभिमतानुसार उत्तर-पश्चिम बिहार के मोतीहारी शहर से पूर्व लगभग पैंतीस मील पर अवस्थित सीमामढी यह श्वेताम्बिका ही अपभ्रंश है।[3]

वाणिज्यगाँव

यह वैशाली के सन्निकट गंडकी नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित था। इसका आधुनिक नाम बनिया है। बसाढ गट के उत्तर-पश्चिम में लगभग एक मील की दूरी पर बनिया गांव है।

तुंगिया नगरी

तुंगिया नगरी राजगृह के सन्निकट थी। भगवती सूत्र से भी यही ज्ञात होता है।[4] प्राचीन तीर्थमाला में इसकी पहचान बिहार शरीफ से की गई है।[5] बिहार शरीफ से ४ मील दूर तुंगी नामक गाँव है, वही प्राचीन तुंगिया का अवशेष होना चाहिए।[6]

इसके अतिरिक्त एक तुंगिया नगरी वत्स देश में थी। भगवार महावीर के गणधर मेतार्य वहां के रहने वाले थे।[7]

---

१ वी. सी. लाहा—ज्योग्राफी ऑफ अर्ली बुधिज्म पृ. २४

२ दीघनिकाय २ पायासि सुत्त पृ. २३६

३ श्रमण भगवान महावीर पृ. ३९१

४ भगवती श. २ उद्दे. ५ पत्र १३८-१४०

५ प्राचीन तीर्थमाला भाग १ पृ. १६ भूमिका

६ सर्वे ऑफ इंडिया का नक्शा सं ७२ G १ इंच-४ मील

७ आवश्यक निर्युक्ति दीपिका भाग १ गा. ६४६ प. १२२

पोतनपुर

पोतनपुर यह अस्मक देश की राजधानी थी। बौद्ध ग्रन्थों में भी पोतननगर को अस्सक की राजधानी बताई है। जातकों से यह भी पता लगता है कि पहले अस्सक और दन्तपुर के राजाओं में परस्पर युद्ध हुआ करता था। यह पोतन कभी काशी राज्य का अंग भी रह चुका है। वर्तमान पैठण की पहचान पोतनपुर से की जाती है[1]।

बौद्ध ग्रन्थों में इसका नाम पोतली भी मिलता है। यह स्थान गोदावरी के उत्तरी तट पर अवस्थित था।

अहिच्छत्रा

इसे जैन ग्रन्थों में जांगल अथवा कुरु जांगल की राजधानी कहा गया है। यह नगरी शंखवती,[2] प्रत्यग्ररथ,[3] और शिवपुर[4] के नाम से भी प्रसिद्ध थी। कहा जाता है कि धरणेन्द्र ने यहीं पर अपने फण से भगवान पार्श्व की रक्षा की थी। चम्पा के साथ इसका व्यापार भी होता था।[5] हुएनसांग की दृष्टि से यहाँ पर नागह्रद था, जहाँ तथागत बुद्ध ने नागराज को उपदेश दिया था।

वाराणसी

इस नगरी का परिचय जन्मस्थली उपशीर्षक में किया जा चुका है।

कालाक सन्निवेश (कालाय सन्निवेश)

यह सन्निवेश चम्पा के सन्निकट होना चाहिए, क्यों कि आवश्यक चूर्णि के अनुसार भगवान महावीर ने चम्पा से कालाय सन्निवेश की ओर विहार किया था।[6]

कूपिय सन्निवेश

यह सन्निवेश वैशाली से पूर्व में विदेह भूमि में कहीं पर होना चाहिए, जहाँ पर महावीर छद्मावस्था में गये थे और गुप्तचर समझ कर पकड़े गये थे, और

---

१ (क) ज्योग्राफी ऑफ अर्ली बुद्धिज्म, पृ. २१
(ख) संयुक्त निकाय, हिन्दी अनुवाद, भूमिका पृ. ७.
२ विविध तीर्थकल्प पृ. १४
३ अभिधान चिन्तामणि ४।२६
४ कल्पसूत्र टीका ६ पृ. १६७
५ ज्ञातृधर्मकथा पृ. १५८
६ आवश्यक चूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र २८४

पार्श्व सन्तानीय विजया और प्रगल्भा ने उनको मुक्त करवाया था।[1]

मदनमोहन नागर के अभिमतानुसार कूपय सन्निवेश ही कोपिया है। यह दूह वस्ती जिले की खलीलाबाद तहसील की खलीलाबाद में हदावल सडक के सातवें मील पर स्थित है। वस्ती शहर से यह स्थान लगभग ३१ मील की दूरी पर है। इसका अपर नाम अनुपिया है।[2]

तंबाय सन्निवेस (ताम्राक सन्निवेश)

यह सन्निवेश मगध में होना चाहिए। यही पर पार्श्वापत्तीय स्थविर नन्दिषेण के साधुओं के साथ गोशालक का विवाद हुआ था।[3]

चोराक सन्निवेश

यह सन्निवेश प्राचीन अंग जनपद और आधुनिक पूर्व बिहार में कहीं पर होना चाहिए। यहाँ पर महावीर गुप्तचर समझ कर पकडे गये थे। सोमा और जयश्री परिव्राजिकाओं ने उन्हें मुक्त करवाया था।

पत्तकालय (पत्रकालक)

यह चम्पा के सन्निकट था, जहाँ पर महावीर ने कायोत्सर्ग किया था।

कलिंग

वर्तमान उडीसा का दक्षिणी भाग 'कलिंग' कहा जाता है। साढे पच्चीस आर्य देशों में इसकी गणना की गई है।

जातकों के अनुसार दन्तपुर, महाभारत के अनुसार राजपुर, महावस्तु के अनुसार सिंहपुर और जैन ग्रन्थों के अनुसार कांचनपुर कलिंग की राजधानी मानी गई है।[4] सातवीं ईस्वी में कलिंगनगर भुवनेश्वर के नाम से विश्रुत हुआ। यह जैन श्रमणों का विहारस्थल रहा है।[5] व्यापार का केन्द्र भी था। यहाँ के व्यापारी लंका तक जाते थे।[6]

युआन चुआंग ने कलिंग जनपद का विस्तार पाँच हजार 'ली' और राजधानी का विस्तार वीस 'ली' माना है।[7]

---

१ आवश्यक चूर्णि पूर्वार्द्ध
२ सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रंथ पृ. १९५ मदनमोहन नागर
३ आवश्यक चूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र २९१
४ बृहत्कल्प सूत्र भाग ३ पृ. ९१३
५ ओघ निर्युक्ति भाष्य ३०
७ वसुदेव हिण्डी पृ. १११
८ युआन चुआंगस् ट्रैवेल्स इन इंडिया भाग २ पृ. १९८

यह प्राचीन जनपद था। प्राचीन युग में वह मगध के आधीन था। अतः अंग और मगध का एक साथ उल्लेख मिलता है। रामायण के अभिमतानुसार यहाँ महादेवजी ने अंग (कामदेव) को भस्म किया था, अतः इसका नाम अंग पड़ा। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि आगमों में अंगलोक का वर्णन सिंहल (श्रीलंका) बब्बर, किरात, यवनद्वीप, आरबक, रोमक, अलकन्द (एलेक्जेण्ड्रिया) और कच्छ के साथ आता है[1]।

भागलपुर जिले को प्राचीन अंग माना गया है। चम्पा अंगदेश की राजधानी थी।

बंग

बंग (पूर्वीय बंगाल) की परिगणना भी सोलह जनपदों में की गई है। महाभारत में अंग-वंग का वर्णन आता है। प्राचीन युग में वह भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता था। पूर्वीय बंगाल को समतट, पश्चिमी को लाट, उत्तरी को पुण्ड्र, आसाम को कामरूप कहते थे। बंगाल का अपर नाम गौड भी था।

कुरु

कुरु (थानेश्वर) का उल्लेख महाभारत में भी आया है। वहाँ के लोग पूर्ण स्वस्थ और प्रतिभा सम्पन्न थे। गजपुर कुरु की राजधानी थी।

कौशल

कौशल (अवध) प्राचीन जनपद है। जैसे वैशाली में जन्म ग्रहण करने के कारण महावीर वैशालिक कहलाये, वैसे ही भगवान ऋषभ कौशलिक (कोसलिय) कहलाये।

कोशल का अपर नाम विनीता था। ऐसा माना जाता है कि वहाँ के निवासियों ने विविध कलाओं में कुशलता प्राप्त की, एतदर्थ लोगों ने विनीता को कुशला नाम से भी पुकारा।[2] बौद्ध ग्रन्थों में कोशल के राजा प्रसनेजित का उल्लेख है।

अवन्ती

अवन्ती यह मालव की राजधानी थी। दक्षिणापथ का सबसे महत्त्वपूर्ण नगर था। सातवीं-आठवीं शताब्दी के पूर्व मालव अवन्ती के नाम से विख्यात था। इसकी पहचान मालवा, निमाड और मध्यप्रदेश के कुछ विभागों से की जाती है।

---

१ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ५२ पृ. २१६
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ. १९१

२ आवश्यक मलयगिरि वृत्ति पृ. २१४

जैन धर्म के प्रबल प्रचारक सम्प्रति अवन्ती के ही अधिपति थे। हुएनसांग के समय यह विद्या का केन्द्र था। जैन श्रमणों का प्रसिद्ध विहार क्षेत्र भी रहा है। आर्य सुहस्ति,[1] आर्य रक्षित,[2] आचार्य चण्डरुद्र,[3] भद्रगुप्त, आर्य आषाढ[4] प्रभृति अनेक आचार्यों ने यहां पर धर्म की ज्योति जगाई थी।

चण्डप्रद्योत ने यहां पर राज्य किया। सम्राट अशोक का पुत्र कुणाल यहां पर उच्चपद पर आसीन था। उसकी लोकप्रियता से उज्जयिनी का नाम ही कुणाल नगर हो गया।[5] आचार्य कालक ने राजा गर्दभिल्ल को हटा कर अन्य राजा की नियुक्ति की। उसके पश्चात् राजा विक्रमादित्य ने यहां पर राज्य किया। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर उनके सभारत्न थे। आचार्य हेमचन्द्र के समय यह नगरी विशाला, अवन्ती और पुष्पकरंडिनी नाम से भी प्रसिद्ध थी।[6]

दशार्ण

दशार्ण, यह भिलसा के आसपास का प्रदेश था। मृत्तिकावती यह दशार्ण की राजधानी थी। मालव प्रान्त में बनास नदी के पास जो भोजों का देश है, वहां मृत्तिकावती कहा जाता है। हरिवंशपुराण में इस नगरी की अवस्थिति नर्मदा के तट पर बताई है।[7]

मेघदूत में वहदिस या विदिशा (भिलसा) को दशार्ण की राजधानी माना है। सूत्रकृतांग चूर्णि में सिंधु देश के साथ विदिशा का वर्णन किया है, जहां पर प्रज्ञप्ति का पढना निषिद्ध माना है।[8] वह नगरी वेत्रवती के किनारे थी।

दशार्ण जनपद का दूसरा नाम दशार्णपुर था। आवश्यक चूर्णि में उसका दूसरा नाम एडकाक्षपुर बताया है[9]। बौद्ध ग्रन्थ पेतवत्थु में एरकच्छ लिखा है[10]।

---

१ बृहत्कल्प भाष्य १।३२७७
२ आवश्यक चूर्णि पृ. ४०३
३ बृहत्कल्प भाष्य ६।६१०३
४ दशवैकालिक चूर्णि पृ. ९६
५ संस्तर ८२ पृ. ५८
६ अभिधान चिंतामणि ४।४२
७ हरिवंश पुराण १।३६।१५ वैदिक
८ सूत्रकृतांग चूर्णि पृ. २०
९ आवश्यक चूर्णि २ पृ. १५९
१० पेतवत्थु २।७ पृ. १६

इस नगर की अवस्थिति वेतना नदी के किनारे बताई है।[1] डाक्टर जगदीशचंद्रजी ने इसकी पहचान झाँसी जिले में एरछ नामक स्थान से की है।[2]

आवश्यक निर्युक्ति, चूर्णि और टीकाओं के अनुसार दशार्णपुर के उत्तर-पूर्व में दशार्ण कूट नामक पर्वत था,[3] जिसे गजाग्रपद गिरि और इंद्रपद भी कहते थे। इस पर्वत के चारों ओर गाँव थे। भगवान महावीर ने दशार्णभद्र को यहाँ पर दीक्षा दी थी।

दशार्ण जनपद का एक महत्त्वपूर्ण नगर दशपुर भी माना जाता है[4]। वह आर्यरक्षित की जन्मभूमि थी। वहाँ से अध्ययन करने हेतु वे पाटलीपुत्र गये थे।

वत्स

वत्स काशी से लगा हुआ जनपद था। बौद्ध ग्रन्थों में इसे वंश लिखा है। जैन, बौद्ध और वैदिक वाङमय में जिस उदयन का उल्लेख है, वह वत्साधिपति था। आचार्य आषाढ अपने शिष्यों सहित यहाँ पर रहे थे।[5] वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी।

सौराष्ट्र

सौराष्ट्र–काठियावाड की परिगणना महाराष्ट्र, आन्ध्र, कुडुक्क के साथ की गई है। सौराष्ट्र व्यापार का केन्द्र था।[6] द्वारका (जूनागढ) सौराष्ट्र की मुख्य नगरी थी। वसुदेव हिण्डी में द्वारका को आवर्त, कुशार्त, सौराष्ट्र और शुष्कराष्ट्र की राजधानी माना है।[7]

पांचाल

पांचाल–रुहेल खण्ड अतीत काल में एक समृद्ध सम्पन्न जनपद था। महाभारत में पांचाल का वर्णन अनेक स्थलों पर आया है। द्रौपदी का जन्म

---

१ (क) आचारांग चूर्णि पृ. २२६
(ख) गच्छाचार पृ. ८१
२ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. ४७९
३ (क) आवश्यक चूर्णि पृ. ४७६
(ख) आवश्यक टीका पृ. ४६८
४ आवश्यक चूर्णि पृ. ४०१
५ उत्तराध्ययन चूर्णि २ पृ. ८७
६ (क) दशवैकालिक चूर्णि पृ. ४०
(ख) निशीथ चूर्णि–पीठिका १८३ पृ. ६९
७ वसुदेव हिण्डी पृ. ७७

पांचाल में हुआ था, अतः वह पांचाली के नाम से प्रसिद्ध हुई। बदायूं, फर्रुखाबाद और उसके आसपास का प्रदेश पांचाल माना जाता है।

गंगा ने पांचाल को दो भागों में विभक्त किया है—एक दक्षिण पांचाल और दूसरा उत्तर पांचाल। महाभारत कार ने दक्षिण पांचाल की राजधानी कांपिल्य और उत्तर भारत की राजधानी अहिच्छया लिखी है।

कांपिल्यपुर की अवस्थिति गंगा के तट पर थी,[1] जो आज फर्रुखाबाद जिले में कंपिल नाम से प्रसिद्ध है। द्रुपद कन्या का स्वयंवर यहीं रचा गया था।

पांचाल की दूसरी राजधानी माकंदी थी। समराइच्चकहा में इस नगरी का वर्णन है।[2]

मालव

प्राचीन काल में मालव नाम से दो देश विख्यात थे। प्रथम मुलतान के आसपास का देश। जैनागमों में जिस मालव को अनार्य देश माना है, वह यही मालव है। दूसरा मालव आज का मालवा है। पूर्व वह अवन्ती जनपद कहलाता था। आज वह मालव और मध्यभारत के नाम से प्रसिद्ध है।

सुह्म

कितने ही विद्वानों का मन्तव्य है कि हुगली और मिदनापुर के मध्य का प्रदेश सुह्म है, जो उडीसा की सीमा पर फैला हुआ दक्षिण बंग का प्रदेश है। इसकी राजधानी ताम्रलिप्ती थी।

कितने ही अन्य विद्वान् हजारीबाग, संथाल, परगना जिलों के कुछ भाग को सुह्म मानते हैं।

वैजयन्ती कार ने सुह्म को ही राढ का नामान्तर माना है।

मुनि कल्याण विजयजी ने हजारीबाग से पूर्व में जहां पहले भंगी देश था, उसका पूर्व प्रदेश, राढ का दक्षिण-पश्चिमी कुछ भाग और दक्षिणी बंग का थोडा पश्चिमी भाग को सुह्म माना है।



---

१ औपपातिक सूत्र ३९

२ समराइच्चकहा अ. ६

परिशिष्ट ५

इस ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्रन्थ सूचि

१ ऋषभदेव : एक परिशीलन–देवेन्द्रमुनि प्रकाशक–सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा २
२ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति,
३ ऋग्वेद
४ मुण्डकोपनिषद्
५ भगवद्गीता
६ कठोपनिषद्
७ भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान–डा. हीरालाल जैन
८ छान्दोग्योपनिषद्
९ वाजसनेयी संहिता
१० सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट
११ मनुस्मृति
१२ हिस्टोरिकल बिगिनिंग ऑव जैनिज्म
१३ भगवती सूत्र
१४ स्थानाङ्ग
१५ उत्तराध्ययन
१६ आचारांग
१७ समवायाङ्ग — पूज्य घासीलालजी म.
१८ समवायाङ्ग वृत्ति
१९ स्थानांग — समवायाङ्ग — पं. दलसुख मालवणिया
२० समवायांग–मुनिकमल सम्पादित
२१ चारित्र्यभक्ति
२२ सूत्रकृताङ्ग
२३ मूलाचार –
२४ तत्त्वार्थ सूत्र–उमास्वाति

२५ तत्त्वार्थ सूत्र–राजवार्तिक
२६ विशेषावश्यक भाष्य
२७ दीघनिकाय
२८ बृहदारण्यकोपनिषद्
२९ जाबालोपनिषद्
३० वाशिष्ठ–धर्मशास्त्र
३१ तैत्तिरीय–संहिता
३२ ऐतरेय ब्राह्मण
३३ बृहदारण्यक
३४ जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश
३५ एफ. मेक्समूलर दी वेदाज
३६ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सियण्ट इण्डिया
३७ इण्डियन फिलोसफी
३८ दी प्रिंसिपल उपनिषदाज्—डा. राधाकृष्णन
३९ संस्कृति के चार अध्याय–दिनकर
४० पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म–पं. धर्मानन्द कोसाम्बी
४१ दशवैकालिक हरिभद्रीय वृत्ति
४२ सप्ततिशतस्थान
४३ कल्पसूत्र—देवेन्द्रमुनि
४४ कल्पसूत्र—आ. पुण्यविजयजी
४५ कल्पसूत्र—सुबोधिका टीका–उपाध्याय विनयविजय
४६ मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ
४७ अंगुत्तर निकाय
४८ विष्णुपुराण
४९ प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन खण्ड–१–२
५० बुद्धिस्ट स्टडीज
५१ वैदिक कोश
५२ वैदिक माइथोलॉजी (हिन्दी अनुवाद)
५३ योगदर्शन
५४ षड्दर्शन समुच्चय टीका
५५ सु. स. ३
५६ सु. मानस, ५ स. ९
५७ कल्याण पुनर्जन्म विशेषांक
५८ पाइअसद्दमहण्णवो

५९ तिलोयपण्णत्ती
६० चउप्पन्न महापुरिस चरित्रं-आचार्य शीलाङ्क
६१ उत्तरपुराण
६२ आदिपुराण
६३ महावीर चरियं—गुणचन्द्र
६४ महावीर चरियं—नेमिचंद्र
६५ हरिवंश पुराण
६६ प्रश्न व्याकरण – अभयदेव वृत्ति
६७ शब्दरत्न समन्वय कोश
६८ वैजयन्ति कोश
६९ अमर कोश – निर्णय सागर
७० वृहत्कल्प सूत्र सटीक–आगम प्र. पुण्यविजयजी
७१ कल्याण मन्दिर स्तोत्र
७२ कुमार चाइल्ड ब्वॉय, यूथ सन प्रिन्स
७३ कुमार सन ब्वॉय, यूथ, ए वॉय विली फाइव ए प्रिन्स
७४ हिस्ट्री ऑफ इन्डिया – मजमुदार
७५ ए बीफ सर्वे ऑफ जैनिज्म इन दी नॉर्थ
७६ निशीथ चूर्णि – उपाध्याय अमर मुनि, सम्पादित
७७ व्यवहार भाष्य
७८ रामायण
७९ अभिधान वाचस्पति
८० ललित विस्तर
८१ निरियावलिका
८२ औपपातिक
८३ वसुदेव हिण्डी
८४ महाभारत
८५ सूत्रकृताङ्ग निर्युक्ति
८६ पिण्ड निर्युक्ति
८७ वृहत्कल्पभाष्य
८८ उत्तराध्ययन चूर्णि
८९ जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी
९० यू आन् चुआङ्गस् ट्रैवेल्स इन इण्डिया
९१ आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति
९२ टौनी का कथा कोश

९३ महावीर जीवन दर्शन
९४ ट्रेवल्स ऑफ फाहियान
९५ श्रमण भगवान महावीर
९६ उत्तराध्ययन वृहद् वृत्ति
९७ आवश्यक निर्युक्ति
९८ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति
९९ आवश्यक चूर्णि
१०० मज्झिम निकाय
१०१ संयुक्त निकाय
१०२ दिव्यावदान
१०३ आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन—मुनि नगराज
१०४ धम्मपद अट्ठकथा
१०५ अंगुत्तर निकाय
१०६ ,, ,, हिन्दी अनुवाद
१०७ ,, ,, अट्ठकथा
१०८ भगवान बुद्ध–धर्मानन्द कौसाम्बी
१०९ दर्शनसार — देवसेनाचार्य
११० चार तीर्थंकर – पं. सुखलालजी
१११ हिन्दु सभ्यता – डा. राधाकुमुद मुकर्जी
११२ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज
११३ सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ
११४ यूआन् चुआंगस् ट्रेवेल्स इन इण्डिया
११५ दि एन्शिएन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया
११६ जातक कथा
११७ विविध तीर्थंकल्प
११८ भारतीय इतिहास की रूप रेखा
११९ ज्ञातासूत्र – आगमोदय
१२० ज्ञातासूत्र तिलोक रत्न स्थानकवासी परीक्षा बोर्ड
१२१ समर्थ समाधान
१२२ अभिधान चिन्तामणि
१२३ लाइफ एण्ड स्टोरीज ऑफ पार्श्वनाथ
१२४ हार्ट ऑफ जैनिज्म
१२५ बृहद् पद्मावती स्तोत्र
१२६ पउम चरियं – विमलसूरि

१२७ पद्मपुराण
१२८ आचारांग चूर्णि
१२९ वसुदेव हिण्डी
१३० सुरुचि जातक
१३१ सुत्तनिपात की अट्ठकथा
१३२ दशाश्रुतस्कंध
१३३ अन्तकृत् दक्षा
१३४ डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स
१३५ मज्झिमनिकाय की टीका—सारत्थपकासिनी
१३६ महावस्तु
१३७ सार्थवाह
१३८ बी. सी. लाहा, ज्योग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म
१३९ सर्वे आव इण्डिया का नकशा
१४० दशवैकालिक चूर्णि
१४१ संस्तर
१४२ पेतवत्थु
१४३ गच्छाचार
१४४ पासणाह चरिउ—आचार्य पद्मकीर्ति (अपभ्रंश)
सम्पादक – प्राध्यापक प्रफुल्लकुमार मोदी प्राचार्य शासकीय संस्कृत उपाधि महाविद्यालय इन्दौर
प्रकाशिका – प्राकृत ग्रन्थ परिषद वाराणसी ५ –प्रथम संस्करण १९६५
१४५ सिरि पासनाह चरियं – देवभद्रसूरि (प्राकृत)
संशोधक – आचार्य विजयकुमुद सूरि
प्रकाशक – मणिविजयगणिवर ग्रन्थमाला
१४६ श्री पार्श्वनाथ प्रभु चरित्र – देवभद्राचार्य (गुजराती अनुवाद)
प्रकाशक – श्री. जैन आत्मानंद सभा भावनगर
१४७ चउप्पन्न महापुरिस चरिय—आचार्य शिलांक
प्रकाशिका – प्राकृत परिपद् वाराणसी
सम्पादक – पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक, संशोधक पं. प्राकृत ग्रन्थ परिपद् अहमदाबाद ई. सन्. १९६१
१४८ पार्श्वनाथ चरित्र – भावदेव सूरि यशोविजय ग्रन्थमाला वाराणसी
१४९ पार्श्वनाथ चरित्र – हेमविजय गणि–मोहनलालजी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी ई. १९१६

१५० श्री पार्श्वनाथ चरितम् – उदयवीरगणि विरचित संघवी मुल्जी भाई झवेरचन्द पालीताणा नगरदास प्रागजी भाई अहमदावाद, विक्रम. सं. १९९१ में प्रकाशित

१५१ त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र

१५२ पार्श्वाभ्युदयकाव्यं (सटीकम्) जिनसेनाचार्य

१५३ श्री पार्श्वनाथ चरितम् – वादिराज
संशोधन – पण्डित मनोहरलाल शास्त्री,
प्रकाशक – माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति हीराबाग, बम्बई, विक्रमाब्द १९७३

१५४ सचित्र भगवान् पार्श्वनाथ (संक्षिप्त जीवनी)
अनुवादक – मास्टर छोटेलाल जैन, प्रका. जैन साहित्य मन्दिर, सागर (म. प्र.) सं. १९८३

१५५ भगवान् पार्श्वनाथ – भाग—१–२ (हिन्दी)
ले. कामताप्रसाद जैन
मूलचन्द किसनदास कापडिया, चांदावाडी सूरत

१५६ पार्श्वनाथ हिन्दी (दिवाकर चौथमलजी म.)
प्रका. – दुलहराज मोहनलाल बोहरा हलसुर बाजार बेंगलोर

१५७ उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन



परिशिष्ट ६

लेखक की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१ ऋषभदेव : एक परिशीलन (शोध प्रवन्ध) मूल्य ३–००
प्रकाशक – सन्मति ज्ञान पीठ, लोहामण्डी, आगरा २

२ धर्म और दर्शन
प्रकाशक – सन्मति ज्ञान पीठ, लोहामण्डी, आगरा २

३ संस्कृति के अंचल में (निवन्ध) मूल्य १–५०
प्रकाशक – सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जोधपुर

४ चिन्तन की चाँदनी (उद्‌वोधक चिन्तन सूत्र) मूल्य ३–००
प्रकाशक – श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर)

५ अनुभूति के आलोक में (मौलिक चिन्तन सूत्र) मूल्य ४–५०
प्रकाशक – श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर)

६ साहित्य और संस्कृति (निबन्ध) मूल्य १२
प्रकाशक – भारतीय विद्या प्रकाशन, पो. बॉ. १०८, कचौडी गली, वाराणसी

७ भगवान पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन (शोध प्रबन्ध) मूल्य ५–००
प्रकाशक – पं. मुनि श्रीमल प्रकाशन, जैन साधना सदन, २५९ नानापेठ, पूना २

८ कल्पसूत्र मूल्य – राजसंस्करण २०–००, साधारण संस्करण १६–००
प्रकाशक – श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान, गढरिपाना (बाडमेर)

९ चिन्तन की चाँदनी (गुजराती) मूल्य – ४–००
प्रकाशक – लक्ष्मी पुस्तक भांडार, गांधी मार्ग, अहमदाबाद

सम्पादित

१० जिन्दगी की मुस्कान (प्रवचन संग्रह) मूल्य १–४०
११ जिन्दगी की लहरें (प्रवचन संग्रह) मूल्य २–५०
१२ साधना का राजमार्ग (प्रवचन संग्रह) मूल्य २–५०
१३ राम राजा (राजस्थानी प्रवचन) मूल्य १–००
१४ मिनखपणा री माल (राजस्थानी प्रवचन) मूल्य १–००
सभी का प्रकाशन – सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जोधपुर
१५ ओंकार : एक अनुचिन्तन मूल्य १–००
प्रकाशक – सार्वभौम साहित्य संस्थान.
१६ नेमवाणी (कविवर नेमिचन्दजी म. की कविताओं का संकलन) मूल्य २–५०
प्रकाशक – श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय पदराडा, (उदयपुर)
१७ जिन्दगी नो आनन्द (गुजराती प्रवचन)
१८ जीवन नो झंकार (गुजराती प्रवचन)
१९ सफल जीवन (गुजराती प्रवचन)
२० स्वाध्याय (गुजराती प्रवचन)
२१ धर्म अने संस्कृति (गुजराती निवन्ध)
सभी के प्रकाशक – लक्ष्मी पुस्तक भण्डार, गांधी मार्ग, अहमदाबाद १
२२ मानव बने
प्रकाशक – बुधवीर स्मारक मण्डल, जोधपुर
२३ भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण
२४ महावीर जीवन दर्शन
२५ महावीर साधना दर्शन
२६ महावीर तत्त्व दर्शन
२७ खिलती कलियाँ मुस्कराते फूल
२८ चिन्तन के क्षण
२९ अतीत के कम्पन
३० सांस्कृतिक सौंदर्य

३१ आगम–मन्थन

३२ स्मृति चित्र

३३ अन्तगड दशासूत्र

३४ अनेकान्तवाद : एक मीमांसा

३५ संस्कृति रा सूर

३६ अणविंध्या मोती

३७ जैन लोक कथाएँ

३८ जैन धर्म : एक परिचय

३९ ज्ञातासूत्र : एक परिचय

४० महासती श्री सोहन कुँवरजी : व्यक्तित्व और कृतित्व.